स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें
तत्सुपुत्र साहू शान्तिप्रसादजी द्वारा
संस्थापित

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन-ग्रन्थमाला

अपभ्रंश ग्रन्थाङ्क २

इस ग्रन्थमालामें प्राकृत संस्कृत अपभ्रंश हिन्दी कन्नड तामिल
आदि प्राचीन भाषाओंमें उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक पौराणिक
साहित्यिक और ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन-साहित्यका
अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन और उसका मूल और यथासम्भव
अनुवाद आदिके साथ प्रकाशन होगा। जैन भण्डारोंकी
सूचियाँ शिलालेख-संग्रह विशिष्ट विद्वानोंके अध्ययन
ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी
इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित होंगे।

ग्रन्थमाला सम्पादक
डॉ० हीरालाल जैन
एम० ए० डी० लिट्०
डॉ० आ० ने० उपाध्ये
एम० ए० डी० लिट्०

प्रकाशक
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मन्त्री भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड
वाराणसी

• मुद्रक •
बाबूलाल जैन फागुल्ल, सन्मति मुद्रणालय दुर्गाकुण्ड रोड वाराणसी

स्थापनाब्द
फाल्गुन कृष्ण ९
वीर नि० २४७०

विक्रम सं० २०००
१८ फरवरी सन् १९४४

JÑANAPĪTH MŪRTIDEVĪ JAIN GRANTHMĀLĀ
Apabhransha Grantha No. 2

PAUMCHHRIU

of

KAVIRĀJA SVAYAMBHŪDEVE

Vol. 2

WITH

HINDĪ TRĀNSLATION

Translated by

Devendra Kumar Jain M. A., Sahityacharya

Published by

Bhāratīya Jnānapītha Kashī

First Edition } 1000 Copies } MAGHA VIR SAMVAT 2484 VIKRAMA SAMVAT 2014 JANUARY 1958 { Price { Rs. 3/-

Bharatiya Jnana-Pitha Kashi

FOUNDED BY

SETH SHĀNTI PRASĀD JAIN

In Memory of his late Benevolent Mother

SHRĪ MŪRTĪ DEVĪ

BHĀRATĪYA JÑĀNA PĪTHA MŪRTI DEVĪ
JAIN GRANTHAMĀLĀ

Apabhransh Granatha No. 2

In this Granthamālā critically edited Jain āgamic philosophical, paurānic, literary historical and other original texts available in prākrit, sanskrit apabhransha, hindi, kannada and tamil etc., will be published in their respective languages with their translations in modern languages

AND

Catalogues of Jain Bhandaras, inscriptions, studies of competent scholarts & popular jain literature will also be published

General Editor	Publisher
Dr Hiralal Jain, M A D Litt.	Ayodhya Prasad Goyaliya
Dr. A N Upadhye M A D Litt.	Secy Bharatiya Jnanapitha Durgakund Road, Varanasi.

Founded on Phalguna krishna 9 Vira Sam. 24 0

Vikrama Samvat 2000 18th Feb 1944

विषय-सूची

तेईसवीं संधि

चौबीसवीं संधि

सत्ताईसवीं संधि

अट्ठाईसवीं सन्धि

उनतीसवीं सन्धि

तीसवीं सन्धि

इकतीसवीं सन्धि

बत्तीसवीं सन्धि

तैंतीसवीं सन्धि

चौंतीसवीं सन्धि

उनतालीसवीं सन्धि

चालीसवीं सन्धि

[२]

पउमचरिउ

•

पद्मचरित

अयोध्याकाण्ड

इक्कीसवीं सन्धि

[१] एक दिन विभीषणने सागरबुद्धि भट्टारकसे पूछा कि "जयलक्ष्मीके प्रिय रावणकी विजय, जीवन और राज्य, कितने समय तक अविचल रहेगा।" तब उन्होंने कहा—"सुनो मैं बताता हूँ अयोध्याके रघुवंशमें दशरथ नामका मुख्य राजा होगा उसके दो पुत्र धुरंधर धनुर्धारी, वासुदेव और बलदेव होंगे, राजा जनककी कन्याको लेकर, होनेवाले महायुद्धमें रावण उनके द्वारा मारा जायगा"। यह सुनकर विभीषण एकदम उत्तेजित हो उठा मानो घीका घड़ा आगमें पड़ गया हो। उसने कहा—"सबकी बेल न सूखे और रावणका मरण न हो इसलिए क्यों न मैं, भयभीषण दशरथ और जनकके सिरोंको तुड़वा दूँ"। यह जानकर कलहकारी नारद वर्धमान नगर पहुँचा। उसने दशरथ और जनकसे कहा कि आज विभीषण आयगा और तुम दोनोंके सिर तोड़ देगा। तब वे दोनों अपनी लेपमयी मूर्ति स्थापित करवा कर वहाँसे चल दिये। विद्याधर आये और उन्हीं लेपमयी मूर्तियोंके सिर काटकर ले गये ॥ १-१० ॥

[२] जनक और दशरथ दोनों ही यहाँसे कौतुकमंगल नगर चले गये उस नगरमें मूषकाशमणिकी आगमें पका हुआ माखन, बिना माँगे ही खानेके लिए मिलता था और चन्द्रकांत मणियोंके झरनोंसे पानी। फूलोंसे ढके ऐसे पत्थर सोनेके लिए मिल जाते थे जो नूपुरोंसे झंकृत चरणों और फूलोंके कुसुमोंके गिरनेसे सुन्दर हो रहे थे। चन्द्रमा यहाँके प्रासादोंके शिखरोंसे घिसकर टेढ़ा और काला हो गया था। उस नगरका शासक शुभमति था। वैसे ही जैसे सुरपुरका शासक इन्द्र है। उसकी सुन्दरी पृथुस्तनी पृथुश्री रानीसे दो सन्तान उत्पन्न हुईं। उनमेंसे कैकेयीका वर्णन किस प्रकार किया जाय। वह सभी कलाओंके कलापसे संपूर्ण थी। वह ऐसी जान पड़ती थी मानो साक्षात् लक्ष्मीने अवतार लिया हो। जिस प्रकार समुद्रकी महाश्रीके सम्मुख नदियोंके नाना प्रवाह आते हैं उसी प्रकार उसके स्वयंवरमें हरिवाहन हेमप्रभ प्रभृति अनेक राजा आये ॥१–९॥

[३] वह, हथिनीपर बैठकर ऐसे निकली मानो महालक्ष्मी ही हो। नरवर-समूहों मनुष्य तथा विद्याधर राजाओंको देखते देखते उसने दशरथके गलेमें माला ऐसे डाल दी मानो कमनीय गतिवाली रतिने ही कामदेवके गलेमें माला डाल दी हो। उस अवसर पर हरिवाहन बिगड़ उठा 'पकड़ो' यह कहकर, वह सेना सहित दौड़ा। वह फिर बोला "इस राजासे कन्या वैसे ही छीन लो जैसे सर्पसे मणि छीन लिया जाता है।" तब दशरथने अपने ससुर शुभमतिको धीरज बँधाते हुए कहा 'आप ढाढ़स रक्खें। अनरण्यके पुत्र मेरे जीतेजी कौन इसे चाँप सकता है।" वह रथ पर चढ़ गया—और कैकेयी धुरा पर सारथि बनकर आ बैठी। वह महारथियोंके बीच गया। उसने अपनी नई पत्नीसे

घत्ता

सो बोल्लिज्जइ ससरेंण 'पुरवर-णिवारिय-रविपरएँ ।
एहु चावेंवि तहिँ भेंदि णिवएँ घण-पवरएँ चेल्लु णिरन्तरएँ ॥ ३ ॥

[४]

तं णिसुणेवि परिओसिय-जणए । चाहिउ राहवु णिय-सिरि-तणए ॥ १ ॥
सेण वि सरहिँ परज्जिउ साहणु । मग्गु स-हेमप्पहु हरिवाहणु ॥ २ ॥
परिचिन्तिय केकइ दिण्णु महा-वरु । भणइ अउज्झपुर परमेसरु ॥ ३ ॥
'सुन्दरि मग्गु मग्गु जं रुच्चइ' । सुहमइ-सुयएँ पजम्पिउ सुन्दरु ॥ ४ ॥
'चिन्तु देव पइँ मग्गमि जइयहुँ । णिय-सच्चु पालिज्जइ तइयहुँ' ॥ ५ ॥
पुण परिणन्तएँ धण-कण-संकुलेँ । णियइँ वे वि पुरेँ कणय-कुमम्भरेँ ॥ ६ ॥
बहु वासरेँहिँ महन्त पइट्ठइँ । सइ-वासव इव रज्जेँ वइट्ठइँ ॥ ७ ॥
सयल कला कलाव संपण्णा । ताम चयारि पुत्त उप्पण्णा ॥ ८ ॥

घत्ता

रामचन्दु अपराइयहेँ सोमित्ति सुमित्तिहेँ एक्कु जणु ।
भरहु वरम्भउ केक्कइहेँ सुप्पहहेँ पुत्तु पुत्तु सत्तुहणु ॥ ४ ॥

[५]

एम चयारि पुत्त तहोँ रायहोँ । णाइँ महा-समुद्द महि-भायहोँ ॥ १ ॥
णाइँ दन्त गिव्वाण गइन्दहोँ । णाइँ मणोहर सजल-किन्दहोँ ॥ २ ॥
जणउ वि मिहिला-णयरेँ पइट्ठउ । समउ विदेहएँ रज्जेँ णिविट्ठउ ॥ ३ ॥
ताहेँ विहि मि घर-विहम-णीलउ । भामण्डलु उप्पण्णु स-सीयउ ॥ ४ ॥
पुव्व-वइरु संभरेँवि अ गेवेँ । दाहिण सेढि हरेँवि णिउ देवेँ ॥ ५ ॥
तहिँ रहणेउरचक्कवाल पुरेँ । धवल-भवण-सुह पड्डारण्डुरेँ ॥ ६ ॥
चन्दगइहेँ चन्दुज्जल-वयणहोँ । पम्म-वयण-समीवेँ तहोँ सयणहोँ ॥ ७ ॥
थविउ णिरुम्भ भमरिन्देँ । पुप्फवइहेँ अवहिउ णरिन्देँ ॥ ८ ॥

कहा "प्रिये रथ हाँककर वहाँ ले चलो जहाँ अपने तेजसे सूरजको ढकनेवाले अनेक छत्र और ध्वज हैं" ॥१–५॥

[४] यह सुनकर, अनोंका सन्तुष्ट करने वाली कैकेयीने रथ हाँका। तब दशरथने भी बाणोंसे शत्रुसेनाको रोककर हेमप्रभु और हरिवाहनका मान भंग कर दिया। कैकेयीसे विवाह हो चुकनेपर दशरथने उसे दो महा वर दिये। अयोध्याके अधिपति दशरथने उससे कहा "सुन्दरी माँगो माँगो, जो भी अच्छा लगता हो।" तब शुभमतिकी कन्या कैकेयीने माथा झुकाकर कहा, "देव, जब मैं माँगूँ तब दे देना। तब तक अपने सत्यका पालन करते रहिए।" ऐसा कह सुनकर वे दोनों कुछ दिनों तक धन धान्यसे व्याप्त कौतुकमंगल नगरमें रहे। फिर बहुत समयके बाद उन्होंने अयोध्या नगरीमें प्रवेश किया। वे दोनों इन्द्र और शचीकी तरह राजगद्दी पर बैठे। दशरथ राजाके सकल कलाओंसे संपूर्ण चार पुत्र उत्पन्न हुए, सबसे बड़ी कौशल्यासे रामचन्द्र सुमित्रासे लक्ष्मण कैकेयीसे धुरंधर भरत और सुप्रभासे शत्रुघ्न उत्पन्न एक पुत्र हुआ ॥ १–६ ॥

[५] राजा दशरथके वे चार पुत्र माना भूमण्डलके लिए चार महासमुद्र ऐरावत हाथीके दाँत या सज्जनोंके मनोरथोंके समान थे। जनक भी मिथिलापुरीमें जाकर विदेहका राज्य करने लगे। जनक भी दूसरे जिनकी तरह भामंडल, तथा सीता देवी उत्पन्न हुईं। परन्तु भामण्डलको, पिङ्गल जन्मके वैरका स्मरणकर पिंगल देव उसे हरकर विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें ले गया, और उसने उसे स्वच्छ सुधा चूर्णसे मकर रथनूपुरचक्रवाल पुरमें चन्द्रमुख और चन्द्रगति नामके विद्याधरोंके उपवनके समीप डाल दिया। विद्याधरने उठाकर उसे अपनी पत्नी पुष्पावतीको

दे दिया। ठीक इसी समय, महाभव्वी हिमवन्त, और विन्ध्या-चलमें रहनेवाले बबर शबर, पुलिंद और म्लेच्छोंने राजा जनकके राज्यको छीनना शुरू कर दिया ॥ १-६ ॥

[६] बबर शबर पुलिंद और म्लेच्छोंमें अपनी सेना घिर आनेपर राजा जनकने बहुत भारी आशंकामें बालकोंकी सहायताके लिए राजा दशरथके पास लेखपत्र भेजा। इस पत्रसे यह जानकर राजा दशरथ स्वयं जानेकी तैयारी करने लगे। तब इसपर राम और लक्ष्मणने आपत्ति प्रकट की। रामने कहा, "मेरे जीवित रहते हुए आप जा रहे हैं। आप तो केवल यह आदेश दें कि मैं शीघ्र शत्रुका संहार करूँ।" इसपर राजाने कहा, "तुम अभी बच्चे हो, केलेके गाभकी तरह अत्यन्त सुकुमार तुम बड़े-बड़े राज-समूहोंसे कैसे लड़ोगे? हाथियोंकी घटा कैसे विदीर्ण करोगे? महारथमें शत्रुओंके रथको कैसे प्रेरित करोगे? अपने उत्तम अश्वोंसे अश्वोंके निकट कैसे पहुँचोगे? तब रामने कहा— 'तात आप क्षेत्र जाइये हम लोग ही काफी हैं, आप क्यों प्रवृत्ति कर रहे हैं। क्या बालरवि अन्धकार नष्ट नहीं करता? क्या छोटी दावाग्नि नगर नहीं जला देती? क्या साँपका बच्चा नहीं काटता? ॥ १-६ ॥

[७] तब दशरथ घर लौट आये। और राघव तुरन्त ही म्लेच्छोंके महायुद्धकी सूचना पाकर चल पड़े। उनके साथ दूसरा केवल दुस्सह लक्ष्मण था मानो एक पवन था तो दूसरा आग। वे दोनों मेघ रथ अश्व योधा और गजवाहनों सहित म्लेच्छोंसे भिड़े। अपने सम्भ बाणोंकी मारसे शत्रु-सेनाको मग्नप्रभ कर उन्होंने सीताका उद्धार किया। तब शबर और पुलिंदोंका प्रधानतम नामका राजा युद्धमें आया। उसने कुमारके रथको नष्ट कर दिया और छत्र छिन्न-भिन्न। धनुषके दो टुकड़े कर दिये। तब रामने नाग

और नागिनोंके आकारके बाणोंसे उसका सामना किया। तब उसकी सेना, तलवार झुकाये हुए इधर-उधर भागने लगी। युद्धमें आहत होकर मिल्लराज दसों ही पाँवोंसे किसी तरह भाग निकला। तब जनकने उसी समय रामके लिए जानकी अर्पित कर दी ॥ १–६ ॥

[८] बर्बर शबरोंकी सेना नष्ट होने पर जनककी धरा स्वतन्त्र हो गई। उन्होंने रामलक्ष्मण (बलभद्र और वासुदेव) का तरह-तरहके आभरणों और रत्नोंसे आदर-सत्कारकर उन्हें विदा किया लेकिन इस समय तक सीता देवीकी देह-ऋद्धि (यौवन) विकसित हो चुकी थी। तब एक दिन दर्पण देखते हुए उसने (दर्पणकी) परछाईंमें महाभयंकर नारदका प्रतिबिम्बमें देखा। वह तुरन्त ही उसी तरह मूर्च्छित हो गई जिस तरह कुरंगी सिंहके आनेपर भीत हो जाती है। आशंकाके ग्रहसे अभिभूत सहेलियोंने "हाय माँ हाय माँ" कहते हुए कोलाहल किया। (उसे सुनकर) अनुचर अमर्ष और क्रोधसे भरकर तलवार उठाये हुए दौड़े। नारदको मारा तो नहीं परन्तु तो भी गर्दनिया देकर बाहर निकाल दिया। अपमानित होकर देवर्षि चले गये। उन्होंने तब पटपर सीताका चित्र अंकित किया। और जाकर विषबुझीकी भाँति उस प्रतिमा को भामंडलके लिए 'गृहपत्नी' के रूपमें दिखाया ॥१–९॥

[९] कुमार भी उस चित्र-प्रतिमाको देखकर कामदेवके पंच बाणोंसे आहत हो गया। उसका मुख सूखने लगा। मस्तक घूमने लगा। अंग अंगमें जलन होने लगी। भुजा रूपी डालें मुड़ने लगीं। बाल बच्चे हुए होने पर भी बचपनसे मुग्ध हुआ था। कामकी दसों दिशाएँ इस प्रकार मार मचाने लगीं—पहली अवस्थामें चिन्ता तो दूसरी अवस्थामें प्रियको देखनेकी अभिलाषा हो रही थी। तीसरीमें लम्बी साँसें खींचना और चौथीमें ज्वरका आ

जाना। पाँचवीमें अन्नका मर्गोका नहीं छोड़ना, छठीमें मुँहमें कोई भी चीज अच्छी नहीं लगना, सातवीमें एक कौर भी भोजन नहीं करना। आठवीमें बकना और जम्हाई लेना बंद हो जाना। नवींमें प्राणोंमें संदेह होने लगना और दसवींमें मृत्युका किसी भी तरह नहीं चूकना ॥८-८॥

उसकी यह हालत देखकर अनुचरोंने जाकर राजासे कहा "देव, अब आपके पुत्रका जीवित रहना कठिन है। किसी लड़कीके (प्रेममें) वह कामकी दसवीं अवस्थाको पहुँच गया है" ॥९॥

[१०] तब विद्याधर चन्द्रगतिने, "नाग नर और अमर कुलोंमें कलह करनेवाले नारदजीसे पूछा "कहिए आपने कहीं कोई ऐसी भी कन्या देखी है जो मेरे पुत्रके हृदयमें बस सकती है।" यह सुनकर महर्षि बोले—"मिथिलामें चन्द्रकेतु नामका राजा हुआ था। उसके पुत्र जनककी कन्या सीता तीनों लोकोंमें सबश्रेष्ठ है। वही इस कुमारके योग्य है अतः पुरंदरराज जनकसे उसका अपहरण कर लाओ।" यह सुनकर, विद्याधरस्वामी चंद्रगतिने, मकुटित-गतिवाले चपलवेग नामके विद्याधरसे कहा—"जाओ, विदेहराज जनकको हरकर ले आओ, मुझे उससे विवाह-सम्बन्ध करना है। वह भी चन्द्रगतिका मुँह देखकर चला गया, और घोड़ा बनकर राजा जनकके भवनमें पहुँचा। राजा जनक कौतुकसे जैसे ही उस घोड़े पर चढ़ा, वैसे ही वह दक्षिण श्रेणीमें पहुँच गया। विद्याधर मिथिला-नरेश जनकको जिन-मन्दिरमें छोड़कर, अपने सुन्दर नगरमें प्रविष्ट हुआ और अपने स्वामीके पास जाकर कहा, "मैं राजा जनकको ले आया हूँ।" यह सुनते ही, विरह परवश अपने पुत्रके साथ चन्द्रगति जिन-मंदिरमें, वंदना भक्तिके लिए गया ॥ १-११ ॥

[११] विद्याधर और मनुष्योंके नेत्रोंको आनन्द देनेवाले चंद्रगति और जनकमें बातें होने लगीं। सहसा चंद्रगतिने कहा, "हम दोनों स्वजनता (रिश्तेदारी) क्यों न कर लें, तुम्हारी लड़की और मेरा लड़का, यदि दोनोंका विवाह हो जाय तो मेरा मनोरथ सफल हो।" पर इस बातसे जनकका केवल क्रोध बढ़ा। उन्होंने कहा, "परन्तु मैंने अपनी लड़की दशरथ-पुत्र रामको दे दी है, विजयश्री रूपी कामिनीमें आसक्त उन्होंने म्लेच्छोंकी सेनाका ध्वस्त किया है।" इस प्रसंग पर, चन्द्रगतिने अहंकारके स्वरमें कहा—"कहाँ विद्याधर और कहाँ धरतीगामी मनुष्य? इन दोनोंमें वही अन्तर है जो हाथी और मच्छरमें और फिर मनुष्य क्षेत्र अत्यंत तुच्छ है। वहाँका जीवन स्तर भी कुछ विशेष ऊँचा नहीं है।" तब जनकने उत्तरमें कहा—"विश्वमें मनुष्य क्षेत्र ही सबसे आग और अच्छा है। उसमें ही तीर्थकरोंने भी मुक्ति और केवलज्ञान प्राप्त किया है" ॥१-९॥

[१२] यह सुनकर भामंडलके पिता चन्द्रगतिने, जो विचार और शक्तिमें बढ़ा था कहा—"अच्छा हमारे नगरमें मजबूत प्रत्यंचाके दो दुर्जेय धनुष हैं, उनके नाम हैं वज्रावर्त और समुद्रावर्त। यक्ष-राक्षसों द्वारा वे सुरक्षित हैं। भामंडल और राममेंसे जो उन्हें चढ़ानेमें समर्थ होगा, सीता उसीको ब्याही जाय।" जनकने यह शर्त मान ली। और उन धनुषोंको लेकर वह अपनी नगरीको चले गये। मञ्च (और मंडप) बनवाकर उन्होंने स्वयंवर बुलवाया। दुनियाके जिन राजाओंको मालूम हो सका, वे सब उसमें आये, परन्तु धनुषके प्रतापके आगे सबको पराजित होना पड़ा। उनमें एक भी ऐसा नहीं था जो धनुषको चढ़ा सकता। हताश वह भी अपना मुँह दिखाकर रह गये। वे दोनों धनुष, कुलीकी तरह शुद्धवंश (बांस और कुल) के और शासन होते

हुए भी, गुण (प्रत्यंचा और अच्छे गुण) पर नहीं चढ़ रहे थे, इसलिए अवश्य वे लोगोंको अनिष्टकर थे ॥ १–६ ॥

[१३] सब राजाओंके पराजित होनेपर बलभद्र और वासुदेव सीताके स्वयंवर-मण्डपमें पहुँचे। तब लाखों राजाओंका दूरसे ही हटानेवाले रक्षक चलाने वालों धनुष बताते हुए उनसे कहा,—"लीजिये, अपने-अपने प्रमाणके अनुरूप इनमेंसे एक-एक चुन लें।" उन्होंने समुद्रावर्त और वज्रावर्त धनुष हाथमें लेकर मामूली धनुषोंकी भाँति, उनपर डोरी चढ़ा दी, तब देवेन्द्रने फूलोंकी वर्षा की। राम-सीताका विवाह हो गया, जो राजा स्वयंवरमें आये थे वे उदास होकर अपने-अपने नगर चले गये। दिन-वार-नक्षत्र गिन लग्नके योग्य ग्रहोंको देखकर ज्योतिषियोंने भविष्यवाणी की "इस कन्याके कारण बहुतसे राक्षसोंका विनाश होगा" ॥१–८॥

[१४] शशिवर्द्धन नामक राजाकी अठारह लड़कियाँ थीं। सभी चन्द्रमुखी कमलदलकी तरह आयत नेत्रवाली, कोयल और वीणाकी तरह सुन्दर स्वरवाली थीं। उसने उनमेंसे इस रामके आठ भाइयों (भरत और शत्रुघ्न) को तथा शेष आठ लक्ष्मणको विवाह दीं। द्रोणने भी अपनी सुन्दर कन्या लक्ष्मणको विवाह दी। वैदेहीके अयोध्या आनेपर राजा दशरथने धूमधामसे उत्सव किया। त्रिपथ चतुष्पथ और कथा-स्थान केशर और कपूर-धूलिसे पूरित थे। चन्दनका छिड़काव हो रहा था। तरह-तरहके गायन और गीत गाये जा रहे थे। वेदियाँ मणियोंसे रचित थीं, और मोतियोंके दानोंसे 'रंगावली' बनाई जा रही थी। सुवर्ण और मणियोंसे बने दृष्टवासोंका भी मन चुराने वाले तोरण बाँधे जा रहे थे। सीता और रामके (गृह) प्रवेशपर लोगोंने जयजयकार किया। वे दोनों भी साकेतमें अविचल रति सुखका आनन्द लेते हुए रहने लगे ॥ १–१० ॥

हुए भी, गुण (प्रत्यञ्चा और अच्छे गुण) पर नहीं चढ़ रहे थे, इसलिए अवश्य वे लोगोंको अनिष्टकर थे ॥ १-६ ॥

[१३] सब राजाओंके पराजित होनेपर बलभद्र और वासुदेव सीताके स्वयंवर-मण्डपमें पहुँचे। तब लाखों राजाओंको दूरसे ही हटानेवाले रक्षक यक्षोंने दोनों धनुष बताते हुए उनसे कहा— 'लीजिये अपने-अपने प्रमाणके अनुरूप इनमेंसे एक-एक चुन लें। उन्होंने समुद्रावर्त और वज्रावर्त धनुष हाथमें लेकर मामूली धनुषोंकी भाँति उनपर डोरी चढ़ा दी। तब देववृन्दने फूलोंकी वर्षा की। राम-सीताका विवाह हो गया, जो राजा स्वयंवरमें आये थे वे उदास होकर अपने-अपने नगर चले गये। दिन-वार-नक्षत्र गिन लग्नके योग्य ग्रहोंको देखकर, ज्योतिषियोंने भविष्यवाणी की "इस कन्याके कारण बहुतसे राक्षसोंका विनाश होगा' ॥१-८॥

[१४] शशिवर्धन नामक राजाकी अठारह लड़कियाँ थीं। सभी चन्द्रमुखी कमलदलकी तरह आयत नेत्रवाली कोयल और वीणाकी तरह सुन्दर स्वरवाली थीं। उसने उनमेंसे दस रामके छोटे भाइयों (भरत और शत्रुघ्न) को तथा शेष आठ लक्ष्मणको विवाह दीं। द्रोणने भी अपनी सुन्दर कन्या लक्ष्मणको विवाह दी। वैदेहीके अयोध्या आनेपर राजा दशरथने धूमधामसे उत्सव किया। त्रिपथ चतुष्पथ और कथा-स्थान केशर और कपूर-धूलिसे धूसित थे। चन्दनका छिड़काव हो रहा था। तरह-तरहके गायन और गीत गाये जा रहे थे। दहली मणियोंसे रचित थी, और मोतियोंके दानोंसे 'रंगावली' बनाई जा रही थी। सुवर्ण और मणियोंसे बने देवताओंका भी मन चुरानेवाले तोरण बाँधे जा रहे थे। सीता और रामके (गृह) मंचपर मार्गोंने जयजयकार किया। वे दोनों भी साकेतमें अविचल रति सुखका आनन्द लेते हुए रहने लगे ॥ १-१ ॥

बाईसवीं संधि

अपने घर आकर, कौशल्यानन्दन रामने सपत्नीक, आषाढ़की अष्टमीके दिन जिनेन्द्रका अभिषेक किया।

[१] हजारों देवयुद्धोंमें अजेय राजा दशरथने भी जिनका अभिषेक किया, उन्होंने जिन-प्रतिमाके प्रक्षालनका दिव्य गंधोदक रानियोंके पास भेजा। परन्तु बूढ़ा कंचुकी रानी सुप्रभाके पास उसे नहीं ले गया। इतनेमें राजा दशरथ रानीके पास पहुँचे, और उसे (दीनमुद्रामें) देख, हर्षसे गद्गद स्वरमें बोले "हे नितम्बिनी, तुम खिन्नमन क्यों हो? फिर चित्रित दीवालकी तरह तुम्हारा मुँह फीका क्यों हो रहा है।" इसपर प्रणाम करके रानी सुप्रभा बोली—"देव मेरी कहानीका सुननेसे क्या, यदि मैं भी औरोंकी तरह प्रिय होती तो गंधोदक मुझे भी मिलता। ठीक इसी समय कंचुकी उसके पास आया। चेहरा पूर्ण चन्द्रकी तरह एकदम सफेद, दाँत लम्बे हाथमें दण्ड बोली लड़खड़ाती हुई, राजाको भी देखनेमें असमर्थ। देखते ही राजाने उसे खूब डाँटा, कंचुकी तुमने इतनी देर क्यों की, जिससे जिन-वचनकी तरह ही पवित्र गंधोदक रानीको शीघ्र नहीं मिल सका॥१–८॥

[२] तब प्रणाम करके कंचुकीने निवेदन किया "महाराज, मेरे दिन अब चले गये मेरा यौवन ढल चुका है। पहलेकी अवस्थापर सफेदी पोतती हुई यह जरा आ रही है। और दुराचारिणी स्त्रीकी तरह जबरदस्ती मेरे सिरसे लग रही है मेरी गति टूट चुकी है, हड्डियोंके जोड़ ढीले पड़ गये हैं, कान सुनते नहीं, आँखें देखती नहीं (अन्धी हो चुकी हैं) सिर काँप रहा है, और बोली मुँहमें ही लड़खड़ा जाती है, दाँत भी चले गये और शरीरकी कांति भी क्षीण हो गई। खून सब गल गया है, केवल

चमड़ी ही चमड़ा है यहाँ मैं ऐसा ही हूँ जैसे दूसरा जन्म हो। अब पहाड़ी नदीके वेगकी तरह मेरे पैर सरपट नहीं चलते, अब आप ही बताइए तब ! गजादक समीका कैसे मिलता ॥१–६॥

कंचुकीके वचन सुनकर राजा दशरथने जब उनपर विचार किया तो वह गहरे विषादमें पड़ गये। उन्हें लगा–सचमुच जीवन अस्थिर है, कौन सा सुख है इसमें। इसलिए मुझे यह काम करना चाहिए जिसमें मोक्ष सध सके" (दुनियामें) सुख मधुकी बूँदकी तरह है और दुख मेरु पर्वतकी तरह फैल जाता है। अतः वही कर्म करना ठीक है जिससे मोक्षकी सिद्धि हो ॥७–८॥

[३] किसी दिन मेरी भी इस बूढ़े कंचुकीकी तरह हालत हो जायगी, कौन मैं ? किसकी यह धरती ? किसका धन ? छत्र और सिंहासन ? सभी कुछ अस्थिर है, यौवन शरीर और जीवनको धिक्कार है। संसार असार है और धन भयंकर है। विषय विष है, और बंधुजन दुश्मन। परकी स्त्रियाँ अपमानकी कारण हैं। पुत्र केवल विघ्न करनेवाले शत्रु हैं, घुड़ाप और मौतमें ये मौका पाकर क्या करते हैं जीवकी आयु वायु है, हम भी बेचारे हत हो जाते हैं। रथ खण्डित हो जाते हैं। और गज भी रोगको मानते हैं। तन तृणकी तरह है जो आधे पलमें ही नष्ट हो जाता है। धन धनुषकी तरह है जो गुण (डोरी) से भी टेढ़ा होता है। दुहिता दुष्ट हृदय ही होती है। माताको माया ही समझो। समभाग (धनका) बँटानेवाले होनेस भाइ भाइ हैं। यह, और जो भी है वह सब 'राम' को अर्पितकर मैं तप करूँगा" राजा दशरथने यह विकल्प अपने मनमें स्थिर कर लिया ॥१-८॥

[४] ठीक इसी समय एक श्रमणसंघ वहाँ आया। जो परमतरूपी पवनके लिए अकम्प पर्वत, दुर्दम कामदेवको मथनेवाला भयभीत लोगोंका उद्धारक, विषयरूपी साँपके विषका शमन

करनेके लिए गरुड़, शम और दमकी सीढ़ियोंसे मोक्षगामी, तप लक्ष्मीरूपी उत्तम स्त्रीका आलिंगन करनेवाला, कलियुगके पाप-जल का शोषण करनेके लिए सूर्य तीर्थंकरोंके चरणकमलोंके लिए भ्रमर और मोहरूपी महासुरकी नगरीके लिए भयंकर था। उसमें संसार समुद्रकी थाहको जाननेवाले सत्यभूति नामक एक साधु थे जो कभी मगध शासक थे। वह पुत्र और स्त्रीके प्रेमसे दूर हो चुके थे। वह धीरतामें मन्दराचल और गम्भीरतामें समुद्र थे, संघपति वह भट्टारक सत्यभूति अयोध्यामें, मानो राजा दशरथको यही बतावनी देने आये थे कि शिवपुरीके लिए चलो ॥१-८॥

[४] इधर रथनूपुरचक्रवालपुरमें भामण्डल (सीताके वियोगमें) अपनी श्रेणीका राजपाट छोड़कर, सिद्धिके ध्यानमें रत मुनिकी तरह धूनी रमाये बैठा था। सीताके वियोगका किसी प्रकार सहन करते हुए उसके कामकी अवस्थाएँ प्रगट होने लगीं उसे किसी भी विचारधाराकी इच्छा नहीं थी। वह भोजन पान सब कुछ छोड़ बैठा न ठण्डा पानी, न चन्दन, न कमलोंकी सेज, कुछ भी उसे अच्छा नहीं लगता। वैद्य आते और देखकर चले जाते, वह दुस्सहविरहसे पीड़ित हो रहा था जो किसी भी दवासे नष्ट नहीं हो सकता था। लम्बी लम्बी साँस छोड़ता हुआ वह थक कर ऐसा बैठा था मानो सिंह ही बैठा हो। 'मैं उस मानवीका बलपूर्वक अपहरण कर भोग करूँगा' यह सोचकर वह सेनाके साथ तैयार होकर निकल पड़ा परन्तु जैसे ही विदग्ध नगर पहुँचा उसे देखते ही उसे जातिस्मरण हो आया। पिछले जन्ममें मैं इसी नगरमें राजा था ॥१-९॥

[५] उस प्रदेशको देखकर वह मूर्छित हो गया। और फिर सब भवान्तरोंका स्मरण कर उसने सातसे भद्रापूर्वक कहा "मैं पहले यहाँ कुण्डलमण्डित नामका अत्यन्त अहंकारी राजा था। और एक

एवँ होन्तु पत्तु अवराइय-भरहु । पिहुलु नामेण कुमार महु ॥ ३ ॥
ससिवेय-धुहिए सयवरें वि आउ । परिणेसइ कुमारिएँ किर बराउ ॥ ४ ॥
अद्दाविय मइँ तहों त कण्णु । सो वि मरेंवि सुरत्तणु कहि मि पत्तु ॥ ५ ॥
सुय तउ मि विदेहहें देहें जाउ । पिउ देवें चामइ-अमल-जाउ ॥ ६ ॥
कम्मेँ पमिउ कम्मेण वि ण भिण्णु । पुप्फवइहें पइँ सामरेण दिण्णु ॥ ७ ॥

घत्ता

अच्छिउ तुम्ह घरें अज्जु सयलु वि एँउ परिणाणइ ।
जण्णउ जणेर महु मायरि विदेह सस जाणइ ॥ ८ ॥

[७]

निसुणेवि अणुपिउ निरवसेसु । गउ अप्पणहत्थिएँ तं पएसु ॥ १ ॥
जहिँ वसइ महारिसि सव्वभूइ । जहिँ जिणवर-सुव्वय-महाविभूइ ॥ २ ॥
महुरंगा-कामु जहिँ दसरहस्सु । जहिँ सीय-राम-लक्खण-विकासु ॥ ३ ॥
सत्तुहण-भरह जहिँ सिक्खिय वे वि । पउ तहिँ भामण्डलु अप्पणु लेवि ॥ ४ ॥
सिसु वन्दिउ मोक्ख-लच्छी-बहू । पुणु गुरु-परियारिएँ सयल-साहु ॥ ५ ॥
पुणु किउ संभासणु समउ तेहिँ । सत्तुहण-भरह-बल-लक्खणेहिँ ॥ ६ ॥
सामाविउ सीयहें भाइ जेम । थिउ हरि-बल-मज्झें लायणेण ॥ ७ ॥
सुउ परम-धम्मु गुरु-भासणेण । दसरहु कमल-कल्लाणयेण ॥ ८ ॥

घत्ता

दसरहु मण्ड-दिणें थिउ रामहों रज्जु समप्पइ ।
केक्कय ताव मणेँ अप्पाणएँ परिणिवि तप्पइ ॥ ९ ॥

पिंगल नामका कुमारभट्ट था। वह राजा चन्द्रध्वजकी लड़कीका अपहरणकर एक कुटियामें रहता था। परन्तु मैंने उसकी पत्नीको छीन लिया। वह मरकर किसी प्रकार देव हुआ। मैं भी मरकर विदेह स्वर्गमें पहुँचा। वहाँसे आकर सीताके साथ जुड़वा भाई उत्पन्न हुआ। वनमें फेंके जाने पर भी मुझे एक काँटा तक नहीं लगा, और आपने आदरके साथ मुझे अपनी पत्नी पुष्पावतीको सौंप दिया। फिर आपके घरमें किस प्रकार बड़ा हुआ। यह सब लोग जानते हैं, जनक मेरे पिता, माँ विदेही और सीता बहन हैं॥१-८॥

[७] (इस प्रकार) समस्त वृत्तान्तको कहकर वह (भामण्डल) उस भट्टारककी वन्दना-भक्तिके लिए गया, जहाँ महाऋषि सत्यभूति रहते थे। जहाँ जिनवरके स्नान (अभिषेक) की महाविभूति हो रही थी। जहाँ महाराज दशरथका वैराग्य काल था। जहाँ सीता देवी राम और लक्ष्मणका (ठीक) विलास हो रहा था, और जहाँ शत्रुघ्न तथा भरतके मिलनेकी (सम्भावना) थी (ऐसे उस स्थानको) भामण्डल अपने पिता (चन्द्रगति) को लेकर गया। उसने (वहाँ) मोक्षके आधार-स्तम्भ जिनकी वंदना कर फिर गुरु और श्रमण संघकी परिक्रमा दी, और उनके साथ संभाषण किया। (इसके बाद) शत्रुघ्न भरत राम और लक्ष्मणको उसने यह बताया कि किस प्रकार वह सीताका भाई और रामका अपराधी साला है। विद्याधर चन्द्रगतिने भी शुभभावसे परमधर्म सुनकर तपस्या अंगीकार कर ली॥१-८॥

दूसरे दिन दशरथने जब रामको राज्य अर्पित किया तो कैकेयी अपने मनमें वैसे ही सतप्त हो उठी जैसे ग्रीष्मकालमें धरती तप उठती है॥१॥

[८] राजा दशरथके दीप्तयश और लक्ष्मीके अभिराम रामको राज्य (मिलनेकी) बात सुनकर प्राणराजकी बहन कैकेयीका अनुराग भग्न हो उठा। नूपुरोंकी कांतिलतासे उसके चरण लिप्त हो रहे थे। उसका मध्य लम्बी करधनीके प्रभावसे उद्विग्न हो रहा था। ऊँचे स्तनोंके भारसे कमर झुकी जा रही थी। उसके हाथ नव-अशोक पुष्पकी कान्ति समान आरक्त थे। वह कोयलके आलापकी तरह बहुत ही मधुर बोलती थी। श्रेष्ठ मोरके पंख समूहके सदृश उसकी केशराशि (अत्यन्त चमकीली) थी। प्रच्छन्न वेष, कामदेवकी मल्लिकाके समान थी वह। कैकेयी वहाँ गई जहाँ दरबारका भाग था और राजा दशरथ, इन्द्रकी तरह सिंहासनपर बैठे हुए थे। उसने (धनसे) वर माँगा "स्वामी यही वह समय है (कि अब) आप मेरे पुत्र (भरत) को राज्यपाल बनाएँ। तब दशरथने यह कहकर कि प्रिये तुम्हारी यह अपराधपूर्ण (बात) होगी, लक्ष्मण और रामको बुलाया॥१-८॥

उन्होंने कहा "यदि तुम मेरे पुत्र हो तो इस आज्ञाको मानो। छत्र सिंहासन और सारी धरती भरतको सौंप दो" ॥९॥

[९] अथवा भरत आसन्न भव्य है, वह समस्त संसार घर परिजन जीवन शरीर और धनको असार समझता है। उसका मन तो तपश्चरणमें रहा है। यदि मैं तुम्हें छोड़कर उसे राज्य दे दूँ तो लक्ष्मण आज ही बाणोंको साफ कर देगा। तब न मैं, न न भरत न कैकेयी, न कुमार शत्रुघ्न और न सुप्रभा कोई भी उससे नहीं बचेगा। यह सुनकर प्रद्युम्न मुखसे रामने कहा—'पुत्रका पुत्रत्व तो इसीमें है कि वह अपने कुलको संकटके मुखमें न डाले, और अपने पिताकी आज्ञा न टाले। शत्रुपक्षका संहार करे। अन्यथा, हृदयपीडक, गुणहीन पुत्र शब्दकी पूर्ति करनेवाले

[८] राजा दशरथके दीक्षाग्रहण और लक्ष्मीके अभिनव राज्य (मिलनेकी) बात सुनकर द्रोणराजकी बहन कर्मोत्साह मग्न हो उठा। नूपुरोंकी कांतिछटासे उसके चरण छिप गए थे, उसका मध्य लम्बी करधनीके प्रभावसे खंडित हो रहा था। स्तनोंके भारसे कमर झुकी जा रही थी। उसके हाथ नव-अंकुर वृक्षकी कान्ति समान आरक्त थे। वह कोयलके आलापकी तरह बहुत ही मधुर बोलती थी। मेघ भारके पल समूहके सदृश केशराशि (अत्यन्त चमकीली) थी। चंचल नेत्र, मत्त मल्लिकाके समान थी वह। कैकेयी वहाँ गई जहाँ दशरथ बैठा था, और राजा दशरथ, इन्द्रकी तरह सिंहासनपर बैठे हुए थे। उसने (उनसे) वर माँगा "स्वामी यही वह समय है (कि जब) आप मेरे पुत्र (भरत) को राज्यपाल बनाएँ। तब दशरथने यह कहकर कि प्रिये तुम्हारी यह अपराधपूर्ण (बात) होगी, लक्ष्मण और रामको बुलाया॥१-८॥

उन्होंने कहा "यदि तुम मेरे पुत्र हो तो इस आज्ञाका पालन। छत्र सिंहासन और सारी धरती भरतको सौंप दो" ॥९॥

[९] अथवा भरत आसन्न भव्य है यह समस्त संसार, परिजन, जीवन शरीर और धनको असार समझता है। उसका मन तो तपश्चरणमें रखा है। यदि मैं तुम्हें छोड़कर उसे राज्य दूँ तो लक्ष्मण आज ही लाखोंको साफ कर देगा। तब न मैं न भरत, न कैकयी न कुमार शत्रुघ्न और न सुप्रभा कोई भी उससे नहीं बचेगा। यह सुनकर प्रफुल्ल मुखसे रामने कहा— "पुत्रका पुत्रत्व तो इसीमें है कि वह अपने कुलको संकटमें न डाले, और अपने पिताकी आज्ञा न टाले। शत्रुपक्षका संहार कर। अन्यथा हृदयपालक गुणहीन पुत्र शब्दकी पूर्ति करता

घत्ता

अण्णु ण वि इच्छइ तसु माणहों मणु पव्वज्जहें ।
सुअहो भरहु महि देवि जामि ताम वण-वासहों ॥ ९ ॥

[१०]

हक्कारिउ भरहु णरेसरेण । पुणु वुत्तउ णेह-महाभरेण ॥ १ ॥
'लइ कण्णइँ तउ पइसप्पउ रज्जु । साहेवउ मइँ अप्पणउ कज्जु' ॥ २ ॥
तं वयणु सुणेवि दुम्मिय-मणेण । पडिजम्पिउ केक्कय-णन्दणेण ॥ ३ ॥
'तुहुँ ताय पियल्लु छिगल्लु रज्जु । मायरि छिगल्लु सिरें पडउ वज्जु ॥४॥
णउ जाणहुँ मढियएँ को सहाउ । जोव्वण-मयत्त ण गणन्ति पाउ ॥ ५ ॥
पर दुम्मइ तहुँ मि महा-मयन्धु । किं रज्जु मुएँवि मणु पइ-बन्धु ॥ ६ ॥
सप्पुरिस वि चञ्चल-चित्त होन्ति । मणें सुहासुह ण चिन्तवन्ति ॥ ७ ॥
मा भिन्दु मुएँवि को वि बन्धु । कामन्धहों किर कहिँ तणउ सधु ॥ ८ ॥

घत्ता

अच्छउ पुणु वि घरें सच्चइ रामु हवेँ कलसु ।
अच्छिउ म होमि तुहुँ मवि सुऍ सहसा अप्पुणु' ॥ ९ ॥

[११]

सुअ-वयण-विरामें दसरहेण । वुच्चइ अवसव्वहों जम्मणेण ॥ १ ॥
'केकयहें रज्जु रामहों पवासु । पव्वज्ज मज्झु पर जगें पगासु ॥ २ ॥
तहुँ पावें परासउ परम-रज्जु । जउ बालहों पालिउ को वि धम्मु ॥३॥
णिम्मइ बहुवहुँ महप्पहासु । सुण भेसह-समपाहार-वासु ॥ ४ ॥
एलिसइ संसु कुसीम-वासु । णिम्मइ णिसु-सुण महोच्छवासु ॥ ५ ॥
जिण-वन्दण धारालेण्ण-मसु । सल्लेहण-काल समाहि-मरणु ॥ ६ ॥
पइ सम्मइँ धम्मइँ परम-धम्मु । जो पालइ तहों सुर-महय-जम्मु' ॥७॥
तं वयणु सुणेवि सहरुसेण । वुत्तउ सुरसइ-णोहिन्दण ॥ ८ ॥

पुत्रसे क्या लाभ ? हे तात ! लक्ष्मण भी घात नहीं करेगा। आप तप साधें और सत्यको प्रकाशित करें। भरत धरतीका भाग, और मैं वनवासके लिए जाता हूँ ॥१-६॥

[१०] तब स्नेहसे भरे हुए राजाने भरतको बुलाकर कहा—"यह छत्र सिंहासन और राज्य तुम्हारा है, अब मैं अपना काम साधूँगा।" यह सुनते ही कैकेयीपुत्र भरतने धिक्कारते हुए कहा—"पिताजी, तुम्हें और तुम्हारे राज्यको धिक्कार है। माँको धिक्कार है। उसके सिर पर वज्र क्यों नहीं गिर पड़ा ? पर क्या आप भी नहीं जानते, महिलाओंका क्या स्वभाव होता है ? यौवनके मदमें न पाप नहीं गिनती। महामदान्ध तुम भी यह नहीं समझ सके कि रामको छोड़कर राज्यपट्ट मुझे बाँधा जायगा ? सज्जन पुरुष भी पक्षपातचित्त हो जाते हैं और उचित-अनुचितका विचार नहीं कर पाते ? माणिक्य छोड़कर काँच कौन लेगा कामान्धके लिए सब कैसा ? अथवा आप घर पर ही रहें, शत्रुघ्न राम लक्ष्मण और मैं वनको जाते हैं, आप धरतीका भाग करें आपका वचन भी झूठा नहीं होगा ॥१-६॥

[११] भरतके यह कहनेपर, अज रण्यके पुत्र दशरथ बोले, "जगमें प्रकट है कि भरतको राज्य रामको प्रवास और मुझे संन्यास मिलेगा। अतः घर रह कर तुम धरतीका पालन करो। इससे बढ़ कर दूसरा धर्म नहीं हो सकता। यतिवरोंका बड़प्पन देना, शास्त्र औषध अभय और आहार दान करते रहना, अपना शील रखना, दुर्गतिका नाश करना जिन पूजा उत्सव और उपवास करते रहना जिन वन्दनाके बाद द्वार पर अतिथिकी बाट देखना सल्लेखनाके समय समाधिमरण करना बस सब धर्मोंमें यही परम धर्म है, जो इसका पालन करता है वह देव या मनुष्य योनिमें उत्पन्न होता है।" यह वचन सुनकर सहृदय भरतने फिर कहा

ताथ, आपने जो यह कहा कि घरमें रहनेमें सुख है, तो आप उसे तिनकेके समान छोड़कर सन्यास क्यों ग्रहण कर रहे हैं ? ॥१-८॥

[१०] इसपर अपनी खिन्नता दूर करते हुए दशरथने कहा, "यदि तू मेरा सच्चा पुत्र है, तो प्रव्रज्यामें विघ्न क्यों करता है। तुम अपने कुलवंशके धुरन्धर तुम सिंह बना, कैकेयीको जो सच्चा वचन मैं दे चुका हूँ, उसे हे गुणरत्नराशि, तुम पूरा करो। तब (बीचमें टोककर) कोशल नरराजकी पुत्री अपराजिताके लिए दुर्लभ सीतापति रामने कहा, 'अब तो घरतीका भाग करनेमें ही भलाई है, क्षण-क्षणमें उक्ति प्रति उक्तिसे क्या लाभ ? अपने पिताका वचन पालो अच्छा भाई मेरे अनुरोधसे ही तुम यह पृथ्वी स्वीकार कर लो," यह कहकर अनेक महायुद्धोंका निपटानेवाले, क्षीरसागरकी तरह निर्मल, मदराचलकी तरह अविचल, रघुसुत रामने लोगोंके देखते-देखते अपने प्रचंड हाथों (ऐरावतकी सूँड की तरह विशाल) से भरतके सिरपर राजपट्ट बाँध दिया ॥१-६॥

●

तईसवीं संधि

इसके बाद, मुनिसुव्रत तीर्थंकरके तीर्थ-कालमें राम और रावणका भयंकर युद्ध हुआ। अतः बुधजनोंके कानोंके लिए 'रसायन स्वरूप' उस रामायणको सुनो।

[१] भट्टारक जिनको नमन करके मैं-काव्यके ऊपर अपना मन कर रहा हूँ। शब्दार्थ समूहसे अच्छी तरह परिचित, संसारमें जो सज्जन और पण्डित हैं, और जिनके चित्तका अनुरंजन व्यास भी नहीं कर पाते क्या वे इस काव्यको मनसे ग्रहण कर सकेंगे ? अथवा व्याकरण और आगमका ज्ञान हम जैसे लोगोंको [काव्यका]

वाद, आपने जो यह कहा कि घरमें रहनेमें सुख है, सो आप उसे तिनकेके समान छोड़कर सन्यास क्यों ग्रहण कर रहे हैं ? ॥१-८॥

[९] इसपर अपनी खिन्नता दूर करते हुए दशरथने कहा, "यदि तू मेरा सच्चा पुत्र है, तो प्रव्रज्यामें विघ्न क्यों करता है। तुम अपने कुलवंशके धुरन्धर तुम सिद्ध बनो, कैकेयीको जो सच्चा वचन मैं दे चुका हूँ उसे हे गुणरत्नराशि, तुम पूरा करो। तब (बीचमें टोककर) कौशल नरेशकी पुत्री अपराजिताके लिए उत्तम सीतापति रामने कहा, "अब तो धरतीका भाग करनेमें ही भलाई है, उक्ति-प्रत्युक्तिमें उक्ति प्रति उक्तिसे क्या लाभ ? अपने पिताका वचन पालो अच्छा भाई मेरे अनुरोधसे ही तुम यह पृथ्वी स्वीकार कर लो" यह कहकर अनेक महायुद्धोंको निपटानेवाले, क्षीरसागरकी तरह निर्मल मंदराचलकी तरह अविचल, रघुसुत रामने लोगोंके देखते-देखते अपने प्रचण्ड हाथों (ऐरावतकी सूँड की तरह विशाल) से भरतके सिरपर राजपट्ट बाँध दिया ॥९-१॥

•

तईसवीं संधि

इसके बाद मुनिसुव्रत तीर्थंकरके तीर्थ-कालमें राम और रावणका भयंकर युद्ध हुआ। अतः बुधजनोंके कानोंके लिए 'रसायन स्वरूप' उस रामायणको सुनो।

[१] महर्षिक जिनको नमन करके मैं—काव्यके ऊपर अपना मन कर रहा हूँ। शब्दार्थ समूहसे अच्छी तरह परिचित, संसारमें जो सज्जन और पण्डित हैं, और जिनके चित्तका अनुरञ्जन व्यास भी नहीं कर पाते क्या वे इस काव्यको मनसे ग्रहण कर सकेंगे ? अथवा व्याकरण और आगमसे हीन हम जैसे लोगोंका [काव्यका]

ग्राहक कौन हो सकता है ? फिर कवियोंके अनेक भेद हैं और जो हजारों सज्जनों द्वारा आदरणीय हैं। जो चक्कलक, कुलक, स्कन्धक, पवनोद्धत, रासाकुलक, मञ्जरीक, विलासिनी, नकुल, और सकड़क ग्रामछन्द तथा रासमें निपुण हैं। मैं कुछ भी नहीं जानता, मनमें मूर्ख हूँ तो भी लोगोंके सम्मुख अपनी बुद्धिका प्रकाशित करता हूँ। तीना लोकोंमें जो प्रसिद्ध है मैं उस राघव चरितको आरम्भ करता हूँ ॥१—५॥

भरतका राज्यपट्ट बाँध जानेपर महायुद्धमें समर्थ राम अयोध्या नगरी छोड़कर वनवासके लिए चले गये ॥१॥

[२] जय मंगल और जय तूर्यके निर्घोषके साथ, रामने परितोषपूर्वक [भरतका] राजपट्ट बाँध दिया। अपने पिताके चरणोंकी जय बोल, मनमें देव-मत्सर और ऋद्धि-वृद्धिकी उपेक्षाकर केवल अपने पिताके सत्य वचनको मानते हुए, राम अपने भवनसे निकल पड़े उन्होंने अपना साहस नहीं खोया। सब लक्षणोंसे युक्त लक्ष्मण भी उनके साथ हो लिया। उन दोनों भाइयोंके जाते ही खिन्न दशरथ नीचा मुख करके रह गये। माना किसीने उनके हृदयमें त्रिशूल ही छेद दिया हो। उन्होंने कहा 'रामको बनवास कैसे दे दिया धिक्कार—है।" दशरथने] महान् कुल परम्पराका उल्लंघन किया है। अथवा यदि मैं अपने सत्य वचनका पालन नहीं करता, तो अपने नाम और गोत्रको कलंक लगाता अच्छा हुआ जो राम बनको चले गये मेरा सत्य तो नष्ट नहीं हुआ। सबकी अपेक्षा सत्य ही महान् है। सत्यसे ही आकाशमें सूरज तपता है, सत्यसे ही समुद्र अपनी मर्यादा नहीं छोड़ता। सत्यसे ही हवा चलती है और सत्यसे ही धरती सब कुछ सहन कर लेती है। जो मनुष्य सत्यका पालन

नहीं करता वह मुँहमें पानी रखकर भी, नरक-समुद्रमें उसी प्रकार पड़ता है जिस प्रकार राजा वसुको मूठ बोलकर नरक जाना पड़ा था ॥१-१२॥

[३] इधर राजा दशरथ जिनपुर थे और उधर राम अपने भवनमें पहुँचे। माँने दुर्मन आते हुए उन्हें देख लिया। फिर भी वह हँसकर प्रियवाणीमें बोली, "प्रति-दिन तुम घोड़ों और हाथियोंकी सवारीपर चढ़कर आते थे। परंतु आज पैदल ही कैसे आये? प्रतिदिन बन्दीजन तुम्हारी स्तुति करते थे, परन्तु आज तुम्हारी स्तुति क्या नहीं सुन रही हूँ? प्रतिदिन तुम्हारे ऊपर सैकड़ों चमर डुलाये जाते थे परन्तु आज तुम्हारे निकट कोई भी नहीं है; प्रतिदिन लोग तुम्हें 'राजा' कहकर पुकारते थ पर आज तुम्हारा मुख मलान क्यों है?" यह सुनकर रामने कहा, "माँ! भरत को सब राज्य अर्पित कर दिया, मैं जा रहा हूँ। अपना हृदय दृढ़ कर लो और जो भी अविनय मुझसे हुई हो उसे क्षमा करो।" रामने जो यह पूछा उससे अपराजिता महादेवी "हा पुत्र हा पुत्र"—कहकर रोती हुई धरतीपर गिर पड़ीं ॥१-४॥

[४] रामने माँसे जो पूछा, उससे वे तत्काल चेतनाहीन हो मूर्छित हो गई। तब 'हा माँ' यह कहती हुई दासियोंने हरि चन्दनका उनपर लेप किया। चमरधारिणी स्त्रियोंके हवा करनेपर वह धीरे-धीरे बड़े दुःखसे सचेतन हुई। अपने अंगोंको मोड़ती हुई, दवाहत म्लान नागिनकी तरह रानी उठीं। उसकी आखें नीली और अश्रुजलसे डबडबाई हुई थीं। फिर वह दुःखके आवेगसे धाड़ मार कर रोने लगी—हे वत्स, तुमने यह सब क्या कहा? दशरथकुलके दीपक, जगसुन्दर राम! तुम्हारे बिना अब कौन पलंगपर सोयेगा। तुम्हारे बिना कौन अब दरबारमें बैठेगा। तुम्हारे बिना कौन अब हाथी-घोड़े पर

चढ़ेगा? तुम्हारे बिना गेंद कौन खेलेगा ? तुम्हारे बिना गजक्रीड़ा को कौन मानेगा? तुम्हारे बिना ताम्बूलका आनन्द कौन करेगा ? तुम्हारे बिना कौन शत्रुसेनाको परास्त करेगा ? तुम्हारे बिना अब कौन मुझे सहारा देगा, रानीका करुण क्रन्दन सुनकर अन्तःपुरका मुख म्लान हो गया। राम और लक्ष्मणके वियोगमें वह अन्तःपुर धाड़ मारकर रो पड़ा॥ १–११॥

[४] इसी बीच असुरसंहारक रामने अपनी माँको धीरज बँधाते हुए कहा, माँ, धीरज धारण करो। रोती क्यों हो ? आँसू खाक खाककर अपने आपको शोकमें मत डालो। सूर्यकी किरणोंके रहते जैसे चन्द्रमा शोभायुक्त नहीं हो पाता वैसे ही मेरे रहनेसे भरतकी शोभा नहीं होगी। केवल इसीलिए मैं वनवासके लिए जा रहा हूँ। मैं वहीं रहकर तातके वचनका पालन करूँगा। दक्षिण देशमें निवास बनाकर लक्ष्मण तुम्हारे पास आ जायगा। यह कहकर राम तुरन्त सब परिजनोंसे पूछकर चल पड़े। धवल और कृष्ण नील कमलकी तरह लक्ष्मण और रामके छोड़ते ही, पर न तो सारता था और न मनको ही भाता था वैसे ही जैसे सूर्य और चन्द्रसे रहित आकाश अच्छा नहीं लगता। वह भवन हाथ ऊपर उठाकर और धाड़ मारकर चिल्लाता हुआ मानो रामको उसकी पत्नीका हरण दिखा रहा था या नरेन्द्र भरतको यह बता रहा था कि आती हुई रामकी सेनाको रोको। या फिर मानो अपनी प्राकाररूपी भुजाओंको फैलाये हुए आलिंगन कर उसका निवारण कर रहा था। धनुष-बाण हाथमें लेकर शोभमान वे दोनों उस रोते हुए राजभवनसे ऐसे चले गये मानो उसके प्राण ही चले गये हों।" ॥१–१२॥

[६] इसी अंतर में, जाते समय नयनप्रिय रामने सीताका मुख कमल देखा मानो चितेरे चित्त ही को संचारित कर दिया

हो, वह भी अपने भवनसे वैसे ही निकल पड़ी, जैसे, हिमालय से गंगा, छंदसे गायत्री, शब्दसे विभक्ति, सत्पुत्रसे कीर्ति, या अपने स्थानसे चूककर अप्सरा रम्भा ही निकल पड़ी हो। वह सुलक्षित अपने सुघर पैरोंसे ऐसी मलहंस चल रही थी—मानो गजघटा भटसमूहको पराजित कर रही हो। नूपुर और हार डोरसे व्याकुल प्रचुर ताम्बूलोंकी लालीमें निमग्न अपना मुँह वह नीचे किये थी। अपराजिता और सुमित्राके पैर पकड़कर और उनसे पूछकर सीता देवी भी घरसे निकल आई। अपने भवनकी शोभा का हरण करती हुई सीता देवी इस तरह निकल आई मानो वह रामके लिए सुख का उत्पत्ति और रावणके लिए वज्र थीं ॥१-६॥

[७] रामके राज्यत्याग सुनाते ही लक्ष्मणका मन ही मन असह्य वेदना हुई। यशका लोभी वह तमतमाता हुआ उठा, मानो किसी ने आगको घीसे सींच दिया हो। जैसे महामेघ गरजते हैं, वैसे हो लक्ष्मण जानेकी तैयारी करने लगा। उसने कहा "किसने आज धरणेंद्रके फनसे मणिको तोड़ लिया है? देववृक्षको किसने हाथसे मोड़ दिया है? प्रलयकाल में कौन अपनको बचा सका है शनिको देखकर कौन उचित हो सका है समुद्रका शोषण कौन कर सकता है? सूर्यको कौन कलंक लगा सकता है? कौन पृथ्वीमंडलको अपनी भुजाओंसे टाल सकता है, त्रिलोक चक्रको कौन चला सकता है यमका काल पूरा हो चुकनेपर महायुद्धमें कौन बचा सकता है, ठीक इसी प्रकार रामके जीतेजी राजा दूसरा कौन हो सकता है? अथवा बहुत बकवादसे क्या मैं ही आज भरतको पकड़ कर, अशेष राज्य अपने हाथसे रामका अर्पित किये देता हूँ।

[८] लक्ष्मणकी लाल-लाल आँखें फड़क रही थीं वह कलि यम

[१०] भुवनेश्वरके उस भवनको देखकर, उन्होंने जिनेश्वर की वंदना शुरू की—"गतमय तथा राग और रोषको विलीन करने वाले आपकी जय हो, कामका मथन करनेवाले त्रिभुवनतिलक आपकी जय हो, क्षमा दम तप व्रत और नियमोंका पालन करने वाले आपकी जय हो कलियुगके पाप क्रोध और कषायोंका हरण करनेवाले आपकी जय हो। काम क्रोधादि शत्रुओंका दर्प दलन करनेवाले आपकी जय हो, जन्म जरा और मरणके कष्टोंका हरण करनेवाले आपकी जय हो। त्रिलोक हितकर्ता और तपसूर्य आपकी जय हो। मनःपर्यय रूपी विचित्र सूर्यसे सहित आपकी जय हो। धर्मरूपी महारथकी पीठपर स्थित आपकी जय हो। सिद्धिरूपी वधूके अत्यन्त प्रिय आपकी जय हो। संयमरूपी गिरिके शिखरसे उदित आपकी जय हो। इन्द्र नरेन्द्र और चन्द्र द्वारा वन्दनीय आपकी जय हो। सात महाभयरूपी अश्वोंका दमन करनेवाले आपकी जय हो। ज्ञानरूपी गगनमें विचरनेवाले जिन रवि आपकी जय हो। पापरूप कुमुदोंके लिए दहनशील और चतुर्गतिरूपी रातके तमका उल्लंघन करनेवाले आपकी जय हो इन्द्रियरूपी दुर्दम दानवोंका दलन करनेवाले आपकी जय हो। नर और नागरों द्वारा स्तुत चरण आपकी जय हो। केवलज्ञानकी किरणसे प्रकाश करनेवाले और भव्यजन रूपी कमलोंको आनन्द देनेवाले आपकी जय हो। विश्वमें अद्वितीय धर्मचक्रके प्रवर्तक आपकी जय हो। मोक्षरूपी अस्ताचलमें अस्त होने वाले आपकी जय हो। इस प्रकार भावसे जिनेशकी वन्दना और तीन प्रदक्षिणा देकर वे तीनों पुनः वनवासके लिए चल पड़े ॥१-९॥

[११] रातके मध्यमें राम जैसे ही आगे बढ़ रहे थे, उन्हें एक महायुद्ध दिखाई दिया। कुपित सिंह और रोमांच सहित योद्धा, सेनाकी तरह आपसमें लड़ रहे थे। 'बल-बल' कहकर एक

[१०]

तं णिसुणेंवि सुरप्पहु सुरवरेसरहों । पुणु किउ पणिवाउ जिणेसरहों ॥ १ ॥
जय गय-भय राय-रोस-विहय । जय मयण-महण तिहुवण-तिलय ॥ २ ॥
जय खम-दम-तव-वय-णियम-करण । जय कलि-मल-कोह-कसाय-हरण ॥ ३ ॥
जय काम-कोह-अरि-दप्प-दलण । जय जाइ-जरा-मरणग्गि-हरण ॥ ४ ॥
जय जय तव-सूर तिलोय-हिय । जय णाण-विचित्त-महग्घें सहिय ॥ ५ ॥
जय धम्म महारह वाहें थिय । जय सिद्धि-वरङ्गण-रमण-पिय ॥ ६ ॥
जय संजम गिरि-सिहरग्गमिय । जय इन्द-णरिन्द-चन्द-णमिय ॥ ७ ॥
जय सत्त महाभय हय-दमण । जय जिण-रयण णाणम्बर-गमण ॥ ८ ॥
जय दुज्जिय कम्म कुसुम दहण । जय चउ-घाइ-रयणि-तिमिर-महण ॥ ९ ॥
जय इन्दिय दुद्दम सत्तु-दमण । जय अक्खय-महारग-सुय-पसम ॥ १० ॥
जय केवल किरणुज्जोय कर । जय भविय रविन्दाणन्दयर ॥ ११ ॥
जय जय भुवणेक्क-णाह-णमिय । जय-सासय-माहिरें अत्थमिय ॥ १२ ॥

घत्ता

मावें तिण्णि मि अणेहिं वन्दण करेंवि जिणेसरहों ।
पयहिण देवि तिवार पुणु चलियइँ वण-वासहों ॥ १३ ॥

[११]

रयणिहें मज्झें पयट्टइ राहउ । ताम णियच्छिउ परम महाहउ ॥ १ ॥
कुहरें णिवडइँ गुम्म-णिसहहों । मिहुणइँ सव्वइँ खेम भणिसइँ ॥ २ ॥
'वसु वसु' णवमेव णोवकरसइँ । 'मउ मउ पहव पहव अप्पप्पइँ ॥ ३ ॥

[१०] भुवनेश्वरके उस भवनको देखकर, उन्होंने जिनेश्वर की वन्दना शुरू की—"गतभय तथा राग और रोषको विलीन करनेवाले आपकी जय हो कामका मथन करनेवाले त्रिभुवनतिलक आपकी जय हो, क्षमा दम तप व्रत और नियमोंका पालन करनेवाले आपकी जय हो कलियुगके पाप क्रोध और कषायोंका हरण करनेवाले आपकी जय हो। काम क्रोधादि शत्रुओंका दर्प दलन करनेवाले आपकी जय हो जन्म जरा और मरणके कष्टोंका हरण करनेवाले आपकी जय हो। त्रिलोक हितकर्ता और धर्मसूर्य आपकी जय हो। मनःपर्यय रूपी विचित्र सूर्यसे सहित आपकी जय हो। धर्मरूपी महारथकी पीठपर स्थित आपकी जय हो। सिद्धिरूपी वधूके अत्यन्त प्रिय आपकी जय हो। संयमरूपी गिरिके शिखरसे सहित आपकी जय हो। इन्द्र नरेन्द्र और चन्द्र द्वारा वन्दनीय आपकी जय हो। सात महाभयरूपी अश्वोंका दमन करनेवाले आपकी जय हो। ज्ञानरूपी गगनमें विचरनेवाले जिन रवि आपकी जय हो। पापरूप कुसुमोंके लिए दहनशील, और चतुर्गतिरूपी रातके तमको संक्रमण करनेवाले आपकी जय हो इन्द्रियरूपी दुर्दम दानवोंका दलन करनेवाले आपकी जय हो। यक्ष और नागेश द्वारा स्तुत चरण आपकी जय हो। केवलज्ञानकी किरणसे प्रकाश करनेवाले और भव्यजन रूपी कमलोंको आनन्द देनेवाले आपकी जय हो। विश्वमें अद्वितीय धर्मपथके प्रवर्तक आपकी जय हो। मोक्षरूपी अस्ताचलमें अस्त होने वाले आपकी जय हो। इस प्रकार भावसे जिनेशकी वन्दना और तीन प्रदक्षिणा देकर व तीनों पुनः वनवासके लिए चल पड़े ॥१-८॥

[११] रातके मध्यमें राम जैसे ही आगे बढ़े वैसे ही उन्हें एक महायुद्ध दिखाई दिया। कुपित विरुद्ध और रोमांच सहित वाह सेनाकी तरह आपसमें लड़ रहे थे। 'बल-बल' कहकर एक

उन्हें गम्भीर नामकी महानदी मिली। वेगशील मत्स्य-ऊर्मियोंकी पूँछें उसमें उछल रही थीं। फेनधारासे युक्त जलकण हिमकण बना रहे थे, तरंगमाला गजशिशुओंसे आन्दोलित हो रही थी। जल-प्रवाह कमलोंके समूहसे भरा हुआ था। हंसमालाके पक्ष उसमें उल्लसित हो रहे थे। तरंगोंके प्रहारसे आवर्त पड़ रहे थे। वन-गजोंके बहुतसे झुण्डोंसे वह शोभित हो रही थी। फेनका समूह अधिक दिखाई पड़ रहा था, वह नदी, महागजकी तरह लीला करती हुई गिरती-पड़ती उछलती-मुड़ती दौड़ती हुई बह रही थी। ओहर और मगरोंसे भयंकर और दुष्प्रवेश्य उस नदीको रामने ऐसे देखा मानो वह दुर्गति हो ॥१-८॥

[१४] रामने गम्भीर नदीको देखकर अपनी सेनाको लौटा दिया। वह बोले, "आज्ञापालक तुम लोग आजसे भरतके सैनिक बनो। हमलोग भी अयोध्या छोड़कर, वनवासके लिए दक्षिण देशको ओर जायेंगे।" यह कहकर समरमें समर्थ रामने नदीके भयंकर जलमें प्रवेश किया। समुद्रावर्त और वज्रावर्त धनुष उनके हाथमें थे। तब सीता उनके बायें हाथ पर चढ़ गई, वह ऐसी जान पड़ रही थी मानो लक्ष्मी कमलपर बैठकर अपनी कीर्ति दिखा रही हों या आकाशको आच्छादित कर रही हों या राम ही अपनी धन्या सीता, रावणको दिखा रहे हों। शीघ्र ही वे नदीके दूसरे तटपर पहुँच गये मानो भव्यों ही को नरकसे किसीने तार दिया हो। रामके पीछे लग योधा लोग भी अयोध्याके लिए उसी प्रकार लौट गये जिस प्रकार संन्यास ग्रहण करनेपर कुमति कुशील और कुबुद्धि भाग खड़ी होती है ॥१-८॥

[१५] रामको बिदा करके हुए राजा लोग बहुत व्यथित हुए। ठीक उसी तरह जिस प्रकार सिद्धि प्राप्त न होनेपर खोटे साधक दुखी होते हैं। कोई निश्वास छोड़ रहा था। कोई 'हा राम' कहता

लेता हुआ लौट रहा था। कोई धीर पुरुष पाकर प्रव्रजित हो गये। कोई त्रिपुण्ड लगाकर संन्यासी हो गये। कोई व्रत धारण करनेवाले त्रिकाल योगी बन गये। कोई जाकर हरिवंश राजाके विशाल धवल जिनालयमें ठहर गये। वहाँ पर मेरु महाधर विजय वियदृ वियोगवियमदन धीर सुवीर सत्य प्रियवर्धन पुराम पुण्डरीक पुण्याश्रम विपुल विशाल और रत्नाम्बर और उत्तम महर्षिक राजाओंने दीक्षा ग्रहण कर ली। इस प्रकार सभी राजाओंने जिन चरणोंकी वन्दनाकर अपने आपको संयम नियम और गुणोंकी साधनामें अर्पित कर दिया।

•

चौमासवाँ सन्धि

रामके वन जानेपर अयोध्या नगरी किसीको भी अच्छी नहीं लग रही थी। ग्रीष्मकी समय धरतीकी भाँति वह उच्छ्वास छोड़ती हुई जान पड़ रही थी।

[१] उन्मादग्रस्त सभी लोग रामका नाम लेकर भी चल भरमें नहीं रह पा रहे थे। नृत्य और गानमें लक्ष्मण (लक्ष्मण-लक्षण) ही कहा जा रहा था। मृदंगमें भी लक्ष्मण बजाया जा रहा था। श्रुति सिद्धान्त और पुराणमें भी लक्ष्मणकी ही चर्चा थी। ओंकारके साथ भी लक्ष्मण पढ़ा जा रहा था। और जो भी लक्षण सहित था वह लक्ष्मणके नामसे ही कहा जाता था। कोई नारी हरिणीकी तरह विषण्ण हो कोई मारकर रो रही थी। कोई नारी प्रसाधन करती हुई लक्ष्मण समझकर उल्लसित हो उठती। कोई स्त्री आँगन पहनते समय उसे ही लक्ष्मण समझकर उस और मजबूतीसे पकड़ लेती। कोई नारी रूपका रमती, पर उसमें लक्ष्मणके सिवा उसे और कुछ दीखता नहीं था। नगरमें पनहारिनें भी आपसमें यही चर्चा कर रही थीं कि यही पलंग थ ही उपधान यही सेज और यही प्रच्छादन (चादर) यही पर

वे ही रत्न, लक्षण सहित वही चित्रकारी सब कुछ यहाँ है। हे माँ, केवल लक्ष्मण और सीता सहित राम नहीं दीख पड़ते ॥१-११॥

[२] इतने ही में राजा दशरथके आँगनमें नगाड़े बज उठे मानो गगनांगनमें देवोंकी दुंदुभि ही बज उठी हो। सैकड़ों शंख गूँज उठे। उससे खूब कोलाहल हुआ। टिविलकी टंकारसे सब राउल हिल उठा। ताल और कंसालका कोलाहल मच गया। उत्तम मंगलोंसे युक्त गीत और संगीत हो रहा था। डमरू तिरिडिक्कि और झल्लरीसे भयंकर भम्भ भम्भीस और गंभीर भेरीका शब्द गूँज उठा। घंट और जयघंटोंके संघटकी टंकार तथा काहल हलबोल और मुरजकी ध्वनि फैल गई। इस ध्वनिको सुनकर युद्धमें उत्कट पुलकित कवच पहने और अत्यन्त आश्चर्यसे भरे हुए सभी सुभट-समूह राजाके आँगनमें आकर ऐसे इकट्ठे हो गये मानो जिनजन्मके समय सुमेरु पर्वतके शिखरपर देवसमूह ही आ गये हों। प्रमत्त चारण नट छत्र कवि और पंडितजन कह रहे थे—"सदा जय हो कल्याण हो जय हो"। अपने अनुचरोंसे घिरे हुए राम लक्ष्मणके बाप (दशरथ) ऐसे जान पड़ते थे मानो जिनेंद्रका अभिषेक करनेके लिए इन्द्र ही निकल पड़ा हो ॥१-९॥

[३] राजा जैसे ही आनन्दपूर्वक निश्चिन्त सा हुआ वैसे ही भरतने प्रणाम करके कहा, "हे देव, मैं भी आपके साथ सन्यास ग्रहण करूँगा। दुर्गतिमें ले जानेवाले इस राज्यका मैं भोग नहीं करूँगा। राज्य असार और संसारका कारण है। राज्य क्षणभरमें विनाशको प्राप्त हो जाता है। दोनों लोकोंमें राज्य भयंकर होता है। राज्यसे नित्य निगोदमें जाना पड़ता है। राज्य रहे। यदि यह सुन्दर और मधुकी तरह मीठा होता तो आप क्यों

उसे छाड़ते, और फिर राज्य तो अन्तमें मनयकारी होता है। दुष्ट स्त्री की तरह अनेकोंने उसका भाग किया है। चन्द्रबिम्बकी तरह वह दोषयुक्त है और दरिद्र कुटुम्बकी तरह बहुतसे दुखोंसे भरा है। फिर भी मनुष्य राज्यकी ही कामना करता है, प्रति दिन गलती हुई अपनी आयुको नहीं देखता। जिस तरह मधुकी बूँदके लिए करभ कडक नहीं देखता उसी तरह जाव भी राज्यके कारण अपने सौ-सौ टुकड़े करवा डालता है ॥१-४॥

[४] तब दशरथ राजाने भरतको बालपनेमें ही टोककर कहा—"अभी तुम्हें तपकी बात करनेसे क्या? अभी तुम राज्य और विषय-सुखका भोग करो। अभी तुम ताम्बूलका सम्मान करो। अभी अच्छे उद्यानोंको मानो। अभी अपनी इच्छानुसार शरीरको सजाओ। अभी, उत्तम बालाओंका आलिंगन करो। अभी तुम सभी तरहके अलंकार पहनने योग्य हो। अभी तुम्हारे तपका यह कौन-सा समय है। फिर यह जिन-दीक्षा अत्यंत कठिन है। बाइस परीषह कौन सहन कर सकता है? चार कषाय रूपी अजेय शत्रुओंको कौन जीत सकता है? पाँच महाव्रतोंका पालन करनेमें कौन समर्थ है? पांच इन्द्रिय विषयोंका निग्रह कौन कर सका है? समस्त परिग्रहका त्याग करनेमें कौन समर्थ है? वर्षा कालमें कौन वृक्षके मूलमें निवास कर सकता है? शीतकालमें कौन नग्न रह सकता है? ग्रीष्मकालमें तप कौन साध सकता है? यह तपश्चरण सचमुच भीषण है। भरत बड़-चढ़कर मत बोलो तुम अभी बच्चे हो। अभी विषयसुखका आनन्द लो, यह सन्यास लेने का कौन-सा समय है।" ॥१-११॥

[५] यह सुनकर भरत रुठ गया। मत्तगजकी तरह उसका मन विरक्त हो गया। वह बोला "तात आपने अत्यंत अशोभन

कहा, क्या बालकको तपस्या मुक्त नहीं। क्या बालकपन सुखोंसे वंचित नहीं होता ? क्या बालकका दया धर्म नहीं रचता ? क्या बालकको संन्यास नहीं होता ? बालकका परलोक आप क्यों दूषित करते हैं ? क्या बालकको सम्यग् दर्शन नहीं होता ? क्या बालकको इष्टवियोग नहीं होता, क्या बालकके पास बुढ़ापा और मृत्यु नहीं फटकती, क्या उसे यमका दिन छोड़ देता है ?" तब भरतको डाँटते हुए दशरथने कहा, "तो फिर तुमने पहले राज्य पदकी कामना क्यों की ? इस समय समस्त राज्यको सम्हालो, तप फिर बादमें साध लेना।" यह कह, कैकेयीका वरदान दे, और भरत को राज्यपट्ट बाँधकर दशरथ दीक्षा लेनेके लिए चल दिये ॥१-८॥

[६] वह, दयबढ़ित, धवल सिद्धकूट चैत्यालयमें पहुँचे। और पञ्चमुष्टि केशलोंचकर उन्होंने दीक्षा ग्रहण कर ली। उनके प्रेमके वशीभूत होकर एक सौ चालीस दूसरे राजाओंने भी दीक्षा ग्रहण की। कण्ठहार, मुकुट और कटक उतारकर, पंच महाव्रत धारणकर वे तप साधने लगे। अनासंग वे मुनि नागकी तरह, विषधर (धर्म या विष धारण करनेवाले) थे, अथवा वर्षाकालके समान विषधर (जलधर धर्मवाले) थे। सिंहकी तरह मांसाहारी (एक माहमें भोजन करनेवाले मासाहारी) थे। परदारगामीकी तरह परदारगामी (मुक्तिगामी) थे। इतनेमें किसीने आकर भरतको यह खबर दी कि लक्ष्मण और राम वनको चले गये हैं। यह सुनते ही वज्रशरीर भरत मूर्छित होकर, वज्राहत पहाड़की तरह गिर पड़े। उनके मूर्छित होते ही सब लोगोंके मुख कातर हो उठे। मानो प्रलयकी आगसे संतप्त होकर समुद्र ही गरज उठा हो।"

[७] चन्दनका छर और चामरधारिणी स्त्रीके द्वारा करनेपर

राजा भरत बड़ी कठिनाइसे आश्वस्त हुए। परन्तु वह राहु ग्रस्त चन्द्रमाकी तरह म्लान दीख पड़ रहे थे। नेत्रोंसे अविरल अश्रु धारा प्रवाहित हो रही थी। गद्‌गद स्वरमें उन्होंने कहा, "आज आकाशसे वज्र टूट पड़ा है। आज दशरथ-कुलका अमंगल आ गया है। आज, अपने पक्षका नाश होनेसे मैं परमुखापेक्षी और दीन हो गया हूँ। आज इस नगरकी श्री और सम्पदा जाती रही। आज हमारे राज्य पर शत्रु-चक्र घूम गया है।" ऐसा प्रलाप कर वह शीघ्र ही रामकी माताकी सेवामें पहुँचे। उन्होंने देखा कि कौशल्याके बाल बिखरे हैं, आँसुओंकी धारा बह रही है। वह, छाती मारकर रो रही हैं। उन्होंने धीरज बँधाते हुए कहा— "मा मा, मैं राम्य करनेसे रहा अभी जाकर राम लक्ष्मणको ले आता हूँ। रोती किसलिए हो।" ॥१-६॥

[८] यह कहकर भरतने (अनुचरोंको) आदेश दिया "शीघ्र लाओ। वह स्वयं भी चल पड़ा। उसने शंख और जय-पटह बजवा दिये मानो चन्द्रोदयमें समुद्र ही गरज उठा हो। राजा भरत प्रभु रामके मार्ग पर उसी तरह लग गये जैसे जीवके पीछे पीछे कर्म लग रहते हैं। छठे दिन वह वहाँ पहुँच सके, जहाँ सीता और लक्ष्मणके साथ राम थे। सरोवरके किनारे पर लतागृहमें, शीघ्र ही पानी पीकर निवृत्त हुए उन्हें भरतने देखा। तल्लीन भरत दौड़कर प्रभु रामके चरणोंमें उसी तरह गिर पड़े जिस तरह इन्द्र जिनेन्द्रके चरणोंमें गिर पड़ता है। वह बोले, "देव, ठहरिये, प्रवासको मत जाइये, नहीं तो दशरथकुलका नाश हो जायगा, शत्रुघ्न और मैं आपके सेवक हैं लक्ष्मण मंत्री और सीता महादेवी। आप अपने बन्धुजनोंसे घिरे हुए उसी तरह राज्यका भोग करें, जैसे नक्षत्रोंसे चन्द्र और सुरसमूहसे घिरकर इन्द्र शासन करता है ॥१-६॥

[४]

तं वयणु सुणेवि दसरह सुपुत्त । बज्जरइ भरहु हरिसिय-सुपुत्त ॥ १ ॥
सच्चउ माया पिय परम साहु । पइँ मेल्लेवि अण्णहों विमउ कज्जु ॥२॥
भबोल्लिउ ए भाकाण जाम । तहिँ थवइ-सयहिँ परिचरिय ताम ॥३॥
कण्णिकारभइ भरहहों तणिय माय । ण गय-घड मड मजन्ति आय ॥ ४ ॥
ण सिक्खा विहूसिय पच्चराइ । स- पभामर भमर-सोह आई ॥ ५ ॥
णं भरहहों सम्पय रिद्धि विद्धि । ण रामहों गमणहों तणिय सिद्धि ॥६॥
ण भरहहों सुन्दर सोक्ख-खाणि । णं रामहों दुक्ख-कारण हाणि ॥ ७ ॥
तं भणइ भरहु 'तुहुँ माउ माउ । वण-वासहों रहुउ वारु वारु' ॥ ८ ॥

घत्ता

सु-पय सु-सन्धि सु-णाम वयण-विहत्ति-विहूसिय ।
णव वायरणहों जेम केक्कय पुण्णि पवीसिय ॥ ९ ॥

[५]

सहुँ सीयएँ दसरह णन्दणेहिँ । ओक्कारिय राम जणद्दणेहिँ ॥ १ ॥
पुणु पुणय सीर प्पहरणेण । 'किं थाणिउ भरहु भकारणेण ॥ २ ॥
सुणु माएँ महारउ परम तत्तु । पाठवेउ रामहों तणउ सत्तु ॥ ३ ॥
पड हरएँहिँ मउ रहवरेंहिँ कज्जु । मउ सोक्खु वरिसहँ करमि रज्जु ॥४॥
ण दिण्णु साणु तापें वि वार । तं मइ मि दिण्णु तुम्ह सप-वार' ॥५॥
ऍउ वयणु समप्पिउ सुह असिलु । सहुँ हत्थें भरहहों पट्टु बद्धु ॥ ६ ॥
आउच्छेंवि पर वल सहय बद्धु । वण-वासहों राहउ पुणु पयट्टु ॥ ७ ॥
मउ भरहु विपण्णु सु पुरवरासु । जिण-भवण पत्तु सिवहिँ समाणु ॥८॥

[६] यह सुनकर दशरथ-पुत्र रामने अपनी प्रसन्न भुजाओंसे भरतको हृदयसे लगा लिया, और कहा, "भरत, तुम ही माता पिताके सच्चे सेवक हो। भला इतना विनय तुम्हें छोड़कर और किसमें हो सकता है ?" आपसमें उनकी इस तरह बातें हो ही रही थी कि इतनेमें उन्हें सैकड़ों विमान घर लिया। उनके साथ आती हुई, भरतकी माँ ऐसी दीख पड़ी मानो भटसमूहको चीरती हुई गजघटा हो आ रही हो। या तिलक वृक्षसे विभूषित वृक्ष राजि हो। या सपयोधर (मेघ और स्तन) अम्बर, कपड़ा आकाश की शोभा हो। या मानो भरतकी रिद्धि और वृद्धि हो। या रामके वन-गमनकी सिद्धि हो। या भरतके सुन्दर मुखकी खान हो और रामके इष्ट तथा श्रीकी हानि हो। मानो वह कह रही थी— "भरत तुम आओ आओ और राम तुम वनवासको जाओ जाओ।" रामने कैकेयीको व्याकरण-शास्त्रकी तरह जाते हुए देखा वह, सुपद (पद और पैर) सुसंधि (अंगोंके जोड़ और शब्दोंकी संधिसे युक्त) तथा वचन विभक्ति (तीन वचन सात विभक्तियाँ, और वचन विभागसे) विभूषित थी॥१-९॥

[१०] तब दशरथ-पुत्र जनार्दन रामने साधासहित उसका अभिनन्दन किया। वह बोले, "माँ भरत तुम्हें अकारण क्यों लाया। माँ मेरा परमतत्त्व (सिद्धान्त) सुनो। मैं पिताके वचनका पालन करूँगा। न तो मुझे धाड़ोंसे काम है, और न श्रेष्ठ रथोंसे। तातने जो वचन तुम्हें तीन बार दिया है, उसे मैं सौ बार देता हूँ।" यह वचन कहकर मुख और मर्यादासे सपन्न उन्होंने राज पट्ट भरतके सिरपर बाँध दिया। तदनन्तर शत्रु-मर्दनशील राम सीता पूर्वक वहाँसे आगे चल गये। व्यथित मन भरत भी अपने अनुचरोंके साथ पूज्य जिन-चैत्यमें पहुँचा। भरत तथा

शत्रुघ्न, दोनोंने धवल मुनिके पास जाकर यह प्रतिज्ञा ग्रहण की कि रामके दर्शनपर (वनसे वापस आने ही !) हम और राज्यसे निवृत्त हो जायेंगे।"

[११] (उक्त व्रत लेकर) भरतने वहाँसे प्रस्थान किया और वह सीधे रामकी माताके भवनमें पहुँचे। पास जाकर उन्होंने विनय की, "माँ, मैं रामको नहीं ला सका, मैं तुम्हारा आज्ञाकारी, सेवक और चरणोंका दास हूँ।" उन्हें इस तरह धीरज बँधाकर भरत अपने भवनको चले गये। इधर राम जानकी और लक्ष्मण तीनों ही घूमते हुए तापस वनमें जा पहुँचे। उसमें तरह-तरहके तपस्वी थे। वहाँपर कितने ही तपस्वी जटाधारी दिखाई दिये जो कुञ्जर और लाट गौवकी तरह जड़हारिये (मूर्ख और जटाधारी) थे। कोई त्रिदण्डी और धोईश्वर थे जो कुपित राजाकी तरह घोड़ासर (वाध जानेवाले, आसन विछानेवाले !!!) कोई त्रिशूल हाथमें लिये रुद्र थे, जो महाधवलकी तरह कणाकुश (अंकुश और त्रिशूल लिये थे। वहाँपर लक्ष्मण और रामसे विभूषित सीता इस प्रकार प्रतिभासित हो रही थी जिस प्रकार समान दोनों पक्षोंके मध्य पूर्णिमा प्रतिभासित हो ॥१-६॥

[१] थोड़ी दूर और आगे जानेपर उन्हें धानुष्क वन मिला वहाँके लोग मृगचर्म और कापसपास अपनको ढके हुए थे उनके हाथ मार धनुषबाण सज थे। कन्दमूल और पशुओंका मांस ही उनका भोजन था उनके सिरपर मटकी माला और गलेमें गुञ्जा पड़े थे। यहाँ युवतियोंकी शोभा अद्भुत थी और शीघ्र हो जाती थी। उनके हाथोंमें हाथीदाँतकी चूड़ियाँ थीं। वे हाथियोंके शुभ स्थलोंकी आसक्तियोंमें हाथीदाँतके धन सफेद मूसलोंसे मोतियोंकी चावलोंको कूट रही थीं। कामसे उत्तेजित होकर वे शीघ्र मुँह

घूम लेती थी। भीलोंकी ऐसी उस बस्तीमें राम और लक्ष्मणने निवास किया। उन्हें देखकर भील बहुत प्रसन्न हुए, और पुलकित होकर उन्होंने उनकी कुटियाको ऐसे घेर लिया, मानो सूर्य और चन्द्रको मेघोंने घेर लिया हो ॥१-८॥

[१३] भाई लक्ष्मण और पत्नी सीताके साथ थोड़ी दूर और जानेपर रामको मुवेश गोठ ऐसे दीख पड़े मानो शासन द्वार और भूपन सहित राजभवन ही हों। कहीं पशु हुंकार ध्वनि करके खड़े थे। कहीं पर सींग रहित बछड़े ऐसे जान पड़ते थे माना निसग (परिग्रह रहित) नये दीक्षित साधु ही हों। कहीं लोग दधिसे अर्चित थे, कहीं नई भानोंके अकुरको सिरपर रखकर नाच रहे थे। कहीं मट्ठा बिलोनेवाली मथानी, बिलासिनी स्त्रीकी सुरतिकी तरह मधुर ध्वनि कर रही थी, कहींपर नारी-नितम्ब ऐसे शोभित थे माना मुख सुवासित नागगृह ही हों। कहीं पालने में बच्चे झुलाये जा रहे थे। और उनकी सुंदर लोरियाँ सुनाई पड़ रही थी। स्त्रियोंसे घिरे हुए उस गोठको देखकर, उन बालोंको जैसे अपने बचपनकी याद आ गई ॥१-६॥

[१४] उस गोठ स्थानको छोड़कर भयानक वनके भीतर उन्होंने प्रवेश किया। वह वन फल और पत्तोंसे सघन था। तरुण समान और ताड़के पेड़ोंसे आच्छन्न था। वह वन जिनालयके समान चंदन (चन्दन और पीपल) से सहित था जिनशासनकी तरह सावय (श्रावक और श्वापद—कुत्ता) से युक्त था। महायुद्धके आँगनकी तरह, बासन (मांस और वृक्षविशेष) से सहित था। सिंहके कंधेकी तरह, केशर (अयाल और एक पुष्प लता) से युक्त था राजभवनकी तरह माधव (मंजरी और पुष्प विशेष) से सहित था, मुनिबद्ध नाट्यकी तरह, ताल (ताल और इस नामका

पेड़) से युक्त था। जिनेन्द्रके अभिषेककी तरह महासर (स्वर, और सरोवर) से सहित था। कुतापसके तपकी तरह, मधासव (मद्य और मृग) से युक्त था। मुनीन्द्रके वचनकी तरह, मोक्ष (मुक्ति और इस नामके वृक्ष) से सहित था। आकाशके आँगनकी तरह सोम (चन्द्र और वृक्षविशेष) से सहित था। चंद्रबिम्बकी तरह मयासय (मद और मृग) से आश्रित था, विलासिनीके मुखकी तरह महारस (लावण्य और जल) से युक्त था। उस वनको इसी तरह छोड़ते हुए वे लोग इन्द्रकी दिशामें अग्रसर हुए और वा माहमें ही चित्रकूटमें पहुँच गये ॥१-६॥

[१५] चित्रकूटको भी तुरत छोड़कर उन लोगोंने दसपुर नगरकी सीमाके भीतर प्रवेश किया। वहाँ उन्हें कमलोंसे भरा सरोवर मिला। वह सरोवर सारस हंसमाला और बगुलोंसे सुन्दर हो रहा था। उद्यान बढ़िया पत्तोंसे शोभित थे, मुनिवरों-की तरह जो अच्छे फलों और पत्तोंवाले थे, सुविभाजित शालि उपवन मुमुक्षुकी तरह ऐसे प्रणाम कर रहे थे मानो जिन-भक्तिसे भरे हुए श्रावक हों। सम्म आकारवाले इक्षुके वन खोटी स्त्रीकी तरह, प्रियवक्ष (पति और वाटिका) का उल्लंघन कर रहे थे। कमल और नव नीलोत्पलके समान राम और लक्ष्मणने उसमें प्रवेश करते हुए एक सीरकुटुम्बिक नामके आदमीको देखा। वह शिकारीसे भयभीत हिरनकी तरह विषम था। उसके बाल बिखरे हुए थे और आँखें चंचल। उसके प्राण सहमे-से थे और चेहरा विद्रूप था। कुमार लक्ष्मण सूँडके समान प्रचंड अपने हाथों पर भरते हुए उसे उठाकर रामके पास ले आये ॥१५॥

•

हुए उद्दीप्त देखा। उसका शरीर रोमाञ्चसे फूला हुआ था। वह इस प्रकार गरज रहा था मानो सजल मेघ ही गरज रहा हो। अत्यन्त समर्थ उसने समूचा परिकर बाँध रखा था। युद्धकी सामग्रीसे सजी हुई सेना तैयार खड़ी थी। उसके नेत्र (सचमुच) बड़े लाल और भयावन थे। वह अपने होंठ चबा रहा था। उसका चेहरा तमतमा रहा था। क्षय कालके शनि ग्रहकी तरह अत्यन्त क्रुद्ध वह कह रहा था कि शत्रु को मारो। तब विद्युदंगने सोचा कि मैं इसे मार दूँ। नहीं नहीं, यह श्रेष्ठ स्वामी है, पर वज्रकर्ण भी मेरा साधर्मी भाई है। तब क्या करना चाहिए। क्या फौरन जाकर उसे बता दूँ। यह विचार कर पुलकित शरीर वह चल पड़ा। आधे ही पलमें दशपुर पहुँच गया। सूर्योदय होनेसे राजा वज्रकर्णने देखा कि विद्युदंग इस तरह दौड़ता हुआ आ रहा है मानो उसका यशपुंज ही हो ॥१-१०॥

[३] वज्रकर्णने हँसकर उससे पूछा "इतने अधिक प्रसन्न और पुलकित कहाँसे आ रहे हो"। यह सुनकर विश्वासमुख विद्युदंग चोर ने कहा "तुंग पयोधरा और जनमनको लुभानेवाली कामलेखा नामकी एक वेश्या है। मैं उस पर आसक्त हूँ। पर धनके अभाव में जब मैं उसके लिए मणिकुण्डल नहीं बनवा सका तो उसने मुझे ठुकरा दिया। तब मैं मन्त्रका प्रयोग कर, सातों ही परकोटोंका अतिक्रमण कर राजाके महलमें घुस गया। घुसते ही राजा सिंहोदरकी प्रतिज्ञा सुनकर मैं विकल हो उठा। (मैं समझ गया) कि अब वज्रकर्णका अन्त होनेवाला है। यह सोचकर कि तुम साधर्मी और जिनधर्मके दीपक हो मैं (यह कहनेके लिए) दौड़ पड़ा। और परवशसे दौड़कर पलमात्रमें तुम्हारे पास आया हूँ। उसकी सभामें क्या रखा है। यह समझ लो आप उससे ऐसा युद्ध करो कि वह समाप्त ही हो जाय ॥१-९॥

[४] अथवा इस तरह बहुत कहनेसे क्या लाभ ? देखो देखो, राजन्, शत्रु-सेनाकी धूलि-छाया उठ रही है। देखो देखो, सेना आ रही है। महागजोंके वाहन गरज रहे हैं। देखो, देखो, घोड़े हींस रहे हैं और पक्षी आकाशमें घूम रहे हैं। देखो देखो, पताकाएँ उड़ रही हैं और रथ-चक्र धरतीमें गड़े जा रहे हैं। देखो देखो, नाना स्वरोंसे गम्भीर तूर्य बाजे बज रहे हैं और सैकड़ों शंखोंकी ध्वनि हो रही है मानो दुखी स्वजन ही रो रहे हों। देखो देखो, नरपति ऐसे चला आ रहा है, मानो ग्रह और नक्षत्रोंके बीचमें शनि ही हो।" दशपुर-स्वामी वज्रकर्णने ज्यों ही सुना, तो उसे शत्रु सेना आती हुई दिखाई दी। "साधु-साधु" कहकर उसने विद्युदंग को अपने हृदयसे लगा लिया। सज्जित होकर जैसे ही वह रणक्षेत्रमें पहुँचा वैसे ही समस्त सेना आ पहुँची। अमर्ष और आवेश भर राजाओंने नगरको चारों ओरसे वैसे ही घेर लिया जैसे समुद्र धरती को घेरे हुए हैं ॥ १-११ ॥

[५] अम्बारीसे सजे हाथी और कवच पहने घोड़े तैयार थे। सन्नद्ध योधा पुलकित होकर भिड़ गये। दोनों पक्षोंमें लड़ाई ठन गई। बजते हुए नगाड़ोंका कोलाहल होने लगा। हाथी कुम्भोंसे सने हुए थे। वे एक दूसरे पर सब्बल और बाण फेंक रहे थे। हाथोंसे वक्षस्थल छिन्न-भिन्न हो रहे थे। पताकाओंकी पंक्तियाँ उलट-पलट हो रही थीं। प्रहार और प्रति प्रहारोंसे सैनिक खिन्न और विकलांग हो रहे थे। दानोंके नेत्र भयंकर थे। उनके ओठ काँप रहे थे। तलवार रूप सर और शक्ति आदि आयुधोंसे दोनों ही लैस थे। वे डोरी खींचे हुए और तलवार निकाले हुए थे। उनकी दृष्टि डोरी मुट्ठी और तीरोंके संधान पर थी। गजघटाओंको काट पीट कर देनेवाले वे कायरोंके मनको अधिक सन्ताप वाले थे।

धनञ्जय और सिंहोदर राजाओंका विजयके लिए अत्यन्त कठोर युद्ध हो रहा था। युद्ध छिड़ने पर दोनोंकी दुन्दुभि बज रही थी। उन दोनों राजाओंमें से एक भी न तो जीत रहा था और न जीता जा रहा था ॥ १–१० ॥

[६] योद्धा 'मारो मारो' कहकर मरते और मारते परन्तु वे एक भी कदम पीछे नहीं हटाते थे, मछे ही युद्धमें मारते-मारते मरते जा रहे थे। दोनों ही दल आगे बढ़ते हुए घड़ोंको नचा रहे थे। दोनों दलोंने एक दूसरेके ध्वजपटोंको मसल दिया। भट समूह को गिरा दिया, और अश्व-गजोंको भूमिसात् कर दिया। रक्तकी धारा प्रवाहित हो उठी। दोनों दलोंने अपनी अपनी तलवारें निकाल लीं, दोनोंने पक्षियोंको कँपा दिया। दोनों दलोंने अपने तीव्र प्रहारोंसे दुन्दुभियोंको छिन्न-भिन्न कर निःशब्द कर दिया। हाथियोंके दन्तप्रहारसे दोनों छिन्न-भिन्न हो गये। दोनों दल युद्ध-भूमिमें सा-से गये। दोनों दल रक्तरंजित शरीर थे। दोनों दल, एक दूसरे पर हुंकारते ललकारते और चुनौती देते हुए मरने लगे।" सीरकुटुम्बिकने रामसे कहा "इस प्रकार युद्ध होते-होते एक पखवाड़ा हो गया है।" कि यह सुनकर रामने उसे अपने हाथ से मणि और हीरोंकी किरणोंसे जगमगाता हुआ कंठहार तथा कुण्डल और कटिसूत्र दिया ॥१–१०॥

[७] फिर वे दोनों (वासुदेव और बलभद्र) सीताको साथ लेकर उसी प्रकार चले जिस प्रकार मत्तगज हथिनीको साथ लेकर चलता है। हाथमें धनुष लिये, परम आदरणीय राम सहस्रकूट जिन-भवनमें पहुँचे वह जिन-भवन ईंटों और सफेद चूनासे निर्मित सज्जनके हृदयके समान निष्कलंक था। उसकी शिखरें देवोंकी कान्तिकी तरह ऊँची थीं। विविध और चित्र-विचित्र

तं विमलवाहु णिवसि परिट्ठइँ । पयहिण देवि ति-वार पइट्ठइँ ॥५॥
तहिँ चन्दप्पह बिम्बु णिहालिउ । णं सुरवरतरु-कुसुमोमालिउ ॥६॥
णं णागेन्द सुरेन्द णरिन्दहिँ । वन्दिउ मुणि-विज्जाहर-विन्दहिँ ॥७॥
दिट्ठु सु-साहिउ सोम्मु सु-दंसणु । अण्णु वि सेय-चमर सिंहासणु ॥८॥
छत्त-त्तउ असोउ भा-मण्डलु । कुसुम-विहूसिउ तियस-उरत्थलु ॥९॥

घत्ता

किं बहु (एं)-वित्थरेण जगें को पडिमहु उवमिज्जइ ।
पुणु वि पडीवउ जइ णावँ णाहुवमिज्जइ ॥ ९ ॥

[८]

जं जग णाहु दिट्ठु णव सील अण्णत्थेहिँ ।
तिहि मि जणेहिँ वन्दिओ विविह वयत्थेहिँ ॥ १ ॥

'जय रिसह रिसह परिसुद्ध-सहाव । जय अजिय अजिय-कम्मइ-सहाव ॥२॥
जय संभव संभव णिद्दलण । जय अहिणन्दण णन्दिय चलण ॥३॥
जय सुमइ महन्त सुमइ धर । पउमप्पह पउमप्पह पवर ॥४॥
जय सामि सुपास सु पास हर । चन्दप्पह पुण्ण-चन्द वयण ॥५॥
जय जय पुप्फयन्त पुप्फच्चिय । जय सीयल सीयल-सुह-संचिय ॥६॥
जय सेयङ्कर सेयंस जिण । जय वासुपुज्ज पुज्जिय-चलण ॥७॥
जय विमल महन्त विमल मुह । जय सामि अणन्त अणन्त-सुह ॥८॥
जय धम्म जिणेसर धम्म धर । जय सन्ति-भडारा सन्ति-कर ॥९॥
जय कुन्थु महन्थुइ थुय वयण । जय अर अरहन्त महन्त-गुण ॥१०॥
जय मल्लि महल्ल मल्ल मयण । मुणि सुव्वय सु-व्वय सुद्ध मण' ॥११॥

रगासे चित्रित उस जिन-भवनको देखकर राम बहुत सन्तुष्ट हुए। वह तीन प्रदक्षिणा देकर बैठ गये। वहाँ उन्होंने चन्द्रप्रभुकी अत्यन्त शोभित दर्शनीय और सौम्य प्रतिमाके दर्शन किये। वह प्रतिमा कल्पवृक्षके फूलोंसे अर्चित और नागेन्द्र सुरेन्द्र नरेन्द्र मुनि तथा विद्याधरों-द्वारा वन्दित थी। और भी उन्होंने वहाँ, सफेद चमर, सिंहासन, छत्र अशोकवृक्ष तथा विस्तीर्ण शोभासे अंकित भामंडल देखा। बहुत कहनेसे क्या जगमें कैसी भी प्रतिमा स्थापित हो जाय, फिर भी भगवानसे उसकी उपमा नहीं दी जा सकती॥ १–१०॥

[८] राम लक्ष्मण और सीताने जगन्नाथ-जिनके दर्शन कर विविध वन्दनाओंसे उनकी भक्ति प्रारम्भ की "दुःसह परिषहोंको सहन करने वाले ऋषभ आपकी जय हो। अजेय कामका दलन करने वाले अजितनाथकी जय हो। जन्मनाशक सम्भवनाथकी जय हो। नन्दितचरण अभिनन्दनकी जय हो। सुमतिदाता भट्टारक सुमतिकी जय हो। पद्मकी तरह कान्तिवाले पद्मनाभकी जय हो। बंधन काटने वाले सुपार्श्वनाथकी जय हो। पूर्णचन्द्रकी तरह मुख वाले चन्द्रप्रभुकी जय हो। फूलोंसे अर्चित पुष्पदन्तकी जय हो। शीतलमुखसे अर्चित शीतलनाथकी जय हो। कल्याणकर्ता श्रेयांस नाथकी जय हो। पूज्यचरण वासुपूज्यकी जय हो। पवित्रमुख भट्टारक विमलकी जय हो। अनन्तसुखनिकेतन अनन्तनाथकी जय हो। धर्मधारी धर्मनाथकी जय हो। शान्तिदाता भट्टारक शान्तिनाथ की जय हो। महास्तुतियोंसे वन्दित-चरण कुंथुनाथकी जय हो। महागुणोंसे सम्पन्न अरहनाथकी जय हो। बड़े-बड़े पापोंको पछाड़ने वाले मल्लिनाथकी जय हो। सुव्रती और शुद्धमन मुनि-सुव्रतकी जय हो। इस प्रकार भक्तिसे जिनवरोंकी वन्दना करके

राम वहीं बैठ गये। परन्तु लक्ष्मण उस भवनमें घुसे जहाँ सिंहोदर था॥ १–१२॥

[६] इतनेमें राजाके द्वारपर एक प्रतिहार दिखाई दिया। स्थिर और स्थूल बाहुओं वाला वह शस्त्र भय और ऐसी बातोंमें बड़ा कुशल था। आते हुए इस सुभटको उसने उसी तरह पकड़ लिया जिस तरह लवण-समुद्रको उसकी वेला ग्रहण करती है। इससे वह कुपित होकर तमतमा उठा। वह हाथ हिलाने लगा। उसके नेत्र भयानक हो उठे। शत्रु-समुद्रका मथन करनेवाला वह (लक्ष्मण) मनमें सोचने लगा "क्या मार दूँ, नहीं नहीं इससे क्या मिलेगा?' यही विचारकर बाहुओंसे प्रचंड, वह भीतर ऐसे चला गया मानो मदसे गंडस्थल वाला मत्त महागज हो।" इसके बाद लक्ष्मणने दशपुर-नगरमें वैसे ही प्रवेश किया जैसे, कामदेव भाव ही जन-मन मुग्ध कर देते हैं। दुर्वार सैकड़ों शत्रुओं के प्राणोंको चुराने वाला वह सिंहके बच्चेकी तरह निकल पड़ा। जैसे ही लक्ष्मणको राजद्वारपर देखा प्रतिहारने कहा, "मत रोका जाने दो।" यह वचन सुनकर, चक्रवर्तीकी लक्ष्मीसे आलिंगित शरीर लक्ष्मण प्रविष्ट हुआ। दशपुर-नरेश वज्रकर्णने लक्ष्मणको आते हुए उसी तरह देखा जैसे ऋषभ जिनने अहिंसा धर्म-को देखा था॥ १–१०॥

[७] लक्ष्मणको देखकर वज्रकर्ण बहुत प्रसन्न हुआ। बार-बार स्नेहसे वह उसी क्षण बोला—"क्या दूँ हाथी रथ और घोड़ोंका समूह या चमकते हुए मणियोंका मुकुटपट्ट? क्या आपको वस्त्र और रत्नोंसे काम है? क्या आपको श्रेष्ठ मनुष्योंसे युक्त राज्य दूँ? क्या सम्भ्रान्त सेवक दूँ? या पुत्र तथा पत्नी सहित मैं ही तुम्हारा सेवक बन जाऊँ।" य

राम वहीं बैठ गये। परन्तु लक्ष्मण उस भवनमें घुसे जहाँ सिंहासन था॥ १-१२॥

[६] इसनेमें राजाके द्वारपर एक प्रतिहार दिखाई दिया। स्थिर और स्थूल बाहुओं वाला वह शस्त्र सय और देशी बोलीमें बड़ा कुशल था। आते हुए इस सुभटको उसने उसी तरह पकड़ लिया जिस तरह लवण-समुद्रको उसकी वेला ग्रहण करती है। इससे वह कुपित होकर तमतमा उठा। वह हाथ हिलाने लगा। उसके नेत्र भयानक हो उठे। शत्रु-समुद्रका मंथन करनेवाला वह (लक्ष्मण) मनमें सोचने लगा "क्या मार दूँ नहीं नहीं इससे क्या मिलेगा? यही विचारकर बाहुओंसे प्रचण्ड, वह भीतर ऐसे चला गया माना मदसे गंडस्थल वाला मत्त महागज हो।" इसके बाद लक्ष्मण दशपुर-नगरमें वैसे ही प्रवेश किया जैसे कामदेव आते ही जन-मन मुग्ध कर लेते हैं। दुर्वार सैकड़ों शत्रुओं के प्राणोंका चुराने वाला वह सिंहके बच्चेकी तरह निकल पड़ा। जैसे ही लक्ष्मणको राजद्वारपर देखा, प्रतिहारने कहा, "मत रोको जाने दो।' यह वचन सुनकर, चक्रवर्तीकी लक्ष्मीसे अंकित शरीर लक्ष्मण प्रविष्ट हुआ। दशपुर-नरेश वज्रकर्णने लक्ष्मणको आते हुए उसी तरह देखा जैसे ऋषभ जिनने अहिंसा धर्म को देखा था॥ १-१०॥

[९] लक्ष्मणको देखकर वज्रकर्ण बहुत प्रसन्न हुआ। बार-बार स्नेहसे वह उसी क्षण बोला—"क्या दूँ हाथी रथ और घोड़ोंका समूह या चमकते हुए मणियोंका मुकुटपट्ट? क्या आपको वस्त्र और रत्नोंसे काम है? क्या आपको श्रेष्ठ मनुष्योंसे युक्त राज्य दूँ? क्या सम्भ्रान्त सेवक दूँ? या पुत्र तथा पत्नी सहित मैं ही तुम्हारा सेवक बन जाऊँ।" य

वचन सुनकर प्रसन्नचित्त लक्ष्मणने रामासे कहा, "कहाँ मुनिवर कहाँ संसारसुख, कहाँ पापपिंड और कहाँ परम मोक्षसुख ! कहाँ प्राकृत और कहाँ कुतुक-कौतुक वचन ! कहाँ कमलोंका समूह और कहाँ व्यापक आकाश ! कहाँ मदमाते हाथीकी घंटी और कहाँ ऊँटका पटा ! कहाँ पथिक और कहाँ रथ-घोड़ोंका समूह ! यह बात कहिए जो एक भी कौरास कम न हो, हमलोग दुष्ट क्षुधासे बाधित हो रहे हैं। तुम-सा धर्मीजन ही दयाधर्म करने से नहीं चूकते। भोजन माँगता हूँ यदि हो सके तो तीन आदमियों-का भोजन दो ॥१-१० ॥

[११] तब यक्षकन्याने सचमुच नम्रोंसे कहा "भोजन ग्रहण करनेकी क्या बात ? माँगो तो राज्य भी दे सकता हूँ।" यह कह कर अन्न (भोजन) लेकर वह पल भर में रामके निकट जा पहुँचा। एक क्षणमें उसने कटोर और थाल रख दिये। अन्न-मांड और दूधके बने आसन बिछा दिये। सब प्रकारके व्यञ्जनों से वह भोजन उत्तम था। वह इक्षु वनकी तरह मधुर रससे भरा था, उद्यानकी तरह अत्यन्त सुगन्धित था और सिद्धोंके सिद्धिसुख की तरह सिद्ध था। मदमत्त रामकी भोजन-बेला ऐसी सोह रही थी मानो वह अमृतसमुद्रसे ही निकली हो। वह घवलपूर और दूधके फेनसे उज्ज्वल थी। उसमें पयाके चंचल आवर्त उठ रहे थे। घीकी लहरोंका समूह बह रहा था। कढ़ीका जल और तुषार प्रकट हो रहा था। साग-सूपी सैकड़ों शैवालोंसे वह अचित थी। और वह हरि तथा हलधर (राम और लक्ष्मण) रूपी जलचरोंसे चुम्बित हो रही थी। अधिक कहनेसे क्या, उन्होंने, इष्टकन्याके समान, सच्छाय (सुन्दर कान्तिवाला), सलोण (सुन्दरता और नमक) सव्यञ्जन (पकवान और अलंकार) सुन्दर भोजन यथेष्ट खाया ॥१-१०॥

[१२] भोजन करनेके उपरान्त रामने लक्ष्मणसे कहा—"यह भोजन नहीं किन्तु तुम्हारे ऊपर उपकारका बहुत भारी भार है, इसका कोई प्रत्युपकार करो। (न हो तो) दोनों सेनाओं में अपने आपको प्रकट करो। जाकर सिंहोदरको रोको और आधे राज्यकी शर्तपर उससे सन्धि कर लो, फौरन दूत भेजकर उससे कहो कि वज्रकर्ण दुर्जेय और अपराजित है। उसके साथ युद्ध कैसा ? जो तुमने युद्धके इतने साधन जुटाये हैं।" यह सुनकर शत्रुका दमन करनेवाला अनावृत लक्ष्मण रामके पैरोंपर गिरकर बोला—"आपका आदेश पाकर आज मैं धन्य और कृतार्थ हूँ।" यह कहकर आदरणीय वह सीधा सिंहोदरके भवनमें गया। हाथीकी तरह गरजकर तथा प्रतिहारको सख्तीसे डाँटकर भयंकर मुख वह समूचे दरबारको तिनकेके समान समझता हुआ उसी तरह भीतर प्रविष्ट हुआ जैसे गजघटाके बीचमें सिंह प्रवेश करता है ॥ १–१० ॥

[१३] तब अमर्षसे भरे और क्रुद्ध लक्ष्मणने सिंहोदरको ऐसे देखा—जैसे शनिने ही देखा हो। वह जिस ओर देखता वहीं सैनिक नीचा मुख करके रह जाता। सिंहोदर मन ही मन सोच रहा था कि यह कोई महाबली होना चाहिए। न तो यह प्रणाम करता है और न बैठता ही है, इतनेमें मौका पाकर कुमार लक्ष्मणने सिंहोदरसे कहा—"बहुत विस्तारकर कहनेसे क्या, मुझे राजा भरतने यह कहनेके लिए भेजा है कि सिंहके साथ क्रीड़ा कौन करता है, कौन ऐरावतका दाँत उखाड़ सकता है, कौन मदराचलकी शिखर गिरा सकता है, और कौन चन्द्रको हाथसे रोक सकता है। कौन वज्रकर्णको मार सकता है ? अतः उसके साथ संधि कर सुन्दर स्त्रीकी तरह हृदयसे तुम इस धरतीको

भोगो। और यदि राजन्, आधे राज्यको नहीं चाहते तो फल समरांगणमें आती हुई बाणोंकी बौछारको झेलनेके लिए तैयार रहो।" ॥ १-१० ॥

[१४] लक्ष्मणके इन शब्दोंसे सिंहोदर कुपित हो उठा, उसके अधर फड़कने लगे, वह बोला, "मारो मारो, मारो मारो हनो हनो।" तलवार हाथमें लेकर उठते हुए वह बोला "अच्छा जरा ठहरो, भरतने भेजा है न।" उसने फिर आदेश दिया, "इस दूतको दूतपन दिखला दो नाक काट लो सिर मूँड़ लो। हाथ काट लो और फिर गधेपर चढ़ाकर खूब पिटवाकर नगरमें घुमाओ। यह सुनते ही नरवर उठे, मानो नये जलधर गरज उठे हों, वे मत्सरसे भरकर 'मारो मारो' कहने लगे मानो वे कलिकाल यम और शनि हों या फिर समुद्रने अपनी मर्यादा छोड़ दी हो, या उन्मत्त कुंजर ही दौड़ पड़े हों। कोई हाथमें तलवार उठा रहा था तो कोई भीषण चक्र और गदा घुमा रहा था। कोई भयंकर धनुष चढ़ा रहा था। इस प्रकार वे स्वामीके प्रति अपनी वफादारी (दासता) दिखा रहे थे। कुपित-अधर और विकराल भौंहों वाले उन्होंने लक्ष्मणको ऐसे ही घेर लिया जैसे गीदड़ सिंहको घेर लेते हैं॥ १-१०॥

[१५] कुमार लक्ष्मणको वैसे ही घेर लिया जैसे मेघ सूर्यको घेर लेता है, तब वह वीर शत्रुओंका दलन करता हुआ उठा। कभी वह रुकता कभी मुड़ता कभी दौड़ता और शत्रुपर धौंस जमाता। वह ऐसा जान पड़ता मानो सिंहशावक ही उछल रहा हो। महाबली वह, मदविह्वल उन्मत्त हाथीकी तरह, (शत्रुओं) के सिर कमलोंको तोड़ने लगा। और मणिमुकुटोंको चूर-चूर करता हुआ वह राजाओंके निकट जा पहुँचा। वैसे ही जैसे सिंह हाथीके

घत्ता

भमइ मरइ वइ एमहिँ भडु ण इच्छहि ।
तो समरङ्गणें सर-धोरणि पुच्छि पडिच्छहि ॥ १ ॥

[१४]

कलयल-वयण-दूसियो वाहर-विप्फुरन्तो ।
'मरु मरु मारि मारि हणु हणु' भणन्तो ॥१॥

उट्ठिउ पहु कलयल-सिरवन्तउ । 'मच्छरु ताम महु दीसन्तउ ॥२॥
दूअहों दूअत्तणु दरिसावहों । छिन्दहों णासु सीसु मुण्डावहों ॥३॥
लुणहों हत्थ विब्भारेंवि पायहों । गद्दहें चडिउ णयरें भमावहों ॥४॥
तं णिसुणेवि समुट्ठिय णरवर । गलगज्जन्त णाइँ णव जलहर ॥५॥
'हणु हणु हणु' भणन्त बहु-मच्छर । णं कलि-काल-कियन्त-सणिच्छर ॥६॥
णं मिय समय-चुअ रयणायर । णं उम्मेट्ठ पयाइय कुञ्जर ॥७॥
करें करवालु को वि उग्गामइ । भीसणु को वि गयासणि भामइ ॥८॥
को वि भयङ्कर चाउ चडावइ । सामिहें णियबलु दरिसावइ ॥९॥

एव णरिन्देंहिं कुद्धियाहर-भिउडि-करालेंहिँ ।
वेढिउ वसन्तु पञ्चाणणु जेम सियालेंहिँ ॥ १ ॥

[१५]

दूउ व जम्बवरहिँ जं वेढिओ कुमारो ।
उट्ठिउ वर हत्थनु दुप्पास-वइरि-वारो ॥ १ ॥

पेक्खइ थवइ पाइ रिउ सम्मइ । णं केसरि किसोरु पडिपहम्मइ ॥ २ ॥
णं सुरवर-गइन्दु मय-विब्भलु । सिर-कमलइँ तोडन्तु महा-बलु ॥३॥
दरमलन्तु मणि-मउड णरिन्दहुँ । सीसु पडुञ्चिउ जम गइन्दहुँ ॥४॥
को वि सुमुसुमूरिउ चूरिउ पाएँहिँ । को वि णिसुम्भिउ थक्क-पाएँहिँ ॥५॥

भोगो। और यदि राजन्, आपे राज्यको नहीं चाहते तो कल समरांगणमें आती हुई बाणोंकी बौछारको झेलनेके लिए तैयार रहो।" ॥ १-१० ॥

[१४] लक्ष्मणके इन शब्दोंसे सिंहोदर कुपित हो उठा, उसके अधर फड़कने लगे वह बोला "मरो मरो, मारो मारो हनो हनो।" तलवार हाथमें लेकर उठते हुए वह बोला, "अच्छा जरा ठहरो, भरतने भेजा है न।" उसने फिर आदेश दिया, "इस दूतको दूतपन दिखला दो नाक काट लो, सिर मूँड़ लो। हाथ काट लो और फिर गधेपर चढ़ाकर खूब चिल्लाकर नगर में घुमाओ। यह सुनते ही नरवर उठे मानो नये जलधर गरज उठे हों, वे मत्सरसे भरकर 'मारो मारो' कहने लगे, मानो वे कलिकाल यम और शनि हों या फिर समुद्रने अपनी मर्यादा छोड़ दी हो, या उन्मत्त कुंजर ही दौड़ पड़े हों। कोई हाथमें तलवार उठा रहा था, तो कोई भीषण चक्र और गदा घुमा रहा था। कोई भयंकर धनुष चढ़ा रहा था। इस प्रकार वे स्वामीके प्रति अपनी वफादारी (दासता) दिखा रहे थे। कुपित-अधर और विकराल भौंहों वाले उन्होंने लक्ष्मणको वैसे ही घेर लिया जैसे गीदड़ सिंहको घेर लेते हैं ॥ १-९ ॥

[१५] कुमार लक्ष्मणको वैसे ही घेर लिया जैसे मेघ सूर्यको घेर लेता है, तब वह वीर शत्रुओंका दमन करता हुआ उठा। कभी वह रुकता कभी मुड़ता कभी दौड़ता और शत्रुपर घूँसे जमाता। वह ऐसा जान पड़ता मानो सिंहशावक ही उछल रहा हो। महाबली वह, मदविह्वल प्रगल्भ हाथीकी तरह, (शत्रुओं) के सिर कमलोंको तोड़ने लगा। और मणिमुकुटोंको चूर-चूर करता हुआ वह राजाओंके निकट जा पहुँचा। वैसे ही जैसे सिंह हाथीके

निकट पहुँच जाता है। उसने किसीको मसलकर पैरसे कुचल दिया, किसीको टक्करकी मारसे ध्वस्त कर दिया, किसीको अंगुली से आकाशमें नचा दिया। कोई चिल्लाता हुआ आकाशसे धरती पर गिर पड़ा। कोई मेघ की तरह कड़कड़से सूख गया। कोई हुंकारकी झपटमें ही कराह उठा। हाथी बाँधनेके—आलान स्तभों का उखाड़, और आकाशमें घुमाकर वह ऐसे छोड़ देता था, मानो यमने ही अपना दण्ड फेंका हो, या वैरियोंका प्रलयकाल ही आ गया हो। आलान-स्तभके घुमानेसे धरती ही हिल उठी, और उसके गिरते ही दस हजार राजा धराशायी हो गये ॥ १-१० ॥

[१६] जब लक्ष्मणने समस्त शत्रुपक्षका दलन कर दिया तो वह पट्टबन्धन नामके उत्तम गजपर चढ़ गया। तब सिंहोदर भी सम्मुख युद्धके लिए चला। लक्ष्मणने सामने शत्रुसेना रूपी भयंकर समुद्रको उछलते हुए देखा। सेनाका आवर्त ही उसका गरजना था, हथियाररूपी जल और तुषार-कण छोड़ता हुआ ऊँचे ऊँचे अश्वोंकी लहरोंसे आकुल, मदमाते हाथियोंके कुंभरूपी तटोंसे व्याप्त ऊपर उठते हुए सफेद छत्रोंके फेनसे उज्ज्वल और ध्वजारूपी तरंगोंसे चपल और जलचरोंसे सहित था। उसे देखते ही लक्ष्मण सुमेरु पर्वतकी तरह उसके पास जा पहुँचा। कभी वह चक्कर खाता, और सहसा ऐसा घूम जाता, मानो वसुधागण—ही चपल हो उठा हो, द्वंद्व युद्ध शुरू हो गया। राजासे राजा घोड़ेसे घोड़ा हाथीसे हाथी, रथसे रथ चक्रसे चक्र, छत्रसे छत्र, और ध्वजाग्रसे ध्वजाग्र पराजित हो गये। लक्ष्मण जिस ओर अपनी भयंकर भौंहोंको फैलाता उसी ओर उसे धरती-मण्डल रुंडों से पटा हुआ दिखाई देता ॥ १-१० ॥

[१७] मंदराचलकी भाँति लक्ष्मणने नव शत्रुसेनारूपी समुद्र का मंथ डाला। तब महागजकी भाँति सिंहोदर उसपर दौड़ा।

इसके अनन्तर सिंहोदर और कुमार लक्ष्मणमें द्वंद्व शुरू हुआ। दोनों कुमार वैरीको पकड़ना चाह रहे थे, दोनों हथियार उठाकर घुमा रहे थे। दोनों मत्तगजकी तरह दारुण और प्रतिपक्षका संहार करनेवाले और स्वजनोंको सुख देनेवाले थे। दोनोंकी भुजाएँ प्रचंड और मन प्रसन्न था। इतनेमें सिंहोदरने लक्ष्मणकी छाती पर हाथी दौड़ाया वह ऐसा लगता था मानो इससे अभिन्न समाश्रित शरीर सजल मेघ शुक्र तारासे क्रीड़ा कर रहे हों ॥ १-८ ॥

तब लक्ष्मणने अपने हाथसे थरथराते हुए उस हाथीके दोनों दाँत उखाड़ लिये। पीड़ित होकर, रुष्टानन आलसे मुखका वह हाथी जब तक अपने प्राण छोड़े इसके पहले ही, लक्ष्मणने उसके मस्तक पर पैर रख, और हाथ खींचकर सिंहोदरको पकड़ लिया ॥१-११॥

[१८] जब लक्ष्मणने उसे जीवित ही पकड़ लिया तो किसीने तत्काल भयकम्पसे जाकर कहा "हे राजराज, दशपुर प्रभुपक्ष किस तरह जर्जर हो गया है। पथ निरंतर खूनसे लथपथ हो रहे हैं। तरह-तरहके पक्षी उनपर बैठ हुए हैं। कोई प्रचंड वीर कृतान्तकी तरह झपटता हुआ घूम रहा है। गजघटा, भटोंके समूह और सुभटोंको खदेड़ता, हाथियोंके शिरकमलोंके समूहको तोड़ता, रोकता भागता पहुँचता और ठहरता हुआ वह ऐसा लगता है मानो युद्धभूमिमें यमकाल ही घूम रहा हो। भयंकर भौंहोंवाला मत्सरभरा कुमार वह रणमें ऐसा लगता है मानो शनि हो मैं नहीं जानता वह कौन है? कोई गन्धर्व या मन्मथ कोई आपका भाई। किन्नर है मानव, विद्याधर है! ब्रह्मा है या भानु? हरि है या हलधर। दस हजार गजोंको युद्धमें मार गिराया है। और भी मत्सरसे भरे दुर्जेय उसने सिंहोदरको जीवित ही पकड़ लिया है।

भग्गिहुँ तुम्हु वि ण्णि वि जणाइँ । उच्चेवि णराहिव कलत्तणाइँ ॥२॥
कुमार बाहिरि गेण्हेवि मणाइँ । उम्माहिय मामिय पहरणाइँ ॥३॥
सयमय णहमु दारुणाइँ । पडिवक्ख पक्ख संघारणाइँ ॥४॥
सुरकुसुम सत्थ तोसावणाइँ । सीहोयर कलयल परवराइँ ॥५॥
। सुभ-वण्ण-वण्ण-हरिसिय मणाइँ ॥६॥
एत्थन्तरें सीहोयर बलेण । उरें पेल्लिउ कलयलु गयवरेण ॥७॥
रहसुम्मइ दुज्जय विसह वेहु । ण मुऍ वीसमिउ स-जलु मेहु ॥८॥
वे सेणि सुमणों आहरन्त । उप्पाडिय दन्तिहैं वे वि दन्त ॥९॥
कडुमाणिउ मयगलु समरैं तद्दहु । विवरम्मुहु पाण लएवि णट्ठु ॥१० ॥

घत्ता

ताम कुमारेंण विज्जाहर-चलु कोप्पिणु ।
धरिउ णराहिउ गय-मत्थएँ पाउ थवेप्पिणु ॥ ११ ॥

[१८]

धरवइ जीव-गाहि ज धरिउ लक्खणेण ।
कम्प वि समपण्णा कहिउ तक्खणेण ॥ १ ॥

हे णरणाह णाह अवहरियउ । पर-बलु पेक्खु केम जज्जरियउ ॥२॥
एण णिरन्तर सामिय-चरिउ । कामाविह विरह परिवढिउ ॥३॥
को वि पयण्ड-णाउ धयधन्तउ । ममइ कियन्तु व रिउ-आसन्तउ ॥४॥
गय भड भड मड सुहड पडन्तउ । करि सिर-कमल-सण्ड तोडन्तउ ॥५॥
रोवइ कणइ दुणइ धाइइ । जं समर-मल्लु समरें परिसक्कइ ॥६॥
भिउडि भयङ्कर दुप्पइ समछरु । विउ भडक्कमें जाइँ धम्मिल्लउ ॥ ॥
णउ जाणहुँ किं गहु किं मम्मगु । किं पच्चक्खु जम वि तउ जम्मगु ॥८॥
किण्णरु किं माणवु विज्जाहरु । किं कम्महु भासु हरि हलहरु ॥९॥
जय महायेंण माण-मडम्फरइँ । किंमिपाइय बल सयल णरिन्दइँ ॥१० ॥
अण्णु ण दुज्जउ मच्छर-भरियउ । जीव-गाहि सीहोयरु धरियउ ॥११॥

अकेले होते हुए भी उसने सेनामें हलचल मचा दी है। ठीक वैसे ही जैसे मंदराचलकी पीठ समुद्रके जलको मथ देती है ॥१-१२॥

[१६] यह सुनकर किसीका मन सन्तुष्ट हो उठा तो कोई ऊपर मुख उठाकर अपने वालेका मुख देखने लगा। कोई ईर्ष्यासे भर कर कह उठा, "अच्छा हुआ कि सिंहोदर पकड़ा गया, जैसे यह अपने हाथसे शत्रुको मारता था, वैसे ही वह भी दूसरेके हाथसे पकड़ा गया, अतः वज्रकर्ण तुम सैकड़ों परिजनोंके साथ अपने राज्यका भोग करो। तब कोई विरुद्ध होकर, बार-बार ऐसा कहने वालेकी निन्दा करते हुए बोला "अरे धम छोड़कर पापसे आनंदित क्यों हो रहे हो।" तब किसी एकने कहा "अरे भोजन माँगने वाले ये ब्राह्मण नहीं हैं।" इतनेमें कुमार लक्ष्मण शत्रुको अपने कंधेपर टाँगकर ले आया वैसे ही जैसे राजकुल चोरको बाँधकर ले आता है। सिंहोदरका अन्तःपुर,अलंकार डोर और नूपुरों सहित भी दीन मुख और अनमना हो उठा। हिमसे आहत और मुरझाये हुए कमलवनकी तरह डबडबाये नेत्रोंसे वह उसके पाछे दौड़ा। उस (अन्तःपुर) के बाल बिखरे हुए थे और मुँह कातर था। चारों ओरसे घेरकर उसने लक्ष्मणसे अपने पतिकी भीख माँगी ॥१-१ ॥

[२०] परन्तु इधर सहसा रामकी पत्नी सीता आशंकित हो उठीं मानो वनकी भोली हिरनी ही भयभीत हो उठी हो, वह बोली —"देखिए देखिए, समुद्रजलकी तरह गरजती हुई सेना आ रही है, निश्चल मत बैठे रहो, धनुष हाथमें ले लो शायद युद्धमें लक्ष्मणका अंत हो गया है।" यह सुनकर, महायुद्धमें समर्थ राम जबतक हाथमें धनुष लेनेको हुए कि तबतक स्त्रियोंके साथ लक्ष्मण, आता हुआ ऐसा दिखाई दिया मानो हथिनियोंसे घिरा

हाथी ही आ रहा हो। उसे देखकर, सुभटश्रेष्ठ रामने डरी हुई सीताको अभय वचन देते हुए कहा, "देखो सिंहोदर कैसा बँधा हुआ है, जिसने शृगालको मानो ऊपर उठा लिया है।" यह ऐसा कह ही रहे थे कि कुमार लक्ष्मण एकदम निकट आ पहुँचा, उन्होंने अपना विकट माथा रामके चरणोंमें ऐसे ही रख दिया माना जिनके सम्मुख हाथ जोड़कर मस्म ही खड़ा हो ॥१-६॥

तब देवभवनोंमें विख्यात नाम रामने 'साधु' कहकर अपनी विशाल भुजाओंमें लक्ष्मणको भर लिया ॥१०॥

•

छब्बीसवीं सन्धि

लक्ष्मण और रामके गोरे काले शरीर एकत्र मिले हुए ऐसे मालूम होते थे मानो गंगा और यमुनाके जलका संगम हो।

[१] पुलकितशरीर उन दोनोंने तुरत एक दूसरेका आलिंगन किया। तदनन्तर, रामने, प्रणाम करते हुए सिंहोदरको बैठाया। और तत्काल उन्होंने वज्रकर्णको भी बुलवा लिया। वह अपने उत्तम मनुष्योंके साथ इस प्रकार निकला माना देवताओंको लेकर इन्द्र ही निकला हो। प्रतिपदाके चन्द्रके पीछे जैसे सूरज रहता है वैसे ही सिंहोदर भी उस (वज्रकर्ण) के पीछे-पीछे आ रहा था। तब वे लोग चूना और ईंटसे निर्मित सहस्रकूट जिना-लयमें पहुँचे। उन्होंने उसकी तीन बार प्रदक्षिणा की। भट्टारक रामने उनका अभिवादन किया। वज्रकर्ण भी प्रियवचन सुनिको नमस्कार कर रामको कुशल पूछ उनके पास बैठ गया ॥१-८॥

तब सुभट श्रेष्ठ रामने दशपुर-नरेश वज्रकर्णका साधुवाद

दिया और कहा—"जैसे मिथ्यात्वके भावोंसे सत्यका भेदन नहीं किया जा सकता, वैसे ही दृढ़ सम्यक्त्वमें तुम्हारी उपमा केवल तुम्हींसे दी जा सकती है।" ॥८-६॥

[२] यह सुनकर वज्रकर्णने निवेदन किया—"यह सब आपके प्रसादका फल है।" तदनन्तर रामने त्रिभुवन विख्यात, विद्युद्ग चोरकी प्रशंसा की—"तुम्हारा वक्षस्थल कठोर विशाल और विकट है। तुम्हारा साधर्मी-प्रेम स्तुत्य है, तुमने राजाकी रक्षा कर बहुत बढ़िया काम किया। युद्धमें हारते हुए भी तुमने इसकी उपेक्षा नहीं की"। तब इसी बीचमें कुमार लक्ष्मण बोल उठे, "बहुत कहना व्यर्थ है, हे विश्वमति-नृपसुत जिनवर-चरण-कमल-भ्रमर! यह क्षुद्र ईर्ष्यालु राजा पकड़ लिया गया है, क्या इसे मार डालूँ? या चाहें आप ही मारें अथवा दयाकर इससे संधि कर लें।" इस पर रामने कहा —"आजसे यह तुम्हारा आज्ञापालक अनुचर होगा, ठीक उसी तरह जिस तरह राजा भरतके पास जिनका अनुचर था ॥१-६॥

[३] तब बहुविद्य वज्रकर्णने कहा "यह राजा है और मैं साधारण आदमी। मैं तो केवल इसी व्रतका पालन करना चाहता हूँ कि जिनको छोड़कर मैं किसी औरको नमन नहीं करूँगा यह सुनकर देवलोकमें प्रसिद्ध नाम राम और लक्ष्मणने उन दोनोंका (सिंहोदर और वज्रकर्ण) का हाथ पर हाथ रखवा कर एक दूसरेका दर्पपूर्वक मिलाप करवा दिया। धरती आधी-आधी बाँट दी। तथा उन दोनोंको जिनधर्मका भी उपदेश दिया। कामिनी कामलेखाको बुलाकर रामने उसे विद्युदंगके लिए सौंप दिया। और उसे, सूर्य तथा चन्द्रमाका भी तेज हरण करनेवाले, मणिकुण्डल दे दिये। तब प्रसिद्ध राजा वज्रकर्ण और सिंहोदरने कुमार लक्ष्मणसे

विनय करते हुए कहा,—"रंग और सुन्दरतामें पूर्ण, अभिनव रूपवती इन तीन सौ कन्याओंका ग्रहण करें। इनके नेत्र नवकमल दलकी तरह विशाल हैं। मुख चन्द्रमाके समान है, चाल मत्त गजकी भाँति है और इनके ऊँचे ऊँचे भाल पर तिलककी शोभा है। ये मधुर भाष्य और भावके गुणोंकी निकेतन हैं, विलास और भावोंसे पूर्ण शरीर इनका मध्यभाग क्षाम और स्तन गंभीर है।" ॥१-१३॥

[४] यह सुनकर लक्ष्मणने हँसते हुए कहा "अच्छा ये सब तब उसी प्रकार विलाप करें जिस प्रकार कमलिनियाँ रविके किरण जालके लिए विलाप करती हैं। अभी मुझे दक्षिण देश जाना है, जहाँ काञ्चनमलय और पुष्प आदि देश हैं वहाँ बलभद्र रामके लिए आवासकी व्यवस्था करना है। बादमें मैं इनका पाणिग्रहण कर सकता हूँ। कुमारके इस कथनसे उन कुमारियोंका मन खिन्न हो उठा। मानो कमलिनी-समूहको पाला मार गया हो, या मानो विधाताने सफेद मुँदरी स्याहीकी कृपा कर दी हो। इसके अनन्तर लक्ष्मण और सीताके साथ रामने विविध मंगलगानोंके साथ, नगरमें प्रवेश किया। वन्दीजन जय जयकार कर रहे थे। कुब्ज वामन नाच रहे थे। दूसरे इन्द्रकी तरह उनका सबने जय जय कार किया। उस सुन्दर नगरमें निवास कर आधी रात होनेपर आदरणीय वे तीनों (बलभद्र राम नारायण लक्ष्मण और सीतादेवी) देवपुर नगर छोड़कर चल गये। पलभरमें वे वैतक मादमें मलहूपर नगरमें पहुँचे ॥१-११॥

[५] उस नगरमें उनके पहुँचते-पहुँचते फाल्गुनका महीना पूरा हुआ था और वसंत राजा कोयलके कलकल मंगलके साथ आनन्दपूर्वक प्रवेश कर रहे थे। भ्रमररूपी वन्दीजन मंगलपाठ पढ़ रहे थे और मोर रूपी कुब्जवामन नाच रहे थे। इस तरह अनेक

'वल-कुसुमप्प-रय दीहर-णयणहुँ । मयगल-गइ-गमणहुँ ससि-वयणहुँ ॥ १ ॥
रय मिवारवाकड्डिय तिवण्णहुँ । बहु-सोहग्ग-सोम्म-गुण विवण्णहुँ ॥ १३ ॥
विब्भम भारविमियण सरीरहुँ । तणु-मज्झहुँ थण-हर-गम्भीरहुँ ॥ १४ ॥

घत्ता

अहिणव-रूवहुँ लायण्ण-वण्ण-संपुण्णहुँ ।
तहु भो कुमारु वर तिण्णि सयाइँ सुहुँ कण्णहुँ' ॥ १५ ॥

[४]

तं णिसुणेप्पिणु दसरह पभणइ । एम पजम्पिउ दसेंवि जणवइ ॥ १ ॥
'भणउ ति-यणु ताम णिक्खन्तउ । णिसिणि-णिहाउ व रविपर-खित्तउ ॥ २ ॥
महँ आयण्णउ वाहिण दसहँ । कोड्डुण मग्गण पणिड उद्देसहँ ॥ ३ ॥
तहिँ मण्णदहोँ विसउ पयासमि । पच्छएँ पाणिग्गहण करेसमि' ॥ ४ ॥
एम कुमारु पजम्पिउ जं जे । मणेँ विसण्णु कण्णायणु तं जे ॥ ५ ॥
एत्थु विसेसु वण्णकिणि-समुवउ । झुरेँ-झुरेँ भावेँ णिम्नुभसि-कुमरउ ॥ ६ ॥
जाम ताम सूरेँहिँ पजम्पेँहिँ । णिविडेँहिँ मज्जेँहिँ णिजम्पेँहिँ ॥ ७ ॥
बन्दिणेँहिँ 'जय जय' पभणन्तेँहिँ । तुरयण वग्गेहिँ णच्चन्तेँहिँ ॥ ८ ॥
सीय स-कलत्तु मग्गु पइसारिउ । सीया एत्थु व जणवयकारिउ ॥ ९ ॥
तहिँ णिवसेप्पिणु थवरँ रवणाएँ । अवराविच-भवणेँ पडिवण्णएँ ॥ १० ॥

घत्ता

वक-भसरायण गय दसरह सुऍवि महाइय ।
वेसहोँ मासहोँ त कुमार-णयर पराइय ॥ ११ ॥

[५]

कुमार-णयर पराइय जावेँहिँ । फग्गुण-मासु पवोलिउ तावेँहिँ ॥ १ ॥
पइड्डु वसन्तु राउ अत्थाणेँ । कोइल कलयल सहल-यरे ॥ २ ॥
अलि-मिहुणेँहिँ वन्दिणेँहिँ पढन्तेँहिँ । वरहिण वाणेँहिँ णच्चन्तेँहिँ ॥ ३ ॥

विनय करते हुए कहा,—"रूप और सुन्दरतामें पूर्ण, अभिनव रूप वाली इन तीन सौ कन्याओंको ग्रहण करें। इनके नेत्र नवकमल दलकी तरह विशाल हैं। मुख चन्द्रमाके समान हैं, चाल मत्त गजकी भाँति है और इनके ऊँचे ऊँचे भाल पर तिलककी शोभा है। ये प्रचुर भाग्य और भोगके गुणोंकी निकेतन हैं, विलास और भावोंसे पूर्ण शरीर इनका मध्यभाग क्षाम और स्तन गंभीर है।" ॥१-१३॥

[४] यह सुनकर लक्ष्मण हँसते हुए कहा "अच्छा ये सब तब उसी प्रकार विलाप करें जिस प्रकार कमलिनियाँ रविके किरण-जालके लिए विलाप करती हैं। अभी मुझे दक्षिण देश जाना है, जहाँ कोकणमलय और पुड आदि देश हैं वहाँ बलभद्र रामके लिए आवासकी व्यवस्था करना है। बादमें मैं इनका पाणिग्रहण कर सकता हूँ। कुमारके इस कथनसे उन कुमारियोंका मन खिन्न हो उठा। मानो कमलिनी-समूहको पाला मार गया हो, या मानो किसीने सबके मुँहपर स्याहीकी कूँची फेर दी हो। इसके अनंतर लक्ष्मण और सीताके साथ रामने विविध मंगलगानोंके बीच, नगरमें प्रवेश किया। बंदीजन जय-जयकार कर रहे थे। कुब्ज वामन नाच रहे थे। दूसरे इन्द्रकी तरह उनका सबने जय जय-कार किया। उस सुन्दर नगरमें निवास कर भावी रात होनेपर आदरणीय वे तीनों (बलभद्र राम, नारायण लक्ष्मण और सीतादेवी) दशपुर नगर छोड़कर चले गये। पलभरमें वे चलते मार्गमें नलकूबर नगरमें पहुँचे॥ १-११॥

[५] उस नगरमें उनके पहुँचते-पहुँचते फाल्गुनका महीना बीत चुका था और वसंत राजा कोयलके कलकलके मंगलके साथ आनन्दपूर्वक प्रवेश कर रहे थे। भ्रमररूपी बंदीजन मंगलपाठ पढ़ रहे थे और मोर रूपी कुब्जवामन नाच रहे थे। इस तरह अनेक

प्रकारके हिलते-डुलते तोरण-द्वारोंके साथ वसत राजा आ पहुँचा। कहीं आमके पर्णोंमें नये किसलय फल-फूलोंसे लद रहे थे। कहीं कांतिरहित पहाड़ोंके शिखर काले रंगवाले दुष्ट मुखोंकी तरह दिखाई दे रहे थे। कहीं-कहीं वैशाख माहकी गर्मीसे सूखी हुई धरती ऐसी जान पड़ती थी मानो प्रिय-वियोगसे पीड़ित कामिनी हो। कहीं गीत हो रहा था, और कहीं मृदंग बज रहा था। कहीं मनुष्योंके जोड़े रति कर रहे थे। उन लोगोंने नगरके उत्तरकी ओर वसंततिलक नामका, अत्न मनोहर, एक योजन विस्तृत उद्यान देखा। वह उद्यान सज्जनके हृदयकी तरह अप्रमेय था। सुरूप सुगंधित और नतमस्तक वह मानो हाथमें कुसुमांजलि लेकर रामके आगे स्वागतके लिए स्थित हो गया था॥ १–११॥

[६] बिना किसी देरीके उस वनमें प्रवेश करके रामने लक्ष्मणसे कहा, "अरे असुर और शत्रुओंको मसलनेवाले और दशरथकुलके इच्छापूरक लक्ष्मण कहीं पानी खोजो जो सज्जनके हृदयकी तरह निर्मल हो। बहुत दूरसे चलकर आनेके कारण सीताको प्यास लग आई है। वह हिमाहत कमलिनीकी तरह कांतिविहीन हो रही है।" यह सुनते ही लक्ष्मण वटवृक्ष रूपी सोपान पर चढ़ गये उसी तरह जैसे महामुनि गुणस्थानों पर चढ़ते हैं। वहाँसे उसे सुंदर और तरह तरहके पेड़ोंसे आच्छन्न एक सरोवर दीख पड़ा। सारस हंस क्रौंच और बगुला पक्षियोंसे गुम्फित उस सरोवरको कुमार (उतरकर) दौड़ा और पलभरमें उसके किनारे पहुँच गया। कमल-समूहको तोड़ते हुए, महाबली कुमार उसके जलमें ऐसे ही घुसा मानो ऐरावत हाथी क्रीड़ा करता हुआ मानसरोवरमें घुसा हो॥ १–९॥

[७] जिस समय लक्ष्मण सरोवरके पानीको विलोडित कर

रहे थे उसी समय, अनेक श्रेष्ठ मनुष्योंसे घिरा हुआ, नलकूबर नगरका राजा कामदेवके दिन (वसन्तपंचमीको) वसन्तक्रीड़ाके लिए वहाँ आया। प्रत्येक पदपर ऊँचे ऊँचे मंच (मचान) बनवा दिये गये। और प्रत्येक मंचपर एक-एक आदमी नियुक्त कर दिया गया। एक एक मंच पर एक एक राजा ऐसे बैठ गया, मानो मेरुपर्वतके शिखर पर विद्याधर बैठे हों। मंच-मंचपर आलापिनी (वीणा) बज रही थी, लोग मधु पी रहे थे। और हिन्दोल गीत गा रहे थे। मंच-मंचपर लोगोंके हाथमें मधु-प्याला था, मस्तक हिलाकर, वे उसे दिखा-दुखा रहे थे, मंच-मंचपर मिथुन क्रीड़ा कर रहे थे। नये जोड़े (दम्पति) स्नेह हीन भला क्यों होते हैं? मंच-मंचपर लोग झूम रहे थे, और लोगोंका शीघ्र अपने आवासका आना जा रहा था॥ १-८ ॥

नलकूबर नरेशने मंच पर चढ़ते ही लक्ष्मणको ऐसे देखा मानो चन्द्रने सूरको देखा हो ॥ ९ ॥

[८] अनेक लक्षणोंसे युक्त लक्ष्मणको देखकर उसे लगा मानो कामदेव ही अवतरित हुआ हो। स्वर्गलोकके लिए भी आनन्ददायक लक्ष्मणके रूपको देखकर, राजाके मनमें हलचल होने लगी। कामके बाणोंसे वह अपनेको बचा नहीं सका शीघ्र ही वह कामकी दस अवस्थाओं (वेगों) में पहुँच गया। पहले वेगमें वह किसीसे बात नहीं करता था दूसरेमें लम्बे-लम्बे निश्वास छोड़ने लगा, तीसरेमें उसके शरीरमें तपन होने लगी। चौथेमें करपत्रसे मानो काटा जाने लगा। पाँचवेंमें बारबार पसीना आता छठमें रह-रहकर मूर्छा आने लगी। सातवेंमें जल और गीली वस्तुसे अरुचि होने लगी। आठवेंमें मौतकी चेष्टाएँ दिखने लगीं। नवेंमें जाते हुए प्राणोंका ज्ञान नहीं हो रहा था। दसवेंमें सिर फटने लगा और

चेतना गायब हो चली। इसी तरह दसों वीरोंमें कामदेव अत्यधिक फैल गया। केवल अचरज इस बातका हो रहा था कि किसी तरह कुमारके प्राण नहीं निकले॥ १–८॥

[९] कुमारका जीव कंठमें अटका था, होश आनेपर उसने इतना ही कहा, "पथिकको बुलाओ"। प्रभुकी आज्ञासे अनुचर दौड़े गये, और पलभरमें लक्ष्मणके पास जा पहुँचे। उन्होंने प्रणाम करके तीनों लोकके प्रधानसे कहा—"किसी कामसे राजाने आपको बुलाया है" यह सुनकर त्रिभुवन जनके मन और नेत्रोंको आनन्द देनेवाले अनाहत लक्ष्मण चल पड़े, मानो सिंह ही अपने विकट पैर रखता हुआ जा रहा हो, धरती उसके भारसे काँप-सी उठी। 'कामदेवकी तरह जन-मनको मोहते हुए कुमारको आते देखकर कल्याणमाला (राजा) वैसे ही पुलकित हो गई जैसे हर्ष और विषादमें मग्न नाचता हुआ नट मग्न हो जाता है। फिर उसने लक्ष्मणको अपने आधे आसनपर बैठाया। वह भी जिन-शासनमें दृढ़ भव्यकी तरह स्थिर हो गया। सजे हुए सुन्दर मंच पर कुमार लक्ष्मण ऐसे बैठ गये मानो कन्याके साथ मिलकर प्रद्युम्न नया वर ही बैठा हो॥ १–९॥

[१०] आकाशके आँगनमें सूर्य और चन्द्रकी तरह वे दोनों और एक ही आसनपर बैठ गये। उनमें एक अत्यन्त प्रचण्ड और तीनों लोकोंका प्रधान था। जब कि दूसरा केवल नलकूबर नगरका राजा था। एकके चरण-कमल कूर्मकी तरह उन्नत थे जब कि दूसरेके पैर रक्तकमलके रंगके थे। एकका वक्षःस्थल विस्तृत था जब कि दूसरेका सुकुमार और नवनीतकी तरह था। एकका मध्य भाग सिंहकी तरह कृश था। जबकि दूसरेका नारी-नितम्बोंकी तरह था। एकके अंग सुगठित और सुन्दर थे जब कि दूसरेका

एक्कहों साहइ थिमइ उरत्थलु । अण्णेक्कहों आलग्गु घण-थणयलु ॥७॥
एक्कहों चमरउ वाह-विसालउ । अण्णेक्कहों णं मालइ-मालउ ॥८॥
वयण-कमलु पप्फुल्लिउ एक्कहों । पुण्णिम-चन्दु स्वु अण्णेक्कहों ॥९॥
एक्कहों गो-कमकइँ विरुधरियइँ । अण्णेक्कहों बहु विब्भम-भरियइँ ॥१०॥
एक्कहों सिरु वर-कुसुमेंहिँ वासिउ । अण्णेक्कहों वर-सउरु विहूसिउ ॥११॥

घत्ता

एक्कु स-कलत्तु कलिज्जइ अण्णेक अणेसें ।
अण्णेक्कु वि पुणु पच्छण्ण भारि वर-वेसें ॥१२॥

[११]

पुणु – दुग्गाइ – गाम – अवगाहें । पुणु पुष्पक्खेत्तेंहिं कुम्वर-आयें ॥१॥
णयण-कडक्खिउ कमलम-सरवरु । जा सुर-सुन्दरि-थक्किमि-सुहयरु ॥२॥
जा कप्पूरिम पडु-प्पडिउ । जा भरि-करिरिंहि ण डोहिंवि सक्किउ ॥३॥
जा सुर-सयण-सहासेंहिं मण्डिउ । जा कामिणि-यण-थाडेंहिं चड्डिउ ॥४॥
तहिँ वेठएँ परें सय-अलल्लिउ । कमलम-वयण-कमलु पप्फुल्लिउ ॥५॥
कम्प मणोहर – दीहर – भमरउ । वर रामउ-कम्पु कमराभउ ॥६॥
दसम-परिमल भमर-महाबलु । वय मयरन्दउ कण्णावरलु ॥७॥
कोमल – कुडम्मुक – परिचुम्बिउ । कुडिल-वाल-णवाल करम्बिउ ॥८॥

घत्ता

कमलल-सरवरु इह सुरवइ-महाविम-थाणें ।
त मुह-पउड कलिज्जइ कुम्वर-राएँ ॥९॥

[१२]

जं मुह-कमलु दिट्ठु आढुलिउ । वाणि-णिउ लक्खण पवालिउ ॥१॥
'ह परमाइ थाइ भुक्खालिय । भायणु भु भाइ सु-वलयं पिय ॥२॥

शरीर त्रिवलिसे तरंगित था। एकका वक्षस्थल विकट था और दूसरेका यौवन और स्तनभारसे सहित था। एककी भुजाएँ विशाल थीं तो दूसरेकी मालतीमालाकी तरह सुकोमल। एकका मुखकमल खिला हुआ था जबकि दूसरेका पूर्ण चन्द्रके समान सुन्दर था। एकके नेत्रकमल विस्तृत हुए थे जबकि दूसरेके नेत्र विभ्रम और विलाससे भर हुए थे। एकका सिर उत्तम फूलोंसे सुवासित था तो दूसरेका सिर सुन्दर मुकुटसे अलंकृत। सभी लोगोंने समझ लिया कि एक लक्षणयुक्त लक्ष्मण है और दूसरी नरवेशमें छिपी हुई नारी ॥ १-६ ॥

[११] दानवरूपी तुण प्रहोंके भी यह लक्ष्मणको पानेकी आशासे नलकूबर नरेश कल्याणमालाने देवबाला रूपी नलिनियों के लिए घूमकर लक्ष्मणरूपी सरोवरको बार-बार तीखे कटाक्षोंसे देखा। वह लक्ष्मणरूपी सरोवर कस्तूरीके पंकसे भरा था शत्रु-रूपी हाथी उसे विलोड़ित करनेमें असमर्थ थे। हजारों दयतुल्य स्वगुणरूपी पक्षियोंसे मंडित और जो स्त्रियोंके स्तनरूपी चक्रपर चढ़ चुका था उस वैसे लक्ष्मणरूपी सरोवरमें प्रस्वेदरूपी जलसे उच्छलित लक्ष्मणका मुख-कमल खिला हुआ था। सुन्दर कंठ ही उसकी लम्बी मृणाल थी। सुन्दर रोमांच-समूह, काँटे दाँत, पराग। अधर पखुड़ियाँ और कान पत्ते थे। वह नेत्ररूपी भ्रमरोंसे चुंबित टेढ़-मेढ़े बालोंके शैवालसे विच्छित हो रहा था। नलकूबर नरेशने लक्ष्मणरूपी सरोवरके उस मुखकमलको देखकर समझ लिया कि वह भूखकी महाहिम वायसे आहत है ॥ १-६ ॥

[१२] उसका मुखकमल नापा देखकर बालिखिल्यकी लड़की कल्याणमालाने कहा—"हे भुवनाधिप नरनाथ! भोजन कर लीजिए। यह भोजन सुश्रीकी तरह, सगुड़ (मधुर ?? और

स-गुणु स-कोमलु सरसु स-वण्णउ । महुरु सुअन्धु स-मह सु-पसण्णउ ॥३॥
तं मुऍप्पिणु पउम-णिवासहो । पच्छएँ कि पि कवणु संसासहुँ ॥४॥
त तिहुवणि पउम्मिउ अभावणु । भमर चउदस-वयण-कमलवसणु ॥५॥
'तहु वो दीसइ कवणु एक्कउ । पवर पउम-राउ सहुत्तउ ॥६॥
णावहोँ सिरउँ मूऍ दसु-दसउ । कवणइ सासिसाहु अभसारउँ ॥७॥

घत्ता

कमलायरु-जल्लोंहि वहु आणिउ चलिउ स-कण्ठउ ।
कमलिणि-विहूसिउ णं चल-पइसु सवणुन्तउ ॥८॥

[१५]

गुमुगुमन्तु रुञ्जोइ महमाउ । तक्खर गिरि-कन्दरहोँ विणिग्गउ ॥१॥
सेव पसाउ गलिय पच्चग्गसु । ठेला-मुणल-विउल- कुम्भत्थलु ॥२॥
णिच्चावलि-अलिउल परिमालिउ । किंकिणि गेला मालामालिउ ॥३॥
विलिय वाय सिसाप मणहरु । घोर-पवण्ण-वाउ-कम्पिय कर ॥४॥
मणुअर — कप्परुक्खसुमुणन्तु । गुलगुलन्तु मेह परिकमन्तु ॥५॥
सर सिचार कमलु महाघइ । तिस-भुमवएँ वारन्तु चिलकइ ॥६॥
णाणिहिँ वेसम्मँ रेणु णिसुअउ । णिम्भर-वरमक्खेम णिसुअउ ॥ ॥
चालइ घर पणियारि-विहूसिउ । तं पेक्खेंवि अम्मउ उवसिउ ॥८॥

घत्ता

मणुअल्लणहोँ उत्तिण्णु असेसु वि राय-पहु (?) ।
मेह णिसम्भहोँ णं णिवडिउ गइ-ताणयाहु ॥९॥

[१६]

हरि कडाक्खमाण दणु-दप्पोंहि । पडिय वे वि चउरण्णहोँ चवम्पेहि ॥१॥
'अच्छहुँ ताव वेव अक-धीकइँ । पच्छएँ मोप्पणु भुञ्जहुँ कीलइँ ॥२॥

गुड़), सलवण (सुन्दरता और नमक) सरस (रस, जल), सइच्छ (इच्छा और इक्षु) से सहित है तथा मधुर, सुरभित, घृतमय और सुपथ्य है। पहले आप यह प्रिय भोजन ग्रहण कर लें, फिर बादमें समापन करना।" यह सुनकर, देवबालाओंके कटाक्षोंसे दग्ध गय लक्ष्मणने कहा "यह जो सामने आप बड़े-बड़े पत्तों और डालोंसे आच्छन्न बड़ा पेड़ देख रही हैं उसके विशाल तलमें हमारे श्रेष्ठ स्वामी हैं।' लक्ष्मणके वचन सुनकर उसने अपना सेनाको पुकार लिया और कंतके साथ ऐसा लगा पड़ी मानो हथिनीसे विभूषित वन गजेन्द्र ही मलहना हुआ जा रहा हो ॥ १-६ ॥

[१३] इसतम गरजता हुआ रामरूपी महागज, उस विशाल वृक्षकी गिरि-कन्दरासे निकल आया। वह तुषार ही उसका विपुल कुंभस्थल था। पुंसावली रूपी भ्रमरमालासे वह व्याप्त हो रहा था। करधनीकी घंटियोंसे संकुल हो रहा था। विशाल बाणों रूपी दाँतोंसे वह भयंकर था। स्थूल और लम्ब बाहु ही उसकी विशाल सूँड़ थी। वह धनुषरूपी आलानस्तंभके उन्मूलनमें समर्थ, और रुष्ट दुष्ट शत्रु रूपी महावतके लिए प्रतिकूल था। ऐसा वह महामस्त राम-महागज रामरूपी सीकर छोड़ रहा था, विहंगोंसे वह भूख-प्याससे व्याकुल हो रहा था। अपनी ही छायाके विरुद्ध आपात करने वाला वह केवल जिन-वचनरूपी अंकुशसे रोका जा सकता था। जानकी रूपी हथिनीसे वह विभूषित था। उसे देखकर लोग हर्षित हो उठे ॥ १-८ ॥

तब राम राजसमूह भी मधानसे उतर पड़ा। मानो संध्य नितम्बसे नक्षत्र समूह ही टूट पड़ा हो ॥ ६ ॥

[१४] गायन-सहायक लक्ष्मण और कल्याणमालाके दोनों ही रामके चरणोंमें गिर पड़े। "पहले देव, जल-क्रीड़ा हो ले तब बादमें

आज्ञापूर्वक भोजन करें।[1] यह कहकर उन्होंने तूर्य बजा दिया, जिससे तुम्बर, प्रमय और वृत्ति भी आहूत हो उठे। सेनासहित वे सरोवर रूपी महाआकाशमें घुस गये। भ्रमर ही मानो उसमें घूमते हुए ग्रहमंडल थे। वह धवल कमलके नक्षत्रोंसे विभूषित, मीन-मकर आदिक राशियोंसे युक्त उछलती हुई मछलियोंकी चपल बिजली से शोभित, और नानाविध विहगरूपी मेघोंसे व्याप्त था। कुवलय-दल जिसमें अंधकारके समूहकी भाँति था। उसके फेनके समूह ही वर्षाकी बौछारें थीं, जलतरंगें इन्द्रधनुषकी भाँति मालूम हो रही थीं और सेना तारामंडलके समान फैली हुई थी। उस सरोवर रूपी नभस्तलमें स्त्रियोंसहित, राम और लक्ष्मण दोनों ऐसे मालूम होते थे मानो रोहिणी और रमाके साथ चंद्र और सूर्य हों ॥१-६॥

[१५] उस सरोवरके जलमें वे तैरने लगे। उसमें सोनेके पत्र पड़े रहे थे जो ऐसे लगते थे मानो रत्नविन्दु रत्नोंसे निर्मित देवविमान ही स्वर्गलोकसे गिर पड़े हैं। उनमें एक भी पत्र ऐसा नहीं था जिसमें पत्र न लगा हो, और पत्र भी ऐसा नहीं था जिसमें एक मिथुन (युगल) न पड़ा हो। मिथुन भी ऐसा नहीं था जिसमें स्नेह न पड़ रहा हो और स्नेह भी ऐसा नहीं था जिसमें सुरति न हो। उस सरोवरमें युवक-युवतियोंका समूह इच्छा-पूर्वक जलक्रीड़ामें रत होकर स्नान कर रहा था। कोई अंजुलिमें पानी उछालता, कोई स्तनोंपर अपना हाथ दिखा रहा था। स्त्रियाँ होकर मुड़कर अभिनव गीतों सुरति भरे वचनों विविध नाद लय और अंगों करांगुलियों ??? नाना भंगिमाभाव आभरणपूर्ण रागपूर्ण अद्भुतताकी दिखलानेवाली लक्ष्मण-सहित पुरुष पुरुषकी तरह जलक्रीड़ा (आनन्द ले रहे थे ?)। उनमें सागर नत्र और भगवान दिखाई दे रहे थे। मलयन (लक्ष्मण और छत्रन सहित) मानो पद जलक्रीड़ा पुष्कर पुरुषकी तरह था ॥ १-६ ॥

[१६] 'जय जय' शब्द पूर्वक लोगोंने क्षणमें स्नान किया, फिर राम और लक्ष्मण बाहर निकले। इसी बीचमें मुखमें समय, नलकूबर नगरका राजा कल्याणमालाने हाथोंकी अंजली बाँधकर नमस्कार किया और उनका शरीर पोंछा। बादमें अपने भवनमें ले जाकर सोनेके आसन-पीठपर उन्हें बैठाया और खूब भोजन परसा। वह, शुक्लपक्षकी तरह इच्छित और सौम्य था। रामकी तरह षड्विभूषित था। सूरके समान बाणसे अखण्ड सुरतिके समान सरस और सविम्मण (आर्द्र और कढी सहित) था, व्याकरणकी तरह वह व्यञ्जनों (व्यञ्जनवर्ण और पकवान) से शामिल था। उन्होंने इच्छाभर भोजन किया मानो अगाध अनशनसे ही पारणा की हो। फिर उसने विशेष करके दिव्यसर्वांग वस्त्र दिये। वे वस्त्र, मानो सुकवि कृत शास्त्रके समान सालंकार थे ॥१-६॥

[१७] जैसे समुद्रका अपनी ही बहुल लहरोंको धारण करता है, वैसे ही उन्होंने वे दिव्य सर्वांग वस्त्र पहन लिये। जिन-वचनोंकी तरह अत्यन्त दुर्लभ इस वनकी तरह विशालय (जलसारिणी और कपड़ा) वाले सभाभवनकी तरह दीर्घच्छेद (सीमा और छेद) वाले, उद्यानकी तरह फल शाखा (और पत्तियों) से सहित कवि वरके काव्यपदोंकी तरह दोषरहित, धारणोंके वचनोंकी तरह हलके, कामिनीके मुख-कमलकी तरह सुन्दर, जिनधर्मके श्रेष्ठ फलकी तरह भारी किन्नरोंके जाड़की तरह अच्छी तरह मथित व्याकरण की तरह अत्यन्त परिपूर्ण थे। इतनेमें इन्द्रके वज्रकी तरह क्षीण मध्यभाग वाले, नलकूबर नगरके श्रेष्ठ उस कुमारने अपना कवच उतार दिया। मानो सांपने अपनी केंचुली ही उतार दी हो या मानो सुरजनोंके मन और नेत्रोंको आनंद देनेवाले, त्रिभुवननाथ जिनेन्द्रने मोक्षके लिए संसारका त्याग कर दिया हो ॥१-६॥

[१८] एकान्त भवनमें उस कन्याने जब अपने आपको प्रकट किया तब रामने परितोषके साथ पूछा "बताइये, आप नरवेशमें क्यों रहती थीं"। यह सुनकर गलितनेत्र वह, गद्गदवाणीमें बोली, "विन्ध्याचलका रुद्रभूति नामक दुर्जेय राजा है। उसने मेरे पिता नलकूबर नगरके राजा वालिखिल्यको बंदी बना लिया है। इसी कारण मैं नरवेशमें रह रही हूँ कि कोई मुझे पहचान न ले। यह सुनते ही लक्ष्मण आमिष-लोभी सिंहकी भाँति क्रुद्ध हो उठा। मत्सरसे भरकर, आरक्तनेत्र कपिसाधर, क्रूर वह बोला, "यदि मैं उस रुद्रभूतिको समर-प्रांगणमें नहीं मार सका तो सीता सहित रामकी जय नहीं बोलूँगा ॥ १-९ ॥

[१९] अभयदान और आश्वासन पाकर कल्याणमालाने नरवेश हमेशाके लिए त्याग दिया। सूरज डूब चुका था। लोग अपने-अपने घर चले गये। निशारूपी निशाचरी चारों ओर दौड़ पड़ी। धरती आकाश सब कुछ उसने लील लिया। मह नक्षत्र उसके सबे और दुर्गमके दाँत थे समुद्र जीभ, पर्वत भयंकर दाढ़, मेघ नेत्र और चन्द्रमा उस निशा-निशाचरीका तिलक था। सांध्यकी अरुणिमासे वह ऐसी उद्दीप्त हो रही थी मानो वह सूर्य राव !!! को त्रिभुवनके मुख कमलके लिए दिखाकर लीलकर सो गई हो। इसी बीच महाबली वे अपनी तैयारीकर और तालपत्रपर अपना नाम अंकितकर, सीता देवीके साथ, बिना किसी रथ अश्व के चल दिये। सवेरे निशाका अन्त करनेवाले सूर्यका उदय हुआ। वह मानो यही खोजता हुआ आ रहा था कि क्या वे लोग चले गये ॥ १-९ ॥

[२०] नलकूबरका राजा—कल्याणमालान सवेरे उठकर उस तालपत्र-लेखको पढ़ा और जब उसमें त्रिविक्रम अतुल प्रतापी, दुष

ताम विओएहिँ अतुल पयावइँ । सुरवर-भवण विणिम्मिय-णामइँ ॥१॥
दुसम दण्डारण्ण णाणामइँ । दिट्ठइँ कण्हम-रामइँ जामइँ ॥२॥
जहिं महाणमाळ सुमहागम । णिवडिय वंछि व वर-पक्खारय ॥३॥
दुक्खु दुक्खु आसासिय जावेंहिं । हाहाकारु पमेल्लिउ तावेंहिं ॥४॥
'हा हा राम राम जग-सुन्दर । लक्खण लक्खणलक्खण सुहंकर ॥५॥
हा हा सीएँ सीएँ कप्पन्तम्मि । तिहि मि जणहुँ पुणु वि ण पसत्तम्मि ॥६॥
एम पलाव करन्ति ण थक्कइ । सव्वें आसासइ ससइ सव्वें कन्दइ ॥७॥

घत्ता

एम्व सव्व जामइ चउदिसु कोवणेंहिं किसारेंहिं ।
एम्व सव्वें पडइ सिर-कमलु स इ मु व तारेंहिं ॥८॥

●

२७ सत्तवीसमो संधि

तो सायर-वज्जावत्त-धर सुर-डामर असुर-विणासयर ।
वणवासहो राहव रणें भमिय णं मत्त महागय विन्झ-वय ॥

[१]

तावन्तरें अम्मय दिट्ठु गिरि । गिरि जय-मय अवगाणन्त करि ॥१॥
करि मयर कराइय रहस-वस । रहवस पडन्ति णं वम्म-भड ॥२॥
भड भीम भिसाएं घोर भय । भय भीय समुट्ठिय पाहरय ॥३॥
हय हिंसिय गज्जिय मत्त गय । गयवर अवयरिय विसइ मय ॥४॥
मय तुरउ भमन्तिय वरइ मडु । महुयर भमन्ति णिसम्मन्ति तहु ॥५॥
तहों पाइय गन्धव पवइ गय । गय भरिय-सरन्तउ दुट्ठ-मय ॥६॥

लोकमें विख्यात, दुष्ट दानव-राजोंको वशमें करनेवाले राम-लक्ष्मण को नहीं देखा तो उसी क्षण वह पवनाहत कदली वृक्षकी भाँति मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। बड़ी कठिनतासे जैसे-तैसे उसे जब चेतना आई तो उसने हाहाकार मचाना शुरू कर दिया, "हे राम! हे जगत्सुन्दर राम, लाखों लक्षणोंसे अलंकृत हे लक्ष्मण! हे सीता! मैं ऊपर देखती हूँ, पर तीनोंमेंसे एकको भी नहीं देख पाती।" इस प्रकार प्रलाप करती हुई वह, एक पल भी विश्राम नहीं ले पा रही थी। एक क्षणमें उच्छ्वास लेती और फिर उन्हें पुकारने लगती। क्षण-क्षणमें वह चारों ओर देखती अपना बड़ी बड़ी आँखोंसे। (और उन्हें न पाकर) अपने ही हाथों अपना शिर-कमल धुनने लगती ॥१-६॥

•

सत्ताईसवीं संधि

समुद्रावर्त और वज्रावर्त धनुष धारण करनेवाले, असुर संहारक, रणमें अजेय, राम और लक्ष्मण, महागजकी भाँति विन्ध्याचलकी ओर गये।

[१] मार्गमें उन्हें जनोंके मन और नेत्रोंको आनन्द देनेवाली नर्मदा नदी मिली। हाथी और मगरोंसे आहत उसके पानी तट ऐसे लगते थे मानो तड़तड़ करके धावक पाठ ही पढ़ रही हो। उस आघातकी ध्वनिसे अत्यधिक भय उत्पन्न हो रहा था। चकोर उड़कर वहाँसे भाग रहे थे। अब हंस रह थे और गज चिंघाड़ भर रहे थे। उत्तम गजोंसे बढ़िया मदजल झर रहा था। कस्तूरी मिश्रित मधुजल बह रहा था। भ्रमर उसका पान करनेके लिए गुञ्जन करते हुए उड़ रहे थे। गन्धर्व देवता दौड़ रहे थे। जनकतनया (सीता) की अंजलियाँ भरी हुई थीं। वैसे सुन्दर

रँभा रहे थे। भ्रमर कमलकोशोंके परागमें घुस रहे थे। केशर जिनेश्वरकी तरह शोभित हो रही थी ॥१-८॥

तब राम लक्ष्मण और सीतादेवीको लेकर उसके जलमें घुसे। रेवाने भी, माना शासन देवीकी भाँति उपकार करनेके लिए उन्हें उस पार कर दिया (तार दिया) ॥९॥

[२] (गौतम गणधरने कहा) हे राजन् (श्रेणिक) थोड़ी दूर के अनन्तर रामको पृथ्वीका सौन्दर्य विन्ध्याचल पर्वत दीख पड़ा। उस पर्वतराजके निकट ही ईरप्पभ, शशिप्रभ, कृष्णप्रभ, निष्प्रभ, क्षीणप्रभ पहाड़ थे। वह विन्ध्याचल सुग्रीवकी तरह, ताल (ताल वृक्ष और संगीतका ताल) से सहित सुवंशधर (उत्तम बाँस धारण करनेवाला), बैलकी तरह सश्रृंग (सींग और शिखरवाला) तथा मयालक था। कामदेवके समान महानल (दावानल व शिवके तीसरे नेत्रकी आग) से उसका शरीर जल रहा था। मयूरकी तरह सकल, और योधाकी तरह प्रजसहित (भाव और अक्षत) था। परन्तु उस ऐसे पर्वतमें अधिष्ठित होते ही रामको कुछ अपशकुन हुए। सियार फेत्कार कर रहे थे। कौवा (काँव २) बोल रहा था और भीषण भौंक चाह रहा था। उसके स्वरको सुनकर सनकमुखी सीता काँप उठीं। अपने दोनों हाथसे रामको पकड़कर बोलीं—"क्या आपने नहीं सुना जैसे कोई सोता हुआ आदमी बड़बड़ाता है, वैसे ही इसे समझिए।" यह सुनकर असुर-संहारक धनाढ्य राम सीताको अभय देते हुए बोले—"जहाँ लक्ष्मणके समान शक्तिशाली व्यक्ति साथरूपसे हमारे साथ है, तब यहाँ तुम्हें शकुन और अपशकुनकी चिन्ता कैसी ?" ॥१-९॥

[३] ठीक इस अवसरपर हर्षसे भूला हुआ रुद्रभूति शिकारके लिए निकला। वह तीन हजार हाथी, मेढ़ रथों और

इनसे घूमे अश्वोंसे सहित था। उसने सीताको देखा। उसका मुख खिले हुए सफेद कमलके समान था। उसकी आँखें बड़ी-बड़ी, मध्यभाग दुबला-पतला तथा नितम्ब और स्तन विशाल थे। सीता को देखते ही वह उन्मादक कामके मोहक, सन्दीपक और शोषक तीरोंसे पीड़ित हो उठा। वेदनासे मूर्छित उसे बड़ी कठिनाईसे चेतना आई। कभी वह हाथ मारता, कभी अङ्ग हिलाता, उच्छ्वास भरता और निश्वास छोड़ता। तब कामसे जर्जर शरीर उस राजा ने कहा—"उस वनवासिनी (सीताको) उन वन-वासियोंसे छीन-कर ले आओ" ॥१-४॥

[४] यह शब्द सुनते ही मनुष्योंका दल उछल पड़ा। मानो नये जलधर ही उमड़ आये हों। गरजते हुए महागज रूपी मेघोंसे प्रबल, तीखी तलवारोंकी बिजलीसे चपल, मारू नगाड़ोंकी गर्जनासे आकाशको गुंजाता हुआ तीरकी पंक्तियोंकी जलधारासे व्याप्त, कपिश श्वेत छत्र रूपी इन्द्रधनुषको हाथमें लिये हुए, सैकड़ों रथपीठोंसे भयावह, सफेद चमररूपी बगुलोंकी कतारसे विपुल, बजते हुए शङ्खोंके मेंढकोंसे प्रचुर तूणीर रूपी मोरके नृत्यसे गम्भीर मनुष्योंके उस दलको देखकर तपशील, निडर लक्ष्मण धनुष लेकर दौड़ा। ओठोंको चबाते हुए उसका चेहरा क्रोधसे तमतमा रहा था। उनके नेत्र मृगसमूहको तरह आरक्त थे। उनकी पीठपर तरकस बँधा हुआ था। इस प्रकार हेमंत बनकर लक्ष्मण उसके (भिल्लराजके) पास जा पहुँचे। शत्रु रूपी वर्षाके संहारक वह; हलहति (कृषक और रामके भाई) सीताभर (ठंडीहवास युक्त और सीताके लिए उत्तम) जनमनको कम्पित कर बनवाले, बाणरूपी पवनसे युक्त थे ॥१-४॥

[५] रणमें पहुँचते ही धनुषकी टंकार की। उसकी ध्वनिसे पवनका प्रचण्ड वेग उठा। उस वेगसे आहत मेघ गरज उठे। उनके गर्जनसे वज्र गिरने लगे। वज्रपातसे पर्वतोंकी चोटियाँ उखड़ने लगीं। उनके उखड़नेसे कम्पमान धरती थरथराने लगी। उसकी थरथराहटसे सप विषकी ज्वाला उगलने लगे। उनकी उगली हुई आग समुद्र तक जा पहुँची। वहाँ तक पहुँची हुई आगकी चिनगारियोंसे सीप और शंखोंके सम्पुट जल उठे। मोती चकमक करके जल उठे। समुद्रका जल कलकलाने लगा। किनारोंके अन्दर हस-हस करके धसने लगा। इस प्रकार विश्वका अन्तराल दहल उठा। उस धनुषके कठोर शब्दने शत्रुका अहङ्कार और प्रताप चूर-चूर कर दिया। भयभीत मेघ पाया अस्त-व्यस्त हो उठे। गज, अश्व, ध्वज चमर सब लोट-पोट हो गये। धनुषकी टंकारकी हवासे आहत होकर शत्रुरूपी महावृक्ष मानो सौ-सौ खण्डोंमें खण्डित हो उठा ॥१-६॥

[६] तब मिथ्याचल नरेश रुद्रभूतिने अपने मन्त्रियोंसे कहा "आखिर तीनों लोकोंमें इस तरहका भय क्यों हो रहा है? क्या मेरु पर्वतके शिखरके शत-शत खण्ड हो गये हैं? क्या इन्द्रने अपना नगाड़ा बजवा दिया है? क्या प्रलयके महामेघ गरज उठे हैं? या आकाश-मार्गमें तड़तड़ बिजली चमक रही है या पहाड़पर वज्र टूट पड़ा है, या यमका मित्र काल अट्टहास कर रहा है या गम्भीराकार समुद्र हँस उठा है? या किसीने इन्द्रके इन्द्रत्वका अतिक्रमण कर दिया है, या फिर विनाशक राहुने ही सम्पूर्ण संसारको निगल लिया है। क्या भुवनतल पाताल लोकमें चला गया है। या कि ब्रह्माण्ड ही फूट गया है। या आकाशतल ही फट गया है। क्या प्रलयपवन ही अपने स्थानसे

चल पड़ा है, या कि समुद्रसहित समूची धरती ही चलायमान हो गई है? या विमान दहाड़ रहे हैं या समुद्र गरज रहा है? आखिर यह किसके शब्दसे सारा संसार थर्रा उठा है? बताओ यह क्या है? मुझे बड़ा विस्मय हो रहा है" ॥१-७॥

[७] राजाका यह कहते हुए सुनकर, सुमुक्ति नामके मन्त्रीने पुलकसे भरकर कहा—"सुनिये मैं बताता हूँ, क्यों तीनों लोकोंमें इतना भय उत्पन्न हो रहा है। न तो मेरुपर्वतके सौ टुकड़े हुए हैं और न इन्द्रका नगाड़ा ही बजा है। न प्रलयकालके मेघ गरजे हैं और न आकाशमार्गमें बिजली गरजी है। न पहाड़पर वज्रपात हुआ है और न यमका मित्र काल ही हँसा है। न तो प्रलयाकार समुद्र हँसा है और न इन्द्रका इन्द्रत्व ही अतिक्रान्त हुआ है। न तो क्षयके राक्षसने संसारको निगला है और न ब्रह्माण्ड या गगन तल ही फूटा है, न भयमारुत ही अपने स्थानसे चलित हुआ है। न तो वज्रका आघात हो सकता है और न समुद्र सहित धरती ही चलती है। न तो दिग्गज दहाड़ा और न समुद्र ही गरजा। प्रत्युत यह धनुर्धारी लक्ष्मणकी हुंकार है। वह सीता और रामके साथ हैं और अपने गुणोंसे समूची धरतीको उन्होंने धवल कर दिया है। वह शुक्लपक्षकी तरह जनमनके प्रिय सुन्दर लगते हैं ॥१-९ ॥

[८] असुरोंका पराभव करनेवाले बलभद्र और नारायणके जो चिह्न हमने सुने हैं, वे सब इन, स्वर्ग तकमें प्रसिद्ध वनवासियोंमें मिलते हैं। उनमेंसे एक शशिकी तरह गौर वर्ण है और दूसरा इन्दीवर या मयकी तरह स्याम वर्ण है। एकके चरण मानो धरतीके मानदण्ड हैं, और दूसरेके दुर्दम शत्रुओंके संहारक। एक का शरीर मध्यमें कृश है, और दूसरेका शरीर कमलोंसे अंकित है।

एकका वक्षस्थल शोभासे सहित है दूसरेका वक्षस्थल सीताको अनुगृहीत करनेवाला है। एकका भीषण आयुध है हल, और दूसरेका अतुल बल धनुष है। एकका मुख शशि और कुन्दकी तरह उज्ज्वल है और दूसरेका मुख नव घनकी तरह श्यामल।" यह वचन सुनकर रुद्रभूतिका मद उतर गया और निरुत्तर होकर बिना गयके ही चल पड़ा। जाकर वह रामके चरणोंमें वैसे ही गिर पड़ा जैसे अभिषेकके समय इन्द्र जिनेन्द्रके चरणोंमें गिर पड़ता है ॥१–६॥

[६] यद्यपि रुद्रभूति रामके चरणोंमें नत था तो भी लक्ष्मण क्रोधसे तमतमा रहा था। वह कठि या यमकी तरह "मारो मारो" चिल्लाता हाथ धुनता धरती रौंदता हुआ, भयङ्कर-नेत्र, शत्रुके लिए प्रचण्ड पृथ्वीका मानदण्ड, लक्ष्मण बोला, "देव, शत्रुको छोड़ दीजिए। इसे मारकर मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी करूँगा।" यह सुनकर अतुलबल बलभद्र रामने कहा, 'सुनो लक्ष्मण, जो शरण आकर अपने चरणोंमें पड़ा हो उसे मारकर तुम्हें क्या यश प्राप्त होगा" ॥१–९॥

[१०] यह कहकर रामने लक्ष्मण को उसी प्रकार रोक दिया जिस तरह महावत उत्तम गजको रोक देता है। या माना उन्होंने समुद्रको पुनः मर्यादित कर दिया हो। परन्तु फिर भी रोषसे प्रदीप्त लक्ष्मण बोला "रे शठ क्षुद्र पिशुन, तेरा सिर केवल इसलिए बच सका क्योंकि तू रामके चरणोंमें नत है। अच्छा अब तुम बालिखिल्यको तत्काल मुक्त कर दो। नहीं तो तुम्हें मैं किसी भी तरह जीवित नहीं छोड़ सकता।" यह सुनकर बालिखिल्य का रुद्रभूतिने ऐसे छोड़ दिया माना जिनने संसारको छोड़ दिया हो या राहुने चन्द्रको, गरुड़ने साँपको छोड़ दिया हो। बालिखिल्य

भी रुद्रभूतिसे उसी प्रकार मुक्त हो गया जिस प्रकार सज्जन दुर्जनसे, गज आलान-स्तम्भसे, और भव्य जीव सांसारिक दुःखसे मुक्त हो जाता है। इस प्रकार रुद्रभूति, राम लक्ष्मण और वालिखिल्य चारों मिलकर एक हो गये, उनके साथ सीतादेवी उसी ज्ञान पद्धती भी मानो चारों समुद्रोंसे वेष्टित धरती ही हो ॥१-६॥

[११] रुद्रभूति और वालिखिल्य, एक दूसरेके प्रति स्नेहकी बुद्धि रखकर श्रीरामके चरणोंमें नत हो गये। ठीक उसी तरह जिस प्रकार नमि और विनमि ऋषभ जिनके चरणोंमें नत हुए थे। तब अपने हाथों उन्हें उठाते हुए रामने, उन्हें समुद्रकी तरह अपनी मर्यादामें स्थापित किया। उन दोनोंको रामने राजा भरतकी प्रजा मनाकर अपने-अपने घर भेज दिया। फिर उन तीनोंने पर्वतराज विन्ध्याचलको उसी प्रकार पार किया जिस प्रकार भव्यजीव भव-दुःख-सागरको पार करते हैं। या किन्नर मेरु-शिखरको। या सुरवर देवताओंको पार करते हैं। अविलम्ब वे तीनों ताप्ती नदीके तटपर जा पहुँचे। प्यास (लगनेपर) वे उसका पानी पीने लगे। सूर्यसे संतप्त वह पानी दुःखसे पीड़ित कुटुम्बकी तरह उष्ण था। सूर्य किरणोंसे मिश्रित उस जलका यद्यपि उन लोगोंने हाथमें लेकर पिया परन्तु वह उन्हें उसी प्रकार अच्छा नहीं लगा जिस प्रकार अज्ञानीको जिनवरके वचन अच्छे नहीं लगते ॥१-६॥

[१२] ताप्ती नदी पारकर वे तीनों विन्ध्याचलसे दूर निकल आये। तब वैदेही सीताने गजकुम्भपाळे विशालबाहु रामसे पूछा, "कहीं हिमशीतल और शशि की तरह स्वच्छ जलकी खोज कीजिए जो प्यासका दुःख मिटानेवाला हो? मुझे जल पानेकी इच्छा इस प्रकार हो रही है जिस प्रकार भव्यजन जिन वचनकी, निर्धन व्यक्ति धनकी, और अन्धा व्यक्ति नेत्रोंकी इच्छा करता है।" तब

फलभद्र रामने सीतादेवीको धीरज बँधाते हुए कहा—"देवी ! धैय रक्खो ! कातर मुख न बनो।" इस प्रकार विहार करते और असह् प्यासे भाग पग बढ़ाते हुए रामको थोड़ी दूर चलनेपर वृषभनाँसे घिरा हुआ अरुण नामका एक गाँव मिला। वह गाँव उन्हें ऐसा लगा मानो वह वयवन्थ (चमड़ा और बगीचा) से विभूषित-हो कल्पवृक्षकी तरह चारों ओरसे शोभित वह नटकी भाँतिमें कुशल था। भोक्षपिपासासे व्याकुल मुनियोंकी भाँति वे सब उस भरम्य गाँवमें पहुँचे। वहाँ एक भी आदमीको न पाकर वे लोग किसी कपिल नामके ब्राह्मणके घरमें घुस पड़े ॥१-५॥

[११] द्विजवरका वह घर (वास्तवमें) जिनवरके परम स्थान मोक्षकी तरह दीख पड़ा। निर्वाणकी तरह एकदम निरपेक्ष भक्षररहित तथा केवल (केवलज्ञानसे रहित और पास पड़ोससे रहित) निर्मान (अहंकार और गौरवसे शून्य) निरञ्जन (पाप और मञ्जिरसे रहित) निर्मल (कम और धूलिसे हीन) निमक्ष (भक्ति और भोजनसे हीन) था। उस घरमें घुसकर शीघ्रतासे पानी पीकर वे लोग उसी प्रकार लिपटे जैसे सिंहकी चपेटसे मस्त गज गुफामें पहुँचकर निवृत्ति प्राप्त करता है। वे उस घरमें क्षणभर ही ठहरे थे कि दुर्मन कपिल (महोदय) वहाँ आ धमके। आगकी तरह भभकता हुआ वह बोला 'मरो मरो, निकलो निकलो। शनिकी तरह अत्यन्त कठोर, भयभीषण और विषाक्त सर्पकी तरह वह ब्राह्मण अत्यन्त खिन्न मनका हो रहा था। उसने कहा, "क्या तुमने (आज) काल या कृतान्तको अपना मित्र चुना है या सिंहकी भयावहके अग्निम बालोंको पकड़ा है। यमकी मुख-गुफासे कौन निकल सका है, तुमने (फिर) मेरे घरमें कैसे प्रवेश किया" ॥१-६॥

[१४]

तं वयणु सुणेप्पिणु महुमहणु । धाइउ समर-भर-उव्वहणु ॥१॥
णं धाइउ करि गिरि-भार-खमु । उम्मूलिउ रिउवरु जेम तरु ॥२॥
उम्मामेंवि मामेंवि गयणयलें । किर घिवइ पडीवउ धरणियलें ॥३॥
करें धरिउ ताव हलपहरणेंण । 'मुएँ मुएँ मा हणहि अकारणेंण ॥४॥
तिय-बाल-गोव पसु-तवसि-किस । छ वि परिहरु मेल्लेंवि माण-किय' ॥५॥
तं णिसुणेंवि रिउवरु तक्खणेंण । णं मुक्कु सकम्मु समप्पणेंण ॥६॥
ओसरिउ वीरु पञ्चामुहउ । अइस-विलक्खु णं मत्त-गउ ॥७॥
पुणु पियएँ विसूरइ वणें वणें । 'सय-वारउ-खणु वरि हूउ रणें ॥८॥

घत्ता

वरि पहरिउ वरि किउ तववरणु वरि विसु हालाहलु वरि मरणु ।
वरि अच्छिउ गम्मिसु गुहिर-वणें णवि णिविसु वि णिवसिउ अवुहयणें' ॥९॥

[१५]

तो तिण्णि वि एम चवन्ताइँ । उम्माहउ जणहों जणन्ताइँ ॥१॥
रिउ-पच्छिम-पहरें णिग्गमयाइँ । कुञ्जर इव विउल-वणहों गयाइँ ॥२॥
णिविसेण एन्तु पइसन्ति जाव । णग्गोहु महादुमु दिट्ठु ताम ॥३॥
गुरु-गेहु करेंवि सुन्दर-सराइँ । णं विहय पढावइ अक्खराइँ ॥४॥
पुप्फ-किसलय कं-का रवन्ति । वायसि-विहङ्ग कि-का भणन्ति ॥५॥
वण-कुक्कुड कुक्कू आयरन्ति । अण्णु वि कलावि के-क्कइ चवन्ति ॥६॥
पियमाहविय को-कउ करन्ति । कं-कम बप्पीह समुल्लवन्ति ॥७॥
सो तरुवरु गुरु-गणहर-समाणु । फल-पत्त-वन्तु अक्खर-णिहाणु ॥८॥

घत्ता

पइसन्तेंहिँ असुर-विमद्दणेंहिँ सिरु णामेंवि राम-जणद्दणेंहिँ ।
परिभमेंवि दुमु वसराड-सुरेंहिँ अहिणन्दिउ मुणि व स इं मुहेंहिँ ॥१५॥

●

[१४] यह सुनते ही समरभार उठानेमें समर्थ लक्ष्मण एक-दम क्रुद्ध हो उठा और उस द्विजपर उसी प्रकार झपटा जिस प्रकार सूंड़ उठाए गज पेड़ उखाड़ने दौड़ता है। वह उसे उठाकर और आकाशमें घुमाकर पटक देता परन्तु रामने उसे शान्त करते हुए कहा, "छि छि व्यर्थ ही उसे मत मारो। नीति है कि मनुष्यको इनकी हत्या नहीं करना चाहिए। ब्राह्मण, बालक, गाय पशु, तपस्वी और स्त्री।" यह सुनकर लक्ष्मणने उस द्विजवरको कुमुदपत्रकी भाँति छोड़ दिया। अंकुशसे निरुद्ध, महागजकी भाँति वह अपना मुँह मोड़कर पीछे हट गया। तब वे अपने मनमें बार-बार यह सोचकर पछताने लगे "युद्धमें सौ-सौ खण्ड हो जाना अच्छा प्रहार करना अच्छा तपस्या करने चला जाना अच्छा विष या हलाहल पीकर मर जाना अच्छा, एकान्त वनमें चला जाना अच्छा पर मूर्खोंके बीच पलभर ठहरना भी ठीक नहीं" ॥१-९॥

[१५] यह सुनते हुए उन तीनोंने लोगोंके मान दलन करने पर दर्पहारक गाँव उसी प्रकार कूच कर दिया जिस प्रकार गज दुर्गम वनकी ओर चल देता है। तब एक विस्तीर्ण वनमें प्रवेश करते ही, उन्हें वटका एक विशाल वृक्ष दिखाई दिया। वह वट वृक्ष मानो शिक्षकका रूप धारणकर पक्षिरूपी शिष्योंको सुन्दर स्वर और व्यञ्जनके पाठ पढ़ा रहा था। कौआ कक्का कह रहे थे, चञ्चल विहग किक्की पाठ रट रहे थे। मयूर केक्काइ कह रहे थे कोकिल काक्कउ और पपीहा कंकाका उच्चारण कर रहे थे। वह महावृक्ष मानो गुरु गणधरकी भाँति फल-पत्रसहित नाना अक्षरोंका निधान था। उस महावटके निकट जाकर असुरसंहारक दशरथ पुत्र राम और लक्ष्मणने उसकी परिक्रमा की तथा माथा झुकाकर उसका अभिनन्दन किया ॥१-९॥

●

[२८. अट्ठावीसमो सन्धि]

ताव स-लक्खणु दासरहि तरुवर-मूलें परिट्ठिउ जावेंहिं ।
पसरइ सु-कइहें कव्वु जिह मेह-जालु गयणङ्गणें तावेंहिं ॥

[१]

पसरइ मेह-विन्दु गयणङ्गणें । पसरइ जेम सेण्णु समरङ्गणें ॥१॥
पसरइ जेम तिमिरु अण्णाणहों । पसरइ जेम बुद्धि बहु-जाणहों ॥२॥
पसरइ जेम पाउ पाविट्ठहों । पसरइ जेम धम्मु धम्मिट्ठहों ॥३॥
पसरइ जेम जोण्ह मयवाहहों । पसरइ जेम कित्ति जगणाहहों ॥४॥
पसरइ जेम चिन्त धण-हीणहों । पसरइ जेम कित्ति सुकुलीणहों ॥५॥
पसरइ जेम सद्दु सुर-तूरहों । पसरइ जेम रासि णहें सूरहों ॥६॥
पसरइ जेम दवग्गि वणन्तरें । पसरइ मेह-जालु तिह अम्बरें ॥७॥
तडि तडयडइ पडइ घणु गज्जइ । जाणइ रामहों सरणु पवज्जइ ॥८॥

घत्ता

अमर-महाधणु-गहिय-करु मेह-गइन्दें चडेंवि जस-लुद्धउ ।
उप्परि गिम्भ-णराहिवहों पाउस-राउ णाइँ सण्णद्धउ ॥९॥

[२]

जं पाउस-णरिन्दु गलगज्जिउ । धूली-रउ गिम्भेण विसज्जिउ ॥१॥
गम्पिणु मेह-विन्दें आलग्गउ । तडि-करवाल-पहारेंहिं भग्गउ ॥२॥
जं विवरम्मुहु चलिउ विसालउ । उट्ठिउ 'हणु' भणन्तु उण्हालउ ॥३॥
धगधगधगधगन्तु उद्धाइउ । हसहसहसहसन्तु संपाइउ ॥४॥
जलजलजलजलन्तु पचलन्तउ । जालावलि-फुलिङ्ग मेल्लन्तउ ॥५॥
धूमावलि-धयदण्डुब्भेप्पिणु । वर-वाउल्लि-खग्गु कड्ढेप्पिणु ॥६॥
झडझडझडझडन्तु पहरन्तउ । तरुवर-रिउ-भड-थड भज्जन्तउ ॥७॥
मेह-महागय-घड विहडन्तउ । जं उण्हालउ दिट्ठु भिडन्तउ ॥८॥

घत्ता

धणु अप्फालिउ पाउसेंण तडि-टङ्कार-फार दरिसन्तें ।
चोऍवि जलहर-हत्थि हड णीर-सरासणि मुक्क तुरन्तें ॥९॥

अट्ठाईसवीं संधि

राम लक्ष्मण और सीतादेवीके साथ जैसे ही उस तरुवरके नीचे बैठे वैसे ही, कुकविके काव्यकी तरह, आकाशमें मेघजाल फैलने लगा।

[१] जैसे समराङ्गणमें सेना फैलती है, अज्ञानीमें अन्धकार फैलता है, बहुज्ञानीमें बुद्धि फैलती है, पापिष्ठमें पाप फैलता है, धर्मिष्ठमें धर्म फैलता है, चन्द्रमाकी चाँदनी फैलती है, धनहीनकी चिन्ता फैलती है और जैसे सुकुलीनकी कीर्ति फैलती है, जैसे नगाड़ेका शब्द फैलता है, जैसे सूर्यकी किरणें फैलती हैं, और वनमें दावानल फैलता है वैसे ही आकाशमें मेघजाल फैलने लगा। उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो पावस राजा वर्षाकी कामनासे मेघ महागजपर बैठकर इन्द्रधनुष हाथमें लेकर, ग्रीष्म नराधिपपर चढ़ाई करनेके लिए सन्नद्ध हो रहा हो ॥१-९॥

[२] जब पावस राजाने गर्जना की तो ग्रीष्म राजाने धूलि का ढेर छोड़ा। वह जाकर मेघ-समूहसे चिपट गया। परन्तु पावस राजाने बिजलीकी तलवारोंके प्रहारसे उसे भगा दिया। जब वह धूलिरज (बवण्डर) उलटे मुँह लौट आया तो ग्रीष्मराज पुनः उठा। धकधकाता और हस हस करता हुआ वह वहाँ पहुँचकर जल उठकर भयानक हो उठा। उससे चिनगारियाँ छूटने लगीं। उसने धूमावलिके ध्वजदण्ड उठाकर मूसलकी तलवारसे नभभवन पर प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया। तरुवररूपी शत्रु-समूह भग्न होने लगे। मेघघटा विघटित हो उठी। इस प्रकार ग्रीष्मराजा पावसराजासे भिड़ गया तब पावसने बिजलीकी टंकार करके इन्द्र-धनुष पर डोरी चढ़ा ली। जलधरकी गजघटाको प्रेरित किया और बूंदों के तीरों की बौछार शुरू कर दी ॥१-६॥

[१]

जल-बाणासणि-घायहिँ घाइउ । गिम्भ-णराहिउ रणेँ विणिवाइउ ॥१॥
दद्दुर रडेँवि लग्गा णं सज्जण । णं णच्चन्ति मोर खल दुज्जण ॥२॥
णं पूरन्ति सरिउ अक्कन्दें । णं कइ किलिकिलन्ति आणन्दें ॥३॥
णं परहुय विमुक्क उग्घोसें । णं वरहिण लवन्ति परिओसें ॥४॥
णं सरवर बहु-अंसु-जलोल्लिय । णं गिरिवर हरिसेँ गज्जोल्लिय ॥५॥
णं उण्हविउ दवग्गि विओएं । णं णच्चिय महि विविह-विणोएं ॥६॥
णं अत्थमिउ दिवायरु दुक्खें । णं पइसरइ रयणि सइँ सुक्खें ॥७॥
रत्त-पत्त तरु पवणाकम्पिय । 'केण वि वहिउ गिम्भु' णं जम्पिय ॥८॥

घत्ता

तेहएँ कालेँ भयाउरएँ वेण्णि मि वासुएव-वलएव ।
तरुवर-मूलेँ स-सीय थिय जोगु लएविणु मुणिवर जेम ॥९॥

[२]

हरि-बल रुक्ख-मूलेँ थिय जावेँहिँ । गयमुहु जक्खु पराइउ तावेँहिँ ॥१॥
गउ णिय-णिवहोँ पासु वेवन्तउ । 'देव देव परित्ताहि' भणन्तउ ॥२॥
'णउ जाणहुँ किं सुरवर किं णर । किं विज्जाहर-गण किं किण्णर ॥३॥
धणुहर धीर चडावउ उब्भेँवि । सुत्त महारउ णिलउ णिरुम्भेँवि' ॥४॥
तं णिसुणेवि पवणु महाइउ । पूयणु सम्मीसिन्तु पधाइउ ॥५॥
विञ्झ-महीहर-सिहरहोँ आइउ । तक्खणेँ त उद्देसु पराइउ ॥६॥
राम णिहालिय बल्लि वि दुद्धर । सायर-वज्जावत्त-धणुद्धर ॥७॥
अवहि-पयत्तुँ पउञ्जइ जावेँहिँ । लक्खण-राम मुणिय मणेँ तावेँहिँ ॥८॥

[३] उसके पानी से आहत होकर ग्रीष्म राजा धरतीपर गिर पड़ा। उसके पतनको देखकर मेंढक सज्जनों की भाँति रोने लगे। और दुष्टजनों की तरह मयूर नाचने लगे। आक्रन्दनसे जैसे नदियाँ भर उठीं, मानो कवि आनन्दसे किलकिला उठा हो, मानो कोयल कूक उठी हो, मानो मयूर परितोषसे नाच उठा हो मानो सरोवरका जल अत्यधिक परिशोषित हो उठा हो, मानो गिरिवर हर्षसे रोमांचित हो उठा हो, मानो वियोगका दावानल नष्ट हो गया हो। मानो धरावधू विविध विनोदोंसे नाच उठी हो, मानो दुःखके अविरल सूर्यका अस्त हो गया हो। मानो सुखसे रजनी फैल गई हो। इतनेमें हिमन्त-दुखसे व्याकुल कापकपाके वृक्ष मानो इस पावसकी घोषणा कर रहे थे कि ग्रीष्मराजाका वध किसने कर दिया। उस घोर समयमें राम लक्ष्मण और सीता उस वट महावृक्षके नीचे इस प्रकार बैठे हुए थे मानो योग साधकर महामुनि ही बैठे हों ॥१-९॥

[४] इतनेमें एक यक्ष, पानीसे अतविक्षत होकर, ठिठुरता हुआ अपने राजाके पास गया और (यक्षराज से) बोला —"देव देव मैं नहीं जानता कि ये कौन हैं सुरवर हैं कि नरवर, विद्याधर हैं या कि किन्नर। दोनों ही वीर धनुष चढ़ाकर हमारे घर वटवृक्षको घेरकर सो रहे हैं।" यह सुनकर, उस यक्षका अभयदान देकर यह महाराज बोला और शीघ्र ही पवन की उस शिखर पहुँचा जहाँ वज्रावर्त और सागरावर्त धनुष लिये हुए वे दोनों (राम लक्ष्मण) बैठे हुए थे। अवधिज्ञानके प्रयोगसे उस यक्षराजने फौरन जान लिया कि ये राम और लक्ष्मण हैं। बलभद्र और

नारायण दोनोंको एक साथ देखकर, जयशील और यशलोलुप उस यक्षराजने पलभरमें एक नगरी खड़ी कर दी, जो मणि-माणिक्य और धन-धान्यसे पूरित थी ॥१-६॥

[२] लोगोंने उसका नाम ही रामपुरी रख दिया। रचना और आकार-प्रकारमें वह नगरी नारीकी तरह प्रतीत होती थी। अन्य-अन्य पथ उसके पैर थे। फूलोंके ही उसके वस्त्र और अलङ्कार थे। खाईकी तरङ्गित त्रिवलीसे वह विभूषित था। उसके गोपुर स्तनोंके अग्रभागकी तरह जान पड़ते थे। विशाल उद्यानोंके रोमोंसे पुलकित, और सैकड़ों वीर-वधूटियोंके श्रृंगारसे अंकित थी। पहाड़ और सरिताएँ मानो उस नगरीरूपी नारीकी फैली हुई भुजाएँ थीं। जल और फेनावलि उसकी चूड़ियाँ और नाभि थीं। सरोवर नेत्र थे मेघ काजल थे और इन्द्रधनुष भौंहें। मानो वह नगरीरूपी नव-वधू चन्द्रमाका तिलक लगाकर दिनकर-रूपी दर्पण में अपना देवकुल रूपी मुख देख रही थी। इस प्रकार उस यक्षने पलभरमें समूची नगरीका निर्माण कर दिया। विश्वस्त होकर, रामके पास बैठकर और अपने हाथमें बाजा लेकर बजाने लगा। इक्कीस मूर्छनाओं सात स्वर और तीन ग्रामोंका प्रदर्शन करते हुए अपने गीतमें उस यक्षराजने कहा, "हे राम, यह सब आपका ही सुप्रभाव (सुप्रभाव और सुप्रभात) है॥ १-१०॥

[३] सुप्रभात शब्द सुनते ही, रामने जो मुड़कर देखा तो उन्हें प्रासादोंसे भरा हुआ नगर दिखाई पड़ा। मानो सूर्यसे आलोकित गगनांगन हो हो। गगनांगनमें घन कुंभ अथवा चन्द्रमा, बुध तारक, गुरु और जल होता है। उस नगरमें धन घड़ा श्रमण पंडित उपाध्याय और मार्ग थे। रामने फिर घूमकर देखा तो वह उन्हें कुसुमोंसे व्याप्त महावनकी तरह लगा। वह नगर सुकविके काव्यकी

तरह पद (पद और—प्रज्ञा) से सहित तथा नरेन्द्रके चित्तकी तरह बहुत ही चित्र-विचित्र था। सेनाकी तरह रथमेखोंसे सहित, विवाहके घरकी तरह, चौक (चौमुहानी और भूमिमण्डन) से सहित था। सुरतिके समान एक चट्टाओंसे मुक्त, वज्रकी तरह अत्यधिक सुषिर, (भूसा और भूनेसे पुता हुआ) जान पड़ता था। अथवा अधिक कहनेसे क्या, संसारमें एक भी ऐसा नगर नहीं था जिसकी उससे तुलना की जा सके। हजारों भुवनोंमें विख्यात नाम रामको उस नगरको देखकर यह भ्रांति हो गई कि कहीं यह दूसरी ही अयोध्या न हो॥ १-५॥

[७] (इसके अनन्तर) यह सब आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले— अपलक नेत्र उस यक्षने प्रणामपूर्वक रामसे निवेदन किया, "आपके वनवासकी बात जानकर ही मैंने सद्भावनासे इस नगरका निर्माण किया है।" यह कहकर उसने रामको सुघोष नामकी वीणा प्रदान की तथा दूसरी मुकुट, आभरण विशेष मणि, कुंडल, कटिसूत्र और कंगन आदि चीजें दीं। तदनन्तर यक्षोंके प्रमुख उसने कहा, "मैं आपका अनुचर हूँ, और आप मेरे स्वामी।" यह इस प्रकार निवेदन कर ही रहा था कि इतनेमें उस कपिल ब्राह्मणने इस नगरको देखा। जनमन हारी, देवोंके स्वर्गके समान सुन्दर उस नगरको देखकर उसने समझा कि यह अमरावती का ही एक स्तर है। यह सब (कौतुक) देखकर वह सोचने लगा, "कहाँ वह घना जंगल और कहाँ यह सुन्दर नगरी। भय रूपी हवासे वह काँप गया। लकड़ियोंका गट्ठर फेंककर वह मूर्छित होनेको ही था कि चन्द्रमुखी नामकी यक्षिणी उसके सम्मुख आई और 'डरो मत' कहकर माताके समान उसके आगे बैठ गई॥ १-६॥

[८]

ऐ दिणयर चउदेव-पहाणा । किण्ण सुणहि रामउरि भवाणा ॥१॥
जण-मण-वल्लहु राहव-रमणउ । मत्त-गइन्दु व पगलिय-मयणउ ॥२॥
तरुण-भमर-सएहिँ ण मुच्चइ । देइ असेसु वि जं जसु रुच्चइ ॥३॥
जोवइ (?) जिणवर-धामु कयाइ । तहो करेप्पिणु पावइँ देइ ॥४॥
पुँछ व वासव-दिणएँ विसालउ । दीसइ तिहुअण-तिलय-जिणालउ ॥५॥
तहिँ जो गम्पि करइ जयकारु । पइसेँ उवरि तासु पइसारु ॥६॥
त णिसुणेप्पिणु दिणयरु धाइउ । णिविसेँ जिणवर-भवणु पराइउ ॥७॥
त चारित्तसूर मुणि वन्देवि । णिसउ करेवि अप्पाणउ णिन्देवि ॥८॥

घत्ता

पुच्छिउ मुणिवरु दिणयरेँण 'वाणइँ कवणेँ सिद्धु समत्तेँ ।
धम्मेँ कवण कम्मु फलु एउ देव महु अक्खि पयत्तेँ ॥९॥

[९]

मुणिवरु कहेँ वि धम्मु 'विउलाइँ' । किं जणेँ ण णियहि धम्मफलाइँ ॥१॥
धम्मेँ भड-थड हय गय सन्दण । पावेँ मरण-वियोग-कन्दण ॥२॥
धम्मेँ सग्गु मोक्खु सोहग्गु । पावेँ रोग्गु सोगु दोहग्गु ॥३॥
धम्मेँ रिद्धि विद्धि थिर सम्पय । पावेँ अत्थ-हीण जर विहय ॥४॥
धम्मेँ कणय-मउड-कडिसुत्ता । पावेँ णर दालिद्दें भुत्ता ॥५॥
धम्मेँ रज्जु करन्ति णिरुत्ता । पावेँ पर पेसण-संजुत्ता ॥६॥
धम्मेँ णर पल्लङ्कें सुत्ता । पावेँ तिण-पत्थारेँ णिसुत्ता ॥७॥
धम्मेँ णर देवत्तु पवत्ता । पावेँ णरय-घोरेँ संपत्ता ॥८॥

[८] वह बोली, "अरे अजान द्विजवर, चारों वेदोंमें विद्वान् होकर तुम यह नहीं जानते कि यह रामपुरी है। और इसमें जनमनके प्रिय राजा राघव हैं। मत्तगजकी तरह वह शीघ्र ही दान (मदजल, दान) देनेवाले हैं। सैकड़ों याचकजन उन्हें नहीं छोड़ रहे हैं, जिसे जो अच्छा लगता है वह उसे वही दे डालते हैं। जिनवरका नाम लेकर जो भी उनसे माँगता है उसके लिए वे अपने प्राण तक उत्सर्ग कर देते हैं। यह जो इन्द्रकी दिशामें त्रिभुवन श्रेष्ठ जिनालय देख पड़ रहा है। पहले तुम उसमें प्रवेश करो नहीं तो नगरमें प्रवेश नहीं मिल सकता।" यह सुनकर वह ब्राह्मण दौड़कर गया और एक पलमें ही उस जिनालयमें पहुँच गया। उसने वहाँ चारित्रसूर यतिकी वन्दना की। उनकी विनय करनेके बाद वह अपनी निन्दा करने लगा। फिर उस ब्राह्मणने उनसे पूछा "सम्यक्त्वके बिना दानके लिए धर्म-परिवर्तन करनेका क्या फल है। हे देव मुझे यह बताइए" ॥ १–९ ॥

[९] यह सुनकर मुनिवर बोले, "क्या तुम लोकमें धर्मोंके नाना फल नहीं देखते। धर्मसे भटसमूह, हय गज और रथ मिलते हैं। पापसे मरण वियोग और आक्रन्दन मिलता है। धर्मसे स्वर्ग भोग और सौभाग्य होता है। पापसे रोग शोक और अभाग्य। धर्मसे ऋद्धि-सिद्धि-वृद्धि श्री और सम्पदा मिलती है। पापसे मनुष्य धनहीन और दयाविहीन होता है। धर्मसे कटक, मुकुट और मणिसूत्र मिलते हैं और पापसे मनुष्य दरिद्रताका भोग करता है। धर्मसे जीव निश्चय ही राज्य करता है और पापसे दूसरोंकी सेवा करता है। धर्मसे वह उत्तम पलंगपर शयन करता है और पापसे तिनकोंकी सेजपर सोता है। धर्मसे नर देवत्व पाता है, और घोर पापसे नरकमें जाता है। धर्मसे

मनुष्य उत्तम निलयमें रमण करता है, और पापसे दुर्भाग्यपूर्ण दुख-निलयमें। धर्मसे सुन्दर शरीरकी रचना होती है, पापसे (मनुष्य) पंगु और अन्धा होता है। धर्म और पाप रूपी कल्पतरुओंके यश और अपयशसे युक्त शुभ और अशुभ दो ही फल होते हैं। इनमेंसे जो प्रिय लगे उसे ले लो" ॥१-११॥

[१०] मुनिवरके वचनोंसे पुलकित होकर उस द्विजने जिन-वर-द्वारा प्रतिपादित धर्म अंगीकार कर लिया। पाँच अणुव्रत ग्रहण कर लिये। एक पलमें ही वह अपने घर पहुँच गया। जाकर उसने अपनी पत्नीसे कहा—"आज मैंने बहुत बड़ा अचरज देखा। कहीं मैंने वन देखा और कहीं नगर। कहीं राजा और कहीं मुनि, कहीं अनेक दान मिले और कहीं मुझे जिनवचन सुननेको मिले। मानो बहरेको कान और अन्धेको नेत्र मिले हों।' यह सुनकर, पुलकित पत्नीने कहा—'शीघ्र ही वहाँ जाइए।" तदनन्तर वे दोनों वहाँके लिए चल पड़े। वे उस त्रिभुवनतिलक जिनालयमें पहुँचे और मुनिवरको प्रणामकर वहाँ बैठ गये। धर्मका श्रवणकर वे नगरमें घुसे। वहाँ उन्होंने राजा रामका दरबाररूपी आकाश देखा, उसमें सीता रूपी मन्दाकिनी (आकाशगंगा) अधिष्ठित थी। और वह मनुष्य रूपी नक्षत्रोंसे घिरा हुआ था। राम और लक्ष्मण रूपी चन्द्र और सूर्यसे वह अलंकृत था ॥१-९॥

(११) परन्तु जैसे ही राज-दरबारके मार्गमें उस द्विजवरने लक्ष्मणको देखा तो उसके प्राण उड़ गये। जिस प्रकार सिंहको देखकर हरिण या भवसंसारसे जिन, राहुसे चन्द्र, अष्टापदसे गजेन्द्र, मातृगामीसे काम, अचलवचनसे मद, इन्द्रियमद पवन यममहिषसे भयसे नष्ट हो जाता है, वैसे ही लक्ष्मणसे उस कपिल द्विजको नष्ट होते हुए देखकर, उसने उसे अभय दिया।

मण्डु धरेवि करेण करमाएँ । गम्पि विलु वम्भुवहों समाएँ ॥८॥
तुम्ह तुम्ह अप्पाणउ थोरॅवि । सयलु महण्णउ मणें थवोरॅवि ॥९॥
सुरम पाणविन्द वक-मयहों । पुणु आसीस दिण्ण वसुवहों ॥१०॥

घत्ता

'जेम समुद्दु महाजलेंण जेम जिणेसरु सुहिय-धम्में ।
चन्द-कुन्द जस-णिम्मलेंण तिह तुहुँ वड्ढु महाविय धम्में' ॥११॥

[१२]

ता एत्थन्तरें पर-बल-मद्दणु । लक्खण-सरें हसिउ जणद्दणु ॥१॥
भवणें पइट्ठ तुहारएँ जइयहुँ । पइ सम्माणेंवि पाडिय तइयहुँ ॥२॥
एत्तु कालें पुणु दिवसउ कीसा । विमउ करेवि पुणु दिण्ण असीसा ॥३॥
५ विसुमेवि भणइ वेयाणउ । अम्हहुँ को ण वि कियइ महायउ ॥४॥
जिह आएस्य जणइ सीयाएँ । एत्तु ण हरिसु विसाउ करेवउ ॥५॥
काम-पसेण कासु वि सहयउ । एत्तु ण हरिसु विसाउ करेवउ ॥६॥
अप्पु विणासियि-जग-मण-बल्लहु । अप्प-विहूणउ सुअइ वल्लहु ॥७॥
अप्पु णियइ अप्पु गुणवन्तउ । अप्प-विहूणु भमइ भमाडउ ॥८॥
अप्पु भणइ अप्पु कों सूरउ । अप्प-विहूणु दीसु णर सूरउ ॥९॥
अप्पु सइच्छिउ भुञ्जइ रज्जु । अप्प विहूणें कि पि ण कज्जु ॥१०॥

घत्ता

'साहु' भणन्तें राहवेंण दप्पणीय-मणि-कञ्चण-चन्देंहिं ।
कडय-मउड-कडिसुत्तयहिं पुज्जिउ कविसु सह सुअ-वन्देंहिं ॥११॥

अपने हाथसे उसकी अंगुली पकड़कर लक्ष्मणने उसे लाकर रामके सम्मुख डाल दिया। जैसे तैसे अपने आपको धीरज बँधा, और मनसे समस्त भयको दूर कर उस कपिल द्विजवरने शुभ शान्ति-मन्त्रोंके उच्चारण रामको *आशीर्वाद दिया—"जिस प्रकार समुद्र* महाजलसे बढ़ते हैं, जिनवर पुण्य कर्मसे बढ़ते हैं, उसी प्रकार आपका भी यश चन्द्र और कुन्द पुष्पके समान बढ़ता रहे" ॥१-११॥

[१७] तब पर-बलसंहारक लक्ष्मण कहकहा लगाकर हँस पड़ा। और बोला—"जब हम तुम्हारे घरमें घुसे थे तब तो तुमने अपहसनाके साथ निकाल दिया। और अब आप, उस द्विजवर हैं जो इस तरह विनय पूर्वक आशीर्वाद दे रहे हैं?" यह सुनकर उस ब्राह्मणने कहा "अर्थका सम्मान आदर कौन नहीं करता। सूर्य जिस प्रकार शीतकालमें आनन्द देता है उसी प्रकार क्या उष्णकालमें अच्छा नहीं लगता। समयके अधीन होकर हम (जीवन में) सब कुछ सहन करना पड़ता है। अतः इसमें हम विषाद की क्या बात है। विलासिनी स्त्रियों को अर्थ बहुत ही *प्रिय लगता है। अर्थहीन नरको व छोड़ देती हैं। (संसार में)* अर्थ ही विदग्ध है और अर्थ ही गुणवान है। अर्थ विहीन भीख माँगता हुआ फिरता है। अर्थ ही कामदेव है अर्थ ही जगमें शुभ है, अर्थहीन नर दीन और दुर्भग है। अर्थसे ही इच्छित राजभोग मिलता है। अर्थहीनसे कुछ काम काज नहीं होता। तब रामने साधु-साधु कहकर उस ब्राह्मण देवता को इन्द्रनील मणियाँ और सुवर्णसे बने कटक मुकुट और कटिसूत्र देकर अपने हाथसे स्वयं उसका खूब आदर-सत्कार किया ॥१-११॥

●

[२९ एगुणतीसमो संधि]

सुरडमर-रिउ डमरकर कोसल्ल-भर सइँ सीयएँ चल्लिय महवणु ।
बल-णारायण बे वि जण परितुट्ठ-मण वीसन्त-पमय संपाइय ॥

[१]

पइसु तिविहि मि तेहिँ आवासिउ । दिणयर-बिम्बु व दोस-विवज्जिउ ॥१॥
पवर होइ जइ कम्मु पयत्तु । हउ तुरयत्तु कम्मु सुरयत्तु ॥२॥

णाउ सुरवेसु मणु चिहुरेसु ॥३॥
वउ दर हु मज्झिमु कम्मेसु ॥४॥
कडु वेसेसु पण्डु कसेसु ॥५॥
(णु)मर मारमेसु पहर दिवसेसु ॥६॥
वम्मु धम्मेसु चिन्त कम्मेसु ॥७॥
सुर सम्मेसु सीलु रम्मेसु ॥८॥
कम्मु गयत्तु मइ कम्मेसु ॥९॥
दर वसणेसु वेसु गमणेसु ॥१० ॥
णउ कम्मेसु माणु सुम्मेसु ॥११॥

अहवइ किचिउ मिय वण्णिज्जइ । जइ पर त वि तासु उवमिज्जइ ॥१२॥

घत्ता

तहोँ णयरहोँ अब्भन्तरेण कोसल्लन्तरेण उववणु णामेण पसत्थउ ।
णाइँ कुमारहोँ पच्चाहोँ पइसन्तयहोँ थिउ णव-कुसुमञ्जलि-हत्थउ ॥१३॥

[२]

तहिँ उववणेँ पिय हरि-बल जावेँहिँ । सव्वेँ वेमु विसज्जिउ तावेँहिँ ॥१॥
अमाए विणु मरेण जणिम्महोँ । मज्झिउ व चक्केंहिँ पढिउ जिणिन्दहोँ ॥२॥
कइउ महिहरेण सइँ हत्थेँ । विस्सभर-धम्मु व सुणिवर-सत्थेँ ॥३॥
बारि-णिवन्धहोँ सुरुउ गइन्दु व । थिउ णहु तहिँ णवजेँ चन्दु व ॥४॥

उनतीसवीं सन्धि

देवों के लिए भयंकर शत्रुओंके संहारक और धनुधारी राम और लक्ष्मण घूमते हुए जीवंत नगर पहुँचे।

[१] उन दोनोंने उस नगरको सूर्यबिम्ब की तरह दोष (अवगुण और रात) से रहित देखा। उस नगरमें कम्पन केवल पताकाओं में था, हस (भाव) अधरोंमें, द्वन्द्व सुरति में, आघात मृदंगमें भंग केशोंमें, जड़ता नूपुरोंमें मलिनता चन्द्रमें खल खलोंमें, *दण्ड छत्रोंमें, बहुल कर ग्रहण करनेका अवसर* (कर=टैक्स और दान) मधुर विनयमें धन दानमें चिन्ता ध्यानमें सुर (स्वर और राग) संगीतमें, सिंह अरण्यमें फणमद गजोंमें, मद काव्योंमें, भय भवोंमें पत्र (पात्र और मूल) आकाशमें घन (अग्र, मेघ) जंगलमें, और ध्यान युक्त नरोंमें था। इनके लिए दूसरी जगह नहीं थी। (गौतम गणधरने कहा) अथवा हे राजन् (श्रेणिक) उस नगर का वर्णन करना सम्भव नहीं, उस नगरकी उपमा केवल उसी नगरसे दी जा सकती है। उस नगरके उत्तरमें प्रशस्त नामक एक उपवन था वह ऐसा लगता था मानो आते और प्रवेश करते हुए कुमारोंके स्वागतमें हाथमें अंजलि लेकर खड़ा हो ॥१-१८॥

[२] जब राम और लक्ष्मण उस उपवन में ठहरे, तभी उस नगरके राजाके पास भरतका सन्देश पहुँचा। पत्रवाहकने वह पत्र राजाके सम्मुख वैसे ही डाल दिया जैसे जीव जिनेन्द्रके परमार्थ भाग पर जाते हैं और जैसे मुनिवर जिनधर्मका ग्रहण करते हैं वैसे ही राजाने उस पत्रको अपने हाथ में ले लिया। वह पत्र उस ऐसा दीख पड़ा मानो वारी बन्धनसे मुक्त हाथी ही हो। उसके ऊपर आकाशमें दूज चन्द्रमा की तरह अंक पड़ रहे थे। उस

[४] अपनी भर्त्सना सुनकर मेघ आकाशमें ही नष्ट हो गया। तब फिर वनमाला अपने मनमें सोचने लगी,—"क्या मैं जलती आगमें कूद पड़ूँ या समुद्र या वनमें घुस जाऊँ, क्या विषपान कर लूँ या साँपको चाँप दूँ ? क्या अपनेको करपत्रसे काट लूँ ? क्या हाथीके दाँतसे छाती फाड़ लूँ या करमालसे विकलित छेद दूँ ? क्या दिशा लाँघ जाऊँ या सन्यास ग्रहण कर लूँ ? किससे कहूँ और किसकी शरण जाऊँ ? अथवा इस सबसे क्या काम बनेगा ? तरुवरकी डालसे टंगकर मैं ही अपने प्राण छोड़े देती हूँ।" मनमें यह सोचकर, और अशोक वनके लिए जानेकी घोषणा करके वह तुरन्त घरसे चल पड़ी। उसके हाथमें गन्ध दीप धूप और पूजाके फूल थे। वह चमकती-दमकती, लीला पूर्वक चली जा रही थी। चारों ओर सैनिकोंसे घिरी हुई वह धन्या अपने मनमें यह सोचती हुई, अपने घरसे निकल पड़ी कि देखूँ, दोनों (अशोक वृक्ष और लक्ष्मण) मेंसे कौन मुझे आलिंगन देता है। सूर्यास्त होते-होते वह वनमें प्रविष्ट हुई। वह मानो यह जान रही थी कि लक्ष्मण कहाँ हैं ॥१–६॥

[५] वनमालाको लिए अशोक वृक्ष ऐसा लगा मानो सद्भावोंसे अंचित जिनेन्द्र ही हों। फिर उसने अशोक वृक्षसे निवेदन करते हुए कहा,—"इस जन्ममें और दूसरे जन्ममें, मेरा दूसरा नहीं है। सुलक्षण लक्ष्मण ही जन्म-जन्मान्तरमें बार-बार मेरा पति हो।" इस प्रकार आत्म-निवेदन करते हुए उसे रातके दो प्रहर बीत गये। सारे सैनिक नींदके झोंकोंमें ऊँघकर ऐसे लोट पोट होने लग मानो मोह जालमें फँस गये हों। तब वनमाला बाहर निकली। हार डोर और नूपुरसे वह स्खलित हो रही थी। प्रियके विरहाश्रुओंसे भरी हुई वह, विपन्न हरिणीकी भाँति उद्भ्रान्त मन हो रही थी। एक ही पलमें वह वटके पेड़ पर चढ़ गई।

वैसे ही जैसे कोई चपल रमणी, अपने जारके निकट जा आती है ? लक्ष्मणको चाहने वाली वनमालाकी वह वटके पेड़पर ऐसी मालूम हो रही थी मानो घनमें बिजली चमक रही हो या, वनमें किलकती, कौतुक करती हुई साक्षात् भयंकर यक्षिणी हो ॥१-६॥

[६] (आत्मघातके पूर्व) उसने अपना विलाप ऐसे शुरू किया, मानो वनगज-शिशु हो चीख रहा हो। उसने कहा, "वन स्थित गंगा नदी, यमुना सरस्वती, ग्रह, भूत, पिशाच व्यंतर, वनयक्ष राक्षस, अजगर, गज, बाघ, सिंह, सबर, रत्नाकर, गिरिवर, जलचर गण, गंधर्व, विद्याधर सुर, सिद्ध, महोरग, किन्नर, कार्तिकेय कुवर पुरन्दर, बुध बृहस्पति शुक्र, शनिश्चर, चन्द्र, सूर्य, ज्योतिष, बैताल दैत्य, राक्षस अग्नि वरुण और प्रभंजन ! मेरे वचनोंको सुनो, तुम्हें यदि कहीं लक्ष्मण मिलें तो यह कह देना कि विशालबाहु राजा महीधरकी वनमाला नामकी लड़की, निडर हो, अपने पति लक्ष्मणके ध्यानमें रोती कलपती, झूल, गिरकर मर गई" ॥१-६॥

[७] यह कह कर विशालनयना वनमालाने कपड़का फन्दा बना लिया स्वयं नहीं करती हुई वह मानो विवाह-लालाका प्रदर्शन कर रही थी। मानो द्विजवरने कन्यादानके लिए उसे पुकारा हो और कुमार (वर) ने हाथ फैला दिया हो। वह, गलेमें फन्दा लगा ही रही थी कि इतनेमें कुमार लक्ष्मणने गलसे पकड़कर उसका आलिंगन कर लिया और यह कहा "डरो मत ! मैं ही वह सुलक्षण लक्ष्मण हूँ ! दशरथका सुमित्रासे उत्पन्न पुत्र मैं, रामके साथ वनवासके लिए आया हूँ।' यह सुनकर आश्चर्यचकित हो वनमाला अपने मनमें सोचने लगी, "अरे लक्ष्मण कहाँ वह तो उपवनमें है।' इतनेमें, रामने पुकारा,—"आ लक्ष्मण इधर आओ,

कहाँ चले गये ?" । यह सुनकर महीधर राजाकी पुत्री, पुलकित बाहु वनमालाने नटकी तरह अपना मन नचाते हुए कहा —"आज मेरे सभी मनोरथ सफल हो गये कि जो मुझे लक्ष्मण जैसा पति मिल गया ॥१-६॥

[८] तदनन्तर, भुवनानन्ददायक रामचन्द्रने लक्ष्मणको वनमालाके साथ आते हुए देखा। वह ऐसा लग रहा था मानो दीपशिखा समके साथ हो या बिजली मेघके या हथिनीमें आसक्त गजराज हो। अपनी पत्नी वनमालासहित वह रामके चरणोंमें गिर पड़ा। रामने तब उससे पूछा मेरे प्रिय लक्ष्मण, सुन्दर सुन्दर यह कन्यारत्न तुमने कहाँ प्राप्त किया।" (यह सुनकर) कुमारने उत्तर दिया—"क्या आप महीधर राजाकी गुणवती पुत्री विद्याधरी वनमालाको नहीं जानते' । वह मुझे पहले ही निर्दिष्ट कर दी गई थी। वही मुझे (अचानक) इस वनमें दीख गई।" इस प्रकार कुमार लक्ष्मणके पूरी कहानी बताते-बताते ही (पहले ही) रात्रि समाप्त हो गई और निर्मल प्रभात हो गया। उधर (उपवनमें) कन्याको न पाकर पराक्रमयुक्त रक्षक सैनिक विरुद्ध हो उठे। वे कहने लगे कन्याका हरण किसने किया। तब रणमें दुर्दम सैनिकोंने चपल अरव रथ और गजोंसे युक्त क्षेत्रम दोनों (राम लक्ष्मण) को इस प्रकार घेर लिया जिस प्रकार हरिण सिंहको घेर लें ॥१-६॥

[९] कलकल करती हुई सेना उठी और यह चिल्लाने लगी "जिसने कन्या ली हो उसे मारो' यह सुनकर लक्ष्मण प्रदीप्त हो उठा। मानो घी पड़नेसे आग ही भड़क उठी हो। सेना असंख्य थी और लक्ष्मण अकेला। तब भी वह तिनकेके समान समझकर वह भिड़ गया। वह ठहरता, पकड़ता मुड़ता पड़ उसाड़

उप्पज्जइ मिलइ पावइ दुक्खु । महि कम्मइ ममइ मासइ रुक्खु ॥५॥
अवगाहइ सायइ भरइ थोह । उप्पज्जइ कोहइ गयवराह ॥६॥
सिसिरागए पाउसे मुहल-णइ । अहुभाविय सिसिरागमे पवइ ॥७॥
पासन्ति के वि वे समरें जुज्झ । कायर-णर-मण-पइरणइँ जुज्झ ॥८॥

घत्ता

गम्पिणु कहिउ महीहरहों 'पञ्चहों णरहों आवट्टइ सेण्णु भुय-दण्डहुँ ।
जिम णासहि जिम भिडु समरें भिडिँ एक्कु करें वणमालए कइय वक्किसलएँ ॥९॥

[१]

तं वयणु सुणेप्पिणु परहरन्तु । पब्भणिय पाइक विप्फुरन्तु ॥१॥
आरुट्ठु महारउ विण्हु सत्तु । सम्मउ कुमरु वण-कण्णि-कन्तु ॥२॥
तो दुमय दुवार दुण्णिवार । दस दस' सयन्त णियाय कुमार ॥३॥
वणमाल कुसुम कण्णासमाल । वणमाल सुमाल सुवण्णमाल ॥४॥
गोपाल-पाल हुय अट्ठ भाइ । सहुँ राम पव गइ कुमय भाइँ ॥५॥
एत्थन्तरें तेण बहु-मच्छरेण । हक्कारिउ लक्खणु महिहरेण ॥६॥
'अम्हु बहु समरङ्गणें धरि तुम्हु । णिय-णामु गोत्तु महु कहहु तुम्हु ॥७॥
त णिसुणेंवि वप्पिउ कण्हि-णाहु । 'कुल-णामहों अवसरु कवणु एहु ॥८॥

घत्ता

पहरु पहरु जं पइँ गुणिउ किण्ण वि सुणिउ अप्पु भाइ भरहेसरु रामु ।
रहुकुल-णन्दणु कण्ठि-हरु तउ जामाइउ णरवइ महु लक्खणु णामु' ॥९॥

[११]

कुलु णामु कहिउ जं सिरिहरेण । पत्तु ओवेंवि सरिरें महीहरेण ॥१॥

कर शत्रुओंका दलन करता, उखाड़ता, भिड़ता, घोड़ोंको गिराता धरतीको चाँपता, चक्रको घुमाता, अवगाहन करता, सहता, योधाओंको पकड़ता, गजसमूहको दलकर लोट पोट करता हुआ (दौड़ पड़ा)। आधातसे उसने सुभट-समूहको गिरा दिया। पीड़ित होकर वे पराङ्मुख हो गये। कितने ही मारे गये, और कितने ही कायर योधा चूककर, उसके शर-प्रहारसे बच गये। तब किसीने राजा महीधरसे आकर कहा,—"एक नरने अपने भुजदण्डसे समूची सेनाका रोक लिया है, जिस तरह हो युद्धमें भिड़कर उसे नष्ट कीजिये। मान्यसे वह एक हाथमें बलपूर्वक वनमालाको लिये है'॥ १-६॥

[१०] यह सुनकर राजा महीधर क्रोधसे थर्रा उठा। वह तमतमाता हुआ दौड़ा। महारथ पर आरूढ़ होकर उसने शंख बजवा दिया इस प्रकार क्रुद्ध और विजय-लक्ष्मीका आकांक्षी वह सन्नद्ध हो गया। तब उसके दुर्जेय दुर्वार कुमार भी "मारो-मारो' कहते हुए निकल पड़े। इस तरह, वनमाल कुसुम कल्याणमाल श्रवमाल कुसुमाल सुवर्णमाल गोपाल और पाल ये आठ भाई तथा राजा कुल मिलाकर नौ ही लोग क्रुद्ध हो उठे। ईर्ष्यासे भरकर महीधरने लक्ष्मणको ललकारते हुए कहा—"मुड़ो मुड़ो, युद्धमें ठहरो, बताओ तुम्हारा नाम गोत्र क्या है।" इसपर लक्ष्मणने उत्तर दिया, "कुल नाम पूछनेका यह कौन अवसर है। प्रहार करो जो तुमने सोचा है। कुल भी समझ सकोगे हमें। जिसका राम सा महान् भाई है। मैं रघुकुलका पुत्र लक्ष्मीका धारक और तुम्हारा मन्य करनेवाला हूँ। मेरा नाम लक्ष्मण है"॥ १-६॥

[११] लक्ष्मणके अपने कुल गोत्रका नाम बताते ही महीधरने धनुष-बाण फेंककर स्नेहोचित अपने विशाल बाहुओंमें (गजशुण्डकी

तरह प्रचण्ड) (भरकर) उसे गलेसे लगा लिया। उसने अग्निकी साक्षी (मानकर) अपनी कन्या वनमाला अपराजितकुमार लक्ष्मणको अर्पित कर दी। बादमें राजा महीधर एक रथपर बैठ गया। वनमाला और लक्ष्मण एक रथ पर और सीता और राम दूसरे पर। चलकर जब उन्होंने नगरमें प्रवेश किया तो पट पटह शंख तथा तरह-तरहके वाद्य बज उठे। कुब्ज ब्राह्मण नाच रहे थे। कलाल शब्द और मंगल की उत्साह और मंगलपूर्ण ध्वनि हो रही थी। वे लोग लीला पूर्वक दरबारमें जा बैठे ॥१-८॥

वनमालाके साथ वेदीपर जाता हुआ सगुण मन लक्ष्मण ऐसा मालूम हो रहा था मानो जन्मके अवसर पर लोगोंने गाते बजाते हुए, जिनको विभूषित कर दिया हो ॥९॥

•

तीसवीं संधि

आनन्द और उत्साहसे परिपूर्ण इसी अवसरपर निर्दय नन्दावर्तके राजा अनन्तवीर्यने, दर्पसे भरकर जय पानेके लिए राजा भरतके ऊपर चढ़ाई कर दी।

[१] उसने भरतके पास जो अपना दूत भेजा था वह अपमानित होकर वापस आ गया। शीघ्र उसने नन्दावर्तके राजा अनन्तवीर्यसे कहा— "हे देव मेरी कैसी दुर्गति की, मेरा सिर मुड़वा दिया किसी तरह मारा भर नहीं है। वह भरत राजा युद्धमें संधि नहीं चाहता। आप जो जाना चाहें मनमें सोच लें। एक ओर आपका वैरी आया है वह सेनाके साथ विन्ध्याचल तक पहुँच गया है। यहाँ नरपति पार्थिवेन्द्र सिंहोदर

और वज्रकण्ठ भी मिल गये हैं। रुद्रभूति श्रीवत्सधर मरुभूति सुमुक्ति विमुक्तिकर आदि दूसरे राजा भी आकर उससे मिल गये हैं। अब समय आ गया है, देखिएगा ही युद्ध होगा।" यह सुनकर अनन्तवीर्य एकदम क्षुब्ध हो गया, और उसने प्रतिज्ञा की "यदि मैं कल तक भरतका हनन न करूँ तो सुरश्रेष्ठ भट्टारक भरतके चरण-कमलकी जय न बोलूँ" ॥१-९॥

[२] इस प्रकार अनन्तवीर्य जब प्रतिज्ञा कर रहा था तभी अशेष सेना उससे आ मिली। तब उसने तुरन्त ही एक लेखपत्र लिखवाकर विश्वविख्यात राजा महीधरके पास भी भेजा। वाहकने वह पत्र लाकर महीधरके सम्मुख डाल दिया। वह लेखपत्र चोर की तरह बँधा हुआ व्याधकी तरह वाचिक (चित्रकबरे मृगवाम और चितकबरे अक्षरों) से सहित उत्तम साधुके समान सुन्दर पत्र वाला (पात्रता और पत्ता) गंगाके प्रवाह की भाँति (नाम और नावोंसे सहित) नामाछन्द' था। उस लेख पत्रकी पढ़ते ही, बहुतसे राजा अनन्तवीर्यके यहाँ पहुँचने लगे। शल्य, विशल्य सिंहविक्रांत दुर्जय भज विजय, नरशार्दूल, विपुलगाज गजमुख, रुद्रवत्स महिवत्स महाध्वज, चन्दन, चन्द्रोदर गरुड़ध्वज केशरी मारिचण्ड यमघण्ट कोंकण, मलय आनर्त गुजर गंग वग, मंगाल, पद्दवई? पारियात्र, पांचाल, सैंधव कामरूप गंभीर, वर्जित, पारसीक, परतीर मरु, कर्णाटक लाट, जालंधर टक्क, आभीर, कीरखस, बर्बर, आदि (के) राजा, उनमेंसे प्रमुख थे। और भी जो दूसरे एकाकी प्रमुख राजा थे उन्हें कौन गिना सकता है। तब श्यामवर्ण राजा महीधर सहसा उन्मन हो उठा। मानो उसके सिरपर वज्र गिर पड़ा हो। उसके सिरपर यह चिन्ता सवार

थी कि मैं अब स्वामीके सम्मान भारको कैसे निभाऊँ और राजा भरतकी किस प्रकार रक्षा करूँ ॥१-१३॥

[२] राजा महीधरको मन ही मन चिन्तित देखकर राम एकान्तमें आकर बैठ गये। एक ही क्षणमें उन्होंने महीधरके आठों कुमारोंको बुलवा लिया। लक्ष्मण सहित सीता देवी भी आ गईं। तब मन्त्रियों और मन्त्रणाको छोड़कर रामने कहा—"अपने आपको प्रकट मत करो। गज अश्व और महागजको छोड़कर, भी भाट और गायकका वेष बनाकर शत्रुके दरबारमें घुस पड़ा और नाचते हुए अनन्तवीर्यको पकड़ लो।" यह वचन सुनकर सन्तुष्ट मन उन लोगोंने स्त्रीका वेष बना लिया और गहने पहन लिये। तब रामने सीता देवीसे कहा "शायद तुमसे यह रूप धारण करते बने या न बने, इसलिए तुम तब तक इसी नगरमें रहना हम युद्ध में जाकर लड़ेंगे।" परन्तु पुलकितबाहु सीतादेवी कुछ विरक्ती देखकर उनके साथ हो ली। वह बोली—"हे नरनाथ! तुम शीघ्र नहीं लौटोगे क्या पता कहीं तुम युद्ध रूपी समुद्रमें चमकदमक वाली कीर्ति-वधूसे विवाह न कर लो'॥१-६॥

[४] तब महनीय वे लोग नृत्य करते हुए चले और पल भरमें ही नन्द्यावर्त नगरमें पहुँच गये। उन्हें (पहले) एक जिनालय दीख पड़ा। तब उसके सम्मुख गा बजा और नाचकर उन लोगोंने उसी मन्दिरकी परिक्रमा की। फिर सीतादेवीको वहीं छोड़ राम लक्ष्मण आदिने नगरमें प्रवेश किया। उस नगर रूप सरोवरमें मधुर वचकुल रूपी कमलाकर थे। रथ श्रेष्ठ अश्व और गजरूपी जलचर भरे थे। नन्दन वन ही उसके तटवर्ती घने लतागृह थे। सुन्दर विलासिनीरूपी कमलिनियोंसे वह नगर सरोवर शोभित था। और विटरूपी भ्रमरोंसे चुम्बित। उसमें जनरूपी निर्मल जल

भरा था, और जो कुशलचोरोंकी वाणीरूपी कीचड़से पंकिल था। कामिनियोंकी चञ्चल मनरूपी मछलियाँ उसमें उथल-पुथल कर रही थीं। उत्तम नररूपी हंस उस नगर-सरोवरका कभी भी त्याग नहीं करते थे। इस प्रकारके उस अजेय नगररूपी सरोवरमें विमानोंकी भाँति क्रीड़ा करते हुए उन लोगोंने प्रवेश किया ॥१-८॥

क्रीडा वेष बनाकर और आभरण पहनकर, हँसी मजाक करते जब वे चले तो (पहले) उन्हें प्रतिहार मिला। उनमेंसे एकने कहा—"हम राजा भरतके चारण हैं अपने राजासे इस तरह कहो कि जिससे हमें (दरबार) में प्रवेश मिल जाय' ॥ ९ ॥

[५] यह वचन सुनकर प्रतिहार गया। और उसने अजेय राजा प्रतिहारसे निवेदन किया, "प्रभु! कुछ गानेबजानेवाले आये हैं। वैसे तो वे मनुष्य रूपमें हैं, पर मैं नहीं कह सकता कि वे गंधर्व हैं या किन्नर या विद्याधर। जन-मन-मोहक उनके स्वर असमन्त सुन्दर मुनियोंके मनको भी क्षुब्ध करनेवाले हैं।" यह सुनकर राजाने कहा,—"शीघ्र भीतर ले आओ।" तब दुष्मन प्रतिहार दौड़ा-दौड़ा बाहर गया और पुलकित होकर उनसे बोला, "चलिए भीतर।" उसके वचन सुनकर वे लोग भीतर गये। मानो वर्षा दिशापथ एक ही में मिल गये हों। वे उस दरबार रूपी वनमें प्रविष्ट हुए। वह शत्रुरूपी वृक्षोंसे सघन, सिंहासनरूपी पहाड़ोंसे मण्डित और प्रौढ़ विलासिनीरूपी लताओंसे प्रचुर अनन्तवीर्य रूपी वेलफलसे युक्त और अतिवीररूपी सिंहोंसे चित्रित था ॥ १-८ ॥

[६] उस शत्रुके दरबाररूपी वनमें वे लोग सिंहकी भाँति घुसे। नन्द्यावर्तका राजा अनन्तवीर्य उन्हें ऐसा दीख पड़ा, मानो तारोंसे सहित चन्द्र हो। उसके आगे उन्होंने अपना प्रदर्शन

प्रारम्भ कर दिया। उनका वह प्रयाण, अच्छी स्त्रीकी तरह सवस्त्र (अंगवस्त्र और रामसे सहित) और सलक्षण [लक्षण और लक्ष्मण सहित] था। सुरविके समान संचरणमें प्रबल, काव्यकी तरह छन्द और शब्दोंमें गंभीर अरण्यकी तरह [वंश और ताल] से भरपूर, युवतीकी तरह [राजा और प्रस्वेद, तथा कुंकुम और प्रस्वेद] से युक्त था। राम जैसे-जैसे धनुष खींचते, भोला लोग वैसे-वैसे मुक्त होते। रामके बाणोंसे क्षुब्ध होकर मृगसमूहकी तरह, वे गानसे मुग्ध हो उठे। तब अनन्तवीर्यने रामको यह गाते हुए सुना, "सिंहके साथ क्रीड़ा कौन कर सकता है, जब तक वह (भरत) रणमुखमें नहीं जलता, आयुध नहीं उठाता और दूसरे राजाओंके साथ तुम्हें जीवित नहीं पकड़ता तब तक हे मूर्ख, सब छल प्रपंच छोड़कर और अपनी सेना हटाकर भरत राजाके चरणोंमें गिर जा" ॥१-६॥

[७] रामचन्द्र जरा भी नहीं काँपे, बार-बार वह यही दुहरा रहे थे, "अरे राजन्, भरतको राजा मानकर उसकी आज्ञा माननेमें तुम्हारा क्या पराभव है ? वह भरत शत्रुरूपी सेनासमुद्रके लिए मंदराचलकी तरह है। जो शत्रु सेनारूपी चन्द्रके लिए राहुके समान है, जो शत्रुसेनारूपी आकाशमें चन्द्रमाकी भाँति चमकता है, जो शत्रुरूपी गजराजके लिए सिंह है, शत्रुबलरूपी निशाके लिए सूर्य है, शत्रुबलरूपी वनके लिए दावानल है। परबलरूपी अश्वके लिए महिषके समान है। परबलरूपी सर्पके लिए जो गरुड़ है। परबलरूपी मेघसमूहके लिए पवनका आधार है। परबलरूपी पवनसमूहके लिए पर्वत है। और पर बलरूपी पर्वतसमूहके लिए वज्रकी तरह है।' यह सुनकर अनन्त

वीर्य अपने मनमें भड़क उठा। अपने ओंठ चबाने लगा। उसने लाल-लाल आँखोंसे ऐसे देखा मानो जगसंहारक कृतान्तने ही देखा हो ॥१-६॥

[८] भयभीषण और भमपसे क्रुद्ध कलेवर वह मेघकी भाँति गरज उठा। वह अपनी तलवार हाथमें ले या न ले, इतनेमें रामने उछलकर (आकाशमें) उसे पकड़ लिया। उसके सिरपर पैर रखकर चोरकी तरह उसे बाँध लिया मानो हाथीकी पाली बनाकर उसको बाँध लिया हो। तब शत्रुसेना-संहारक राम अनन्तवीर्यको बाँधकर जिन-मन्दिर पहुँचे। लक्ष्मणने इतनेमें कहा, "जो इधर आयगा निश्चय ही मैं उसे मारूँगा।" यह सुनकर शत्रु लोग आपसमें बात करने लगे "क्या स्त्रियोंमें इतना पराक्रम हो सकता है"। इस तरहकी बातें उनमें हो ही रही थी कि शेष जन भी उस जिन-मन्दिरमें, ऐसे आ पहुँचे मानो पहले जिन्हें पुरन्दरने पकड़ लिया था परन्तु बादमें मारे डरके छोड़ दिया हो। इसी बीच अनन्तवीर्यका अन्तःपुर मुखविलेता रामके पास आया। विमन, गजगामी वह प्रचुर हार डोरसे स्खलित हो रहा था। वह यह याचना कर रहा था कि "पतिकी भीख दो"॥१-६॥

[९] स्त्रीजनकी इस याचनापर दशरथपुत्र रामने कहा, 'यदि यह भरतका अनुचर बन जाय तो यह आज ही अपना राज्य पा सकता है।" यह सुनकर परलोकभीरु अनन्तवीर्य बोला, "अरे जो जिन सदैव अपने चरणोंमें डाले रहेगा उसे छोड़कर मैं और किसका अनुचर बनूँ। प्रत्युत मैं तपश्चरण कर, भरतको ही बलपूर्वक अपने पैरों पर झुकाऊँगा।' यह सुनकर रामने कहा 'सचमुच तुम्हारा अनन्तवीर्य नाम सच है। उन्होंने यही दुह राया, "साधु साधु"। बादमें उसके पुत्र सहस्रबाहुको मुक्त इस

समस्त राज्य दे दिया। इस प्रकार भरतका एक और मनुधर मह गया। राजुको इस प्रकार मुक्त कर, वे सब अपने नगर वापस आ गये। उधर राजा महीधरने अपनी सारी आस्था जिनमें केन्द्रितकर दीक्षाके लिए कूच कर दिया ॥१-६॥

[१०] पुरपरमेश्वर महीधरके साथ और भी दूसरे राजा दीक्षाके लिए प्रस्तुत हो गये। शार्दूल, विपुल, वीरभद्र, मुनिभद्र, सुभद्र सर्वभद्र, गरुडध्वज, मकरध्वज, प्रचण्ड, चन्दन, चन्द्रोदर, मारिचण्ड, जयघण्ट, महाध्वज, चन्द्र, सूर, जय, विजय अजय, दुर्जेय और कुमरन भी उसी पथपर आकर दीक्षा ग्रहण कर ली वहाँ आचार्य अयनन्दी दीक्षा दान कर रहे थे। अपनी पाँच मुट्ठियोंसे केश लोंचकर सवारियोंके साथ आभूषणोंका त्याग कर, अनासंग वे सब मुनिसंघके साथ हो लिये। वे मुनिजन मानरहित होकर भी जीवोंके मानके साथ थे। और निर्ग्रन्थ होकर भी ग्रन्थोंके प्रशस्त जानकार थे। उन सबमें प्रत्येक ऋषि मुख्य थे। जो भवरूपी अन्धकारके लिए चन्द्र' तपःसूर और महाव्रतोंका धारण करनेवाले थे। वे छह, आठ और बारह तक उपवास करके अपने आपको खपाने लगे ॥१-६॥

[११] जब राजा अनन्तवीर्य तप साधने चला गया तो भरत राजा भी वहाँ उसकी वन्दना-भक्तिके लिए गया। उसने तेजके पिंड भट्टारक अनन्तवीर्यको देखा। वह, माहरूपी महीधरके लिए प्रचण्डवज्र क्रोधाग्निके लिए मेघसमूह, काम-महा-घनके लिए प्रलय वात दर्पगजके लिए सिंह, मानसूर्यके लिए गरुड थे। मनमें अपनी निंदा करते हुए भरत वन्दनापूर्वक बोला "साधु! धीर वीर अनन्तवीर्य तुमने सचमुच अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। लो तुमने आखिर मुझे अपने चरणोंमें नत कर ही लिया। और

त्रिभुवनसे अपनी सेवा करा ली।" इस प्रकार उसकी प्रशंसा कर, राजा भरत सेनासहित अपने नगरको चला गया। राम और लक्ष्मणने भी जयमंगल और तूर्यध्वनिके साथ, धनकनसे भरपूर नन्द्यावर्तपुर नगरमें प्रवेश किया। तब लक्ष्मणकी सुलक्षणा पत्नीने अपनी भुजारूपी डालोंसे उसका आलिङ्गन किया ॥१-६॥

•

इकतीसवीं संधि

कुछ समयके उपरान्त राम और लक्ष्मण धन-धान्यसे सम्पन्न पृथ्वीमें सुप्रसिद्ध, अनेकि मन और नेत्रोंको आनन्ददायक, उस नगरको छोड़कर वनवासके लिए कूच कर गये।

[१] इस अवसरपर लक्ष्मण वनमालासे मिलनेके लिए एकदम आतुर हो उठे। क्योंकि वे दोनों—मुनिकुलकी तरह परमागम लुब्ध (परमशास्त्र और दूसरेके आगमके लोभी) थे। एक दूसरे पर आसक्त वे दोनों एक दूसरे पर अनुरक्त हो उठे। वैसे ही जैसे सूर्य और चन्द्र अनुरक्त हो उठते हैं। वे दोनों अभिनव वर-वधू चन्द्र और उसकी प्रभाकी तरह, सुन्दर चित्त थे। रक्तकमलका चुम्बन करनेवाले भ्रमरकी तरह वे दोनों रसलुब्ध हो रहे थे। उस समय कुमार लक्ष्मणने विशालनयना वनमालासे कहा, हे हंस-गामिनी गजलीला विलासिनी चन्द्रमुखी स्वयं अपना नाम प्रसिद्ध करनेवाली वनमाले! मैं किष्किंध नगरको स्वयं बनाकर दक्षिण देशके लिए जा रहा हूँ। पूजन यशसे पर प्राप्त करनेवाले कुमार लक्ष्मणके यह कहने पर (पूछने पर) विमना गलितनव म्लानमुख वह अपना मुख नीचा करके रह गई ॥१-८॥

[२]

कवण सहसुप्पत्ति समाइँ । महि पव्वालिय अंसु-पवाहें ॥१॥
'पच्छिउ विरयउ माणुस-लोउ । जं घर जम्मणु मरणु विओउ' ॥२॥
पीसिय कलुणेण पुणन्तरें । 'रामहों मिलउ कोवि भवन्तरें ॥३॥
कहि मि दिवेंहिं पत्तीवउ भावमि । सयल वि-सायर महि भुंजावमि ॥४॥
अह पुणु कहवि मुक-सम्मों पावउ । हउँ ण होमि सामिणिएँ सावउ ॥५॥
अण्णु मि रयणिहें जो सुअन्तउ । मस-भणिउ मज्जु मम्मु पियन्तउ ॥६॥
जीव वहन्तउ अलिउ चवन्तउ । पर-धणें पर-कलत्तें अणुरत्तउ ॥७॥
जा पर भासिएँहि वयणेंहिं भुत्तउ । हउँ पावेण तेण संजुत्तउ ॥८॥

घत्ता

जइ एम वि जाणमि वयणु ण माणमि तो जिणवर-महारहहों ।
णव-कमल-सुकोमल पय-पह-उज्जल छित पाय मइँ रामहों' ॥९॥

[३]

कमसाउ णिपचेंवि भमासाय । गय कलयल राम सुपुरुषमाण ॥१॥
गोलन्तरें मच्छुप्पल देन्ति । गोला-णइ दिट्ठ पसुम्मइन्ति ॥२॥
सुसुमर घोर घुरुघुरन्ति । करि मयरोहिय दुरुदुरन्ति ॥३॥
डिण्डीर-सण्ड-मण्डलिय देन्ति । दद्दुरय रडिय दुरुदुरन्ति ॥४॥
कल्लोलुल्लोलेहिं उव्वहन्ति । उग्घोस घोस घवघवघवन्ति ॥५॥
पडिखलण-वलण-खलखलखलन्ति । खलखलिय खलक्क-झडक्क देन्ति ॥६॥
ससि-सङ्ख-कुन्द धवलोज्झरेण । कारण्डुड्डाविय डम्बरेण ॥७॥

घत्ता

फेणावलि-वङ्किय वलयालङ्किय णं महि कुलवहुअऍ तणिय ।
जलणिहि-भत्तारहों मोत्तिय-हारहों बाह पसारिय दाहिणिय ॥८॥

[२] काजल मिश्रित अश्रुधारासे वह धरतीको प्लावित करने लगी। तब लक्ष्मणने धीरज बँधाते हुए कहा—"संसारमें यही बात तो बुरी है कि यह बुढ़ापा, जन्म मरण और वियोग होता है। किसी अन्य वनमें रामका आश्रय बनाकर मैं कुछ ही दिनोंमें वापस आ जाऊँगा, और फिर तुम्हारे साथ धरतीका भोग करूँगा। यह कहकर भी, यदि मैं शुभलग्नमें वापस नहीं आया तो सुमित्राका बेटा नहीं, और भी निशाभोजन, मांसभक्षण, मधु और मद्यका पान, जीव हत्या, झूठ बोलना, परधन और परस्त्रीमें अनुरक्त होना इत्यादि व्यसनोंमें जो पाप लगता है, वह सब पाप मुझे लगे। यदि मैं लौटकर न आऊँ, या अपना मुँह न दिखाऊँ। मैं महायुद्धमें समर्थ, श्रीरामके नव कमलकी तरह कोमल, और नव प्रभासे उज्ज्वल रामके चरण छूकर कह रहा हूँ" ॥१-९॥

[३] इस प्रकार भग्न वनमालाको समझा-बुझाकर, सुपूज्य राम और लक्ष्मणने वहाँसे प्रस्थान किया। थोड़ी दूर जाने पर उन्हें गोदावरी नदी मिली। उसमें मछलियाँ उछल-कूद मचा रही थीं। शिशुमारोंमें घोर घुरघुराती हुई, गज और मगरोंके आलोडनसे हड़हड़ाती हुई, फेन-समूहके मण्डल बनाती हुई, मेंढकोंकी ध्वनिसे टर्राती हुई, तरंगोंके उद्वेलनसे बहती हुई, द्वीपके रागसे झप-झप करती हुई वह गोदावरी नदी शशि, राजा और कुन्द-कुसुमोंसे धवल हो रही थी। कारण्डवके चंचुपनसे भयङ्कर जलप्रपातोंके स्खलन और मोड़से खल-खल करती हुई और चट्टानों पर सर-सराती हुई वह बह रही थी। वलय (आवर्त और चूली) से अंकित वह मानो धरती रूपी नव-वधूकी कुल पुत्री ही हो जो अपने प्रिय समुद्रके आगे मुक्ताहारके लिए अपना दाँया हाथ पसार रही थी ॥२-८॥

[४]

बोलन्तेंहिं वण-णारायणेहिं । खेमञ्जलि-पट्टणु दिट्ठु तेहिं ॥१॥
परिसमइ करालिउ जसइ लेलु । महुमहु पयणु ण को वि लेलु ॥२॥
रम्मेसरु जो सम्माणँ परिट्ठु । सो पङ्गु पडिमाए मि मुएँ दिट्ठु ॥३॥
गइ-भायुर जो कामण्ण-दीहु । सो मासखेहिं मि कइय धीहु ॥४॥
जा सुरस-णाणक सिसिर-पूर । सो विय सुरयण्णहों जणइ सूर ॥५॥
जं रायहँ त सणइ मि विरु । जं सुरयहँ त सुइर मि विरु ॥६॥
तहों णयरहों थिउ अवरुत्तरेण । उज्जाणु मइ खेमन्तरेण ॥७॥
सुरसेवउ णामें जगें पयासु । जं णग-विहल्लल थिउ मवासु ॥८॥

घत्ता

तहिं तरुएँ उवणणें घण-तरुवर-वणें जहिं अमरिन्दु रइ करइ ।
तहिं विउल करेप्पिणु वे वि करेप्पिणु अवसु अमरें पईसरइ ॥९॥

[५]

पइसन्तें पुर-बाहिरें कराल । घड-सवल-पुञ्जु दीसइ विसालु ॥१॥
ससि-सङ्ख-कुन्द-हिम-पुञ्ज धवलु । हरहास एउ सरयन्म-विसालु ॥२॥
त पेक्खेंवि कुडु हरिसिय-मणेण । पोमाउ पपुच्छिय लक्खणेण ॥३॥
'इउ दीसइ काइँ महा-पयण्डु । णं जिम्मलु हिमगिरि-सिहर-खण्डु' ॥४॥
त सिसुणेंवि गोवहिँ वुत्तु एम । 'किं एउ ण पइँ ण सुव देव ॥५॥
अरिदमण-णाम विसयउस-णाम । मड-यड-संघारणि विहु कुमम ॥६॥

[४] थोड़ी दूरपर राम-लक्ष्मणको क्षेमंजली नगर दीख पड़ा। उसमें अरिदमन नामक राजा रहता था। उसके समान प्रचण्ड यहाँ दूसरा कोई व्यक्ति नहीं था। वह रासेश्वर, सदयं श्रेष्ठ था। रास्तागीरों उसकी बात सौंप देनेमें वह समर्थ था। वह सिंहकी तरह, नखोंसे भास्वर, लम्बश्रीपुच्छ (लम्बी पूँछ और हथियार विशेषसे सहित) था। सिंह मातगों (हाथियोंसे) अप्राप्य होता है, पर वह राजा मातग (लक्ष्मीके अंगों) से प्राप्त था। अर्थात् लक्ष्मी उसे प्राप्त थी। पर दुर्दम दानव-समूहका चूरनेवाला वह क्रियाके मुख-चन्द्रको सवानेके लिये सूय था। जैसे वह राजाओंसे, वैसे ही शत्रोंसे सुप्र था। और जैसे सुमटोंसे वैसे ही वहु (*गहना विशेष*) से *भूषित था। उस नगरसे, वायव्य* कोणमें आधे कोसकी दूरी पर, सुरशेखर नामसे जगतमें प्रसिद्ध एक उद्यान था मानो वह उद्यान बलभद्र रामके लिए हाथोंमें अर्घ लेकर खड़ा था। नये वृक्षोंसे सघन उस उपवनमें देवेन्द्र क्रीड़ा करता था। लक्ष्मणने यहीं घर बनाया। और राम-सीताको यहीं ठहराकर उसने उस नगरमें प्रवेश किया ॥१-६॥

[५] घुसते ही उस नगरके बाहर मटोंका भयङ्कर और विशाल शव-समूह मिला। वह बेर राशि, शख, कुन्द, हिम तथा दूधकी तरह सफेद, हर, हार हस और शरद् मेघकी तरह स्वच्छ था। उसे देखकर हर्षितमन होकर लक्ष्मणने एक गोपालसे पूछा, '*यह महाप्रचण्ड क्या दिखाई दे रहा है ? यह ऐसा लगता है मानो* हिमालयके निमल शिखर हों।' यह सुनकर गोपालने उत्तर दिया "देव क्या आपने यह नहीं सुना, यहाँके राजा अरिदमनकी जित पद्मा नामकी एक लड़की है, वह, महाभट समूहोंका नाश करने वाली, मानो साक्षात् शाकिनी है। वह आज भी वर-कुमारी है,

माना वह धरती पर प्रत्यक्ष मौत बनकर ही आई है। जो योधा उसके लिए अपनी जान गँवाता है, उसे इस हथियोंके पहाड़में डाल देते हैं। जो सुभट अपनी उपेक्षा करते हुए, प्राणोंको तिनकेके बराबर समझकर पाँचों ही शक्तियोंका धारण कर लेगा, शत्रु-संहारक और नेत्रोंके लिए आनन्ददायक वह, उसका वर होगा" ॥ १-९ ॥

[६] यह वचन सुनकर दुर्निवार लक्ष्मणका एक पलमें रोमांच हो आया। विकट क्रोधसे भरकर वह नगरमें ऐसे प्रविष्ट हुआ मानो मत्तगजके संहारक सिंहने ही प्रवेश किया हो। कहीं उसने कल्प वृक्षोंको इस तरह देखा मानो नगरकी आशासे पथिक ही ठहर गये हों। कहीं मालतीसे फूल झड़ रहे थे, मानो शिष्य ही गुरुविका यश फैला रहे थे। कहीं पर विचित्र सरोवर दीख पड़ रहे थे। जो अवगाहन करनेमें अच्छे मित्रकी तरह शीतल थे। कहीं पर सब रसोंका गोरस था मानो वह उनका मान हरण करते ही निकल आया हो। कहीं पर ईखके खेत ऐसे उखाये जा रहे थे मानो दुर्जन सज्जनको सता रहा हो। कहीं पर अरहट ऐसे घूम रहे थे जैसे जीव भवरूपी चक्रमें घूमते रहते हैं। हिलती डुलती पताका मानो लक्ष्मणसे कह रही थी —"हे लक्ष्मण, आओ आओ और शीघ्र ही जितपद्माको ले जाओ" आते हुए असुरसंहारक लक्ष्मणको नगररूपी निशाचरने मानो खा लिया। हाटही उसका विकट मुख था वापिकाएँ नेत्र थीं और देवकुलरूपी डाढ़ा से वह भयंकर था ॥ १-९ ॥

[७] अथवा उस नगररूपी कापालिकने अपनी प्राकार की भुजाओंसे लक्ष्मणको रोक लिया। (अर्थात् उसने नगरके परकोटके भीतर प्रवेश किया)। कहीं पर रसियोंके साथ पड़े थ, कहीं माना नाना नाटकोंके साथ नट थ। कहीं पर विशुद्ध बरावाले

सुकुलीनोंकी भाँति उत्तम बराके हाथी थे। कहीं पर ध्वज-पताकाएँ ऐसी फहरा रही थीं मानो वे स्वर्गके देव-समूहको तरह अपनेको भी ऊपर समझ रही हों। कहीं पर लोहार लोहखण्डको उसी प्रकार पीट रहे थे जिस प्रकार पापी नरकमें पीटे जाते हैं। बाजारके मार्गको छोड़कर लक्ष्मण राजद्वारके निकट पहुँच गया। तब प्रतिहारने टोककर पूछा, "इस प्रकार कहाँ जाओगे"। इस पर कुमारने कड़ककर कहा "जाओ और राजासे कहो कि जितपद्माका मान जीतनेवाला आ गया है। पर-बलका संहारक गर्विष्ठभुजा दमनकर्ता, रिपु-समूहका घातक तथा शक्तियाँ सहित अरिदमनका भी हरण करनेवाला एक देव आया है। अथवा बहुत कहने से क्या? बस राजासे कहना कि मैं इस बोलकी बात तो कौन पूछे (कमसे कम) सौ शक्तिको पानेकी इच्छा रखता हूँ। पाँच शक्तियोंका ग्रहण करनेसे क्या होगा" ॥ १-६ ॥

[८] यह सुनकर प्रतिहार, मण्डपमें आसनपर बैठे हुए राजाके पास गया। प्रणाम करके उसने निवेदन किया "परमेश्वर, विनतिसे प्रसन्न हों। यमसे प्रेरित एक योद्धा आया है, मैं नहीं जानता कि वह चन्द्र है या इन्द्र या अतुलित प्रतापी कामदेव है। पर उसके पास पाँच बाण हैं और एक धनुष नहीं है। उस नरकी कोई अनोखी ही भंगिमा है कि उसके शरीरके एक भी अंगकी शोभा नष्ट नहीं होती। वह कहता है कि मैं जितपद्माको लेकर रहूँगा। इन पाँच शक्तियोंका क्या लूँ?' यह सुनकर राजा अरिदमनने आदरमें कहा "बुलाओ, देखूँ कौन-सा आदमी है।" तब प्रतिहारके पुकारने पर, जय-लक्ष्मीका प्रसन्न करनेवाला युद्धका प्यासा कुमार लक्ष्मण भीतर आया। मयूर मुख, दीर्घनेत्र बहुतसे अनेक नर-पक्षियोंने मुक्षण लक्ष्मणको आते हुए ऐसे देखा मानो महागज सिंहको देख रहे हों ॥ १-६ ॥

[९] लक्ष्मणके निकट आने पर अरिदमनने हँसकर कहा "अरे जितपद्माको कौन छू सकता है, आगको हाथसे किसने उठाया, किसने सिर पर वज्रकी इच्छा की, कृतान्तको आज तक किसने मारा? अगुलीसे आकाशको कौन छेद सका है, आगमें इन्द्रको किसने पराजित किया कौन पैरसे धरतीको दलन कर सका। आघातसे मृगेन्द्रको कौन गिरा सका? ऐरावतके दाँत किसने उखाड़े, सूर्यको तल पर किसने गिराया अशेष समुद्रको कौन लाँघ सका धरणेन्द्रके फनको कौन चूर-चूर कर सका, हवाको कपड़ेसे कौन बाँध सका, मन्दराचलको कौन टाल सका? तुम्हारी ही तरह और भी बहुतसे युवक अपनेको असाधारण बताकर यहाँ गरजे थे पर युद्धमें उनपर मेरी शक्तियोंने अपने प्रहारोंसे उनके सौ सौ टुकड़े कर दिये" ॥१-९॥

[१०] अरिदमनने जब सुभट लक्ष्मण पर इस प्रकार आक्षेप किया तो वह दावानलकी तरह भड़क उठा, उसने कहा "मैं जितपद्माको छूनेमें समर्थ हूँ, मैंने हाथ पर आग उठाई है मैंने सिर पर वज्र झेला है, मैं आज भी कृतान्तका घात कर सकता हूँ मैंने अँगुलीसे आकाशमें छेद किया है, मैंने आगमें इन्द्रको पराजय दी है धरतीको मैंने पैरोंसे चाँपा है, मैंने आघातसे गजको भूमिसात् किया है मैंने ऐरावत हाथीका दाँत उखाड़ा है, मैंने सूर्यको तल पर गिराया है, मैंने अशेष समुद्रका उल्लंघन किया है मैंने धरणेन्द्रके फनको चूर-चूर किया है वस्त्रसे मैंने हवाको चाँपा है मैं वही हूँ जिसने मंदराचलको भी टाल दिया। मैं तीनों भुवनोंमें भयंकर हूँ। मैं अजर अमर हूँ तेंतीस करोड़ देवोंके रणमें अजय हूँ। धर्मध्वजिराज तुम अपण्डित और अज्ञानी हो यदि तुममें शक्ति हो तो अपनी शक्ति मुझ पर छोड़ो" ॥१-९॥

[११] यह सुनते ही क्षेमंजलि-राम गरजकर उठा, कुछ शक्तियोंको प्रकाशित करता और कुछ को हाथमें लिये हुए वह धक-धककर रहा था। वह ऐसा लगता था मानो आकाशमें संतपित सूर्य हो, या मर्यादारहित समुद्र हो या अनवरत मद झरता हुआ महागज हो। या परमण्डलका नाश करनेवाला माण्डलिक राजा हो या रामायणके बीचमें रावण हो। या भीम शरीरवाला भीम ही हो। उसने तब लक्ष्मणके ऊपर उसी तरह शक्ति फेंकी जिस तरह हिमालयने समुद्रमें गंगा प्रक्षिप्त की। वह शक्ति धकधकाती हुई समरांगणमें इस तरह दौड़ी मानो नभमें तड़-तड़ करती बिजली ही चमक उठी हो। (यह गरजकर) देवता आकाशमें यह बातें करने लगे कि अब इसके आघातसे लक्ष्मणका बचना कठिन है। परन्तु यश और जयके लोभी लक्ष्मणने अपने दाहिने हाथमें उस शक्तिको उसी तरह धारण कर लिया जिस तरह संकेतसे चूकी हुई परस्त्रीको परपुरुष पकड़ लेता है ॥१-९॥

[१२] लक्ष्मणके युद्धमें शक्तिके मिलते ही सुरसमूह पुष्प वर्षा करने लगा। किसीने जाकर पूर्ण चन्द्रमुखी जितपद्मासे कहा "सुंदरी सुंदरी जल्दी करते हुए लक्ष्मणकी अनाशका मंगिया था देखा लाचन या शक्ति आदी भी वह असती स्त्रीकी तरह लक्ष्मणसे जा लगी। यह नररूपी भ्रमर तुम्हारे मुख-कमलका अवश्य चूमेगा।" यह सुनकर नव-कमलकी तरह दीपनयन विहसितमुख उसने अपने मुखपटकी तरह, जालीदार मराजके अन्तःपटका हटाकर लक्ष्मणका अपने नेत्र-कटाक्षसे देखा मानो उसने संकेतसे जल्दी हुए उसे निवारण किया हो। इतने में ही कुमारने भी चकाचौंधपूर्वक आकाशमें मुखरान मुखचन्द्र देखा। इस तरह शुभ नक्षत्र और सुयोगमें उन दोनोंकी आँखोंका परस्पर शुभंकर मिलाप हो गया।

घत्ता

पत्थन्तरें तुहुँ मुआएवें कहु अण्णेक्क सत्ति परेंण।
स वि भरिय सरग्गें वाम-करग्गें जाणइ णव-बहु भत्तारेंण ॥११॥

[१५]

अण्णेक्क मुक्क बहु मच्छरेण। वच्छत्थलि आइय पुरन्दरेण ॥१॥
स वि दाहिण-करयलें घुलइ लेय। जयलच्छिव देव व कामुएण ॥२॥
अण्णेक्क विसज्जिय पावणाग्गि। ण सिद्धि-सिह जाणा-सय मुअन्ति ॥३॥
स वि भरिय पच्छि वारसपणेण। वामएँ गोरि व तिणयणेण ॥४॥
जं मच्छिरु देवइ णन्दणेण। पभासिय मुक्क बहु-मच्छरेण ॥५॥
पम्मुक्क पणाइय चावरासु। ण कन्त सुकन्तएँ सुहपरासु ॥६॥
स विहायें हिँ पच्छि णिबद्ध देम। णव-सुरय-समागमें मुयइ जेम ॥७॥
एत्थन्तरें वरहिं कलयलासु। सिरें मुक्क पडिअक्क कुसुम-वासु ॥८॥
मरिहमणु ण सोहइ सत्ति-हीणु। गअ-कुमरिसु व्व णिय सत्ति-दाणु ॥९॥

घत्ता

हरि रोमञ्चिय तणु सहइ स-पहरणु रण-मुहें परिसक्कन्तु थिउ।
रत्तुप्पल-लोयणु रस-वस-भोयणु पच्चाणणु वेयालु थिउ ॥१०॥

[१६]

समरङ्गणें असुर पराजएण। अरिदमणु वुत्तु णारायणेण ॥१॥
'रूव सूर पिसुण मच्छरिय राय। मइँ जेम पडिच्छिय पञ्च घाय ॥२॥
तिह तुहु मि पडिच्छहि पञ्च सत्ति। जइ अत्थि का वि मणें मणुस सत्ति' ॥३॥
किर पुण मच्छेप्पिणु हणइ जाम। जियपउमएँ भणिय सासु ताम ॥४॥

इसी बीचमें उस दुष्ट और क्रोधी अरिदमनने एक और शक्ति लक्ष्मणके ऊपर छोड़ी परन्तु लक्ष्मणने उसे भी बायें हाथमें वैसे ही ले लिया जैसे नया वर नई दुलहिनको ले लेता है ॥१-४॥

[१३] तब उसने इन्द्रके वज्रकी भाँति एक और शक्ति छोड़ा लक्ष्मणने उसे भी दाहिनी काखमें दस ही चाप लिया जैसे कामुक वेश्याको आलिंगनबद्ध कर लेता है। राजाने एक और शक्ति छोड़ी जो धकधक करती हुई पातालसिराकी तरह सैकड़ा लपटें उगलने लगी। लक्ष्मणने आती हुई उस वैसे ही धारण कर लिया, जैसे शिवजीने पार्वतीको अपने वायें अर्द्धांगमें धारण कर लिया था। तब अत्यन्त मत्सरसे भरकर दुर्बलीपुत्र राजा अरिदमनने पाँचवीं शक्ति विसर्जित की। वह भी नरश्रेष्ठ लक्ष्मणके पास इस तरह दौड़ी मानो कान्ता ही अपने सुभगराशि कान्तके पास जा रही हो। किन्तु कुमार लक्ष्मणने उसे भी अपने दाँतोंसे वैसे ही रोक लिया पति जैसे सुहागरातमें आती हुई युवतीको रोक लेता है। तब देवोंने पुनः लक्ष्मणपर पुष्प बरसाये। शक्तिसे हीन होकर राजा अरिदमन बिलकुल भी नहीं सोह रहा था। वह वह शक्तिहीन हुए पुरुष की तरह स्थित हो गया। पुलकितशरीर युद्धस्थलमें इधर उधर दौड़ता हुआ धराधर लक्ष्मण वैसे ही सोह रहा था जैसे रक्तकमलकी तरह नवमालासे सुसज्जितको नाना पदासुर पैशाच शोभित होता है ॥१-६॥

[१४] समरांगणमें असुरोंको पराजित करनेवाले लक्ष्मणने अरिदमनसे कहा "रुक, दुष्ट दुष्ट नीच इर्ष्यालु राजन्! जिस तरह मैंने तेरे पाँच आघात सहे। उसी तरह यदि तेरे मनमें थोड़ी भी मनुष्यशक्ति हो तो मेरी एक शक्ति सह। यह कहकर कुमार लक्ष्मण जब तक मारने लगा तब तक जितपद्मा उसके गलेमें

माला डाल दी और वह बोली, "हे रणमें दुदर्शनीय साधु-साधु, प्रहार मत करो, पिताकी भीख दो मुझे। तुमने मुझमें अरि दमनको जीत लिया। तुम्हें छोड़कर और कौन मेरा पति हो सकता है।" यह सुनकर लक्ष्मणने तुरत अपने हथियार डाल दिये। और अरिदमनके पास आकर उसने वैसे ही उसको प्रणाम किया जैसे इन्द्र जिनको प्रणाम करता है। उसने कहा—"अमप और क्रोधसे तथा यश और जयके लोभसे मैंने आपके साथ युरा-बर्ताव किया है और भी 'रे' कहकर बुलाया। किसी तरह माया भर नहीं। हे मामा (ससुर) वह क्षमा कर दीजिए" ॥१–६॥

[१५] तब क्षेमअलिका राज-राजेश्वर अरिदमन बोला, "बहुत अमपपूर्ण प्रतापसे क्या तुमने अपने पौरुषसे कन्या छीनी। तुम दानवोंके माहात्म्यको नापनेवाले दिखाई देते हो, बताओ तुम्हारा गोत्र क्या है ? माँ और बाप कौन हैं ?' इसपर लक्ष्मण बोला "सुनिये राजन्! दशरथ मेरे पिता हैं और सुमित्रा माँ। और भी मेरा प्रसिद्ध इक्ष्वाकु कुल तरुवरके वंशकी तरह बढ़ा है। हम राम और लक्ष्मण दो भाई हैं जो राज्य छोड़कर वनवासके लिए आये हैं। असुरसंहारक भद्र राम सीता देवीके साथ तुम्हारे उद्यानमें ठहरे हैं।" यह सुनकर राजा पुलकित हो उठा और सेनाको लेकर चल पड़ा। उनोंके मनके परिताप और सूचक निर्घोषसे वह नरपति अपने तई नहीं समा सका। शीघ्र ही वह उस स्थान पर आ पहुँचा जहाँ अपने ही बाहुओंका भरोसा करने-वाले राम अपनी पत्नीके साथ थे ॥१–६॥

[१६] यहाँ भी शत्रु-सेनाके सुभटोंका संहार करनेवाले राम जनसमूहको देखकर उठे। जब तक वह अपने हाथमें धनुष ले या न ले तब तक उन्होंने सीतासहित लक्ष्मणको आते देखा।

इन्द्रकी भाँति वह पत्नीके साथ रथपर आरूढ़ था। उसके निकट दूसरा अरिदमन था। (रामको देखते ही) दुर्निवार कुमार लक्ष्मण उनके चरणोंपर गिर पड़ा। खिले हुए कमलकी तरह मुख-वाली कमलनयनी कन्या जितपद्मा विलासके साथ रामके चरण-कमलोंपर नत हो गई। उन्होंने भी उसे प्रशस्त आशीर्वाद दिया। इतनेमें मामान (ससुरने) जरा भी देर नहीं की। उसने रामचन्द्रको सानेके रथ पर बैठाया। पटु पटह पत्र उठे! कलकल ध्वनि और भयसह तथा मंगल गीतोंके साथ, एक ही रथमें बैठकर बलवत राम और सीताने नगरमें प्रवेश किया। ऐसे मानो वे विष्णु और लक्ष्मी हों। वे चारों इस तरह राज्यका उपभोग करते हुए वहीं रहने लगे॥ १-९॥

०

उनतालीसवीं संधि

जिनशासनमें अनुरक्त, दूसरेके धनका हरण करनेवाले न होना राम और लक्ष्मण वहाँसे चलकर उस वंशस्थल नगरमें पहुँचे जहाँ मुनियों पर उपसर्ग हो रहा था।

[१] वह नगर जैसे सिसक रहा था उन्होंने देखा सारे जन नष्ट हो रहे हैं दुर्मन विमुख और विरूप वे लोग दन्तहीन हाथीकी तरह एकदम कान्तिहीन हो उठे थे। वह जनपद वैसे ही नष्ट हो रहा था जैसे, कममार्ग वाह छनरर सपराज, भयस विदीर्ण पवतसमूह और हिमपवनसे आहत होकर कमलसमूह नष्ट हो जाता है। हाथ उठाये और मुँह ऊपर किये हुए उन्हें देखकर रामने यह अभय वचन दिया, "ठहरो ठहरो भागो मत।" इतने ही में उन्हें वंशस्थलका गर्वमान राजा दीख पड़ा। उसने कहा

"नगरमें मत घुसो, नहीं तो दोनोंके प्राण चले जायँगे। यहाँ इस नगरमें पहाड़की चोटीपर आ भयङ्कर नाद उठता है, उससे बहुत भय होता है बड़े-बड़े पेड़ तक गिर जाते हैं, और प्रासाद सौ-सौ खण्ड हो जाते हैं" ॥१-६॥

[२] जहाँ यह विशाल पर्वत दीख पड़ता है, वहाँ भयङ्कर उत्पात हो रहा है। तूफान, धूलि और दुर्वात आ रहे हैं। पत्थर गिर रहे हैं और धरती काँप रही है। घर घूम रहे हैं, वज्राघात और सिंहनाद हो रहा है। मेघ बरस रहे हैं। अब समूचा नगर ही नष्ट हुआ जाता है। तुमपर भी कहीं उत्पात न हो जाय" यह सुनते ही सीता देवी अपने मनमें काँप उठीं। वह भयकातर होकर बोलीं "एक देशसे दूसरे देशमें घूमते और मारे-मारे फिरते हुए हम लोगोंपर कौन-सा पराभव आना चाहता है।" यह सुनकर कुमार लक्ष्मणने कहा, "माँ तुम इस तरह कायर वचन क्यों कहती हो। जब तक वज्रावर्त और सागरावर्त धनुष हमारे हाथमें हैं और जब तक तूणीर और बाणोंसे अधिष्ठित विजय-लक्ष्मी हमारे पास है तब तक माँ तुम आशङ्का ही क्या करती हो, आगे चलनेमें मुँह मत बिचकाओ"। इस तरह जनकसुताको धीरज बँधाकर और हाथमें धनुष-बाण लेकर वे आगे चल दिये। जाते हुए वे ऐसे लगते थे मानो स्वर्गसे उतरकर इन्द्र-प्रतीन्द्र ही शचीके साथ जा रहे हों ॥१-११॥

[३] थोड़ी दूरपर उन्हें कंकड़ और पत्थरोंसे आच्छन्न एक भयङ्कर पर्वत दिखाई दिया। उसके शृङ्ग (चोटी और सींग) बैलकी तरह विशाल थे। कहीं भीषण गुफाएँ थीं और कहीं पर पानी झरते हुए झरने। कहीं रक्तचन्दनके वृक्ष थे और कहींपर तमाल, ताड़ तथा पीपलके पेड़ थे। कहीं कान्तिसे रंजित मत्त मयूर

कहिँ वि विद्द-कायरा । कमन्ति मत्त मोरया ॥५॥
कहिँ वि सीह-णायया । भुकन्ति पुच्छ-दण्डया ॥६॥
कहिँ वि मत्त-सिन्धुरा । गुलुगुलन्ति कुञ्जरा ॥७॥
कहिँ वि दाढ-भासुरा । घुरुघुरन्ति सूयरा ॥८॥
कहिँ वि पुच्छ-दीहरा । किलिकिलन्ति वानरा ॥९॥
कहिँ वि घोर-कन्धरा । परिब्भमन्ति सम्बरा ॥१०॥
कहिँ वि तुङ्ग-भायणा । हयारि तिक्खसिङ्गया ॥११॥
कहिँ वि णामसुम्मणा । कुरङ्ग पुच्छ-कम्पणा ॥१२॥

घत्ता

तहिँ तेहएँ वइएँ तरुवर-गहणेँ भासुर वे वि हरि-हलहर ।
णाणाविह-विम्हयणेँ पवसुअणेँ णिविट्ठ पाइँ जम लक्खर ॥१३॥

[४]

सिहुर-विमल किरण-रमणावहँ । राहउ तुम्ह हरिसावइ सीयएँ ॥१॥
एँहु सो वणेँ कणोह-पहासु । जहिँ रिसहहोँ उप्पण्णउ णाणु ॥२॥
एँहु सो सरवणु छिं न मुणिउ । अजिउ स-णाणु तेहु जहिँ पहुलियउ ॥३॥
एँहु सो इन्दवणु सुपसिद्धउ । जहिँ संभव-जिणु णाण-समिद्धउ ॥४॥
एँहु सो सरलु सरलु संभूयउ । अहिणन्दणु स-णाणु जहिँ हूयउ ॥५॥
एँहु पीयलु सीएँ पच्छायउ । सुमइ स-णाणपिण्डु जहिँ जायउ ॥६॥
एँहु सो समलु सीएँ णिवसियउ । पउमप्पहु स-णाणु जहिँ अच्छियउ ॥७॥
एँहु सो सिरिसु महद्दुमु णामइ । णाणु सुपासेँ मणेंवि जगु णामइ ॥८॥
एँहु सो णागवणु मन्दरवेँ । णाणुप्पत्ति जेत्थु चन्दप्पहोँ ॥९॥
एँहु सो मालइवणु पर्दासिउ । पुप्फयन्तु जहिँ णाण-विहूसिउ ॥१०॥

घत्ता

एँहु सो पच्चवतरु णाण-कुसुम-भरु सेयंसु-समाणु सुर वासइँ ।
जहिँ परिहूयाइँ संभूयाइँ सीयल-सेयंसहुँ ॥११॥

थे और कहीं पर अपनी पूँछ घुमाते हुए सिंह और मेढ़े। कहीं पर मदमाते गज गुरगुरा रहे थे और कहीं भयंकर दाढ़वाले सुअर घुर-घुरा रहे थे। कहीं मोटी और लम्बी पूँछके बन्दर किल-कारी भर रहे थे। कहीं स्थूल कंधोंके साभर घूम रहे थे, कहीं लम्बे शरीर और तीखे सींगोंके भैंसे थे और कहींपर ऊपर मुख किये खिन्न कानवाले हिरन थे। ऐसे उस वृक्षोंसे सघन पर्वत पर दोनों भाई (आगे बढ़ते) चले गये। अत्यन्त गोरी जानकीके साथ वे दोनों भाई ऐसे ज्ञात हो रहे थे मानो बिजलीसे अंचित मेघ ही हो ॥१-१३॥

[४] तब राम सीताको, (मोटे नितम्बों और अधरोंसे रमणीय) अच्छी तरह पेड़ दिखाने लगे। उन्होंने कहा "धन्ये, देखो यह सुरम्य वटवृक्ष है जहाँ आदि तीर्थंकर आदिनाथको केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। क्या तुम इस सप्तपर्ण वृक्षको जानती हो जिसके नीचे अजित केवलीकी खूब स्तुति हुई थी। और यह वह इन्द्र वृक्ष है जहाँ सम्भव-जिनने केवल ज्ञान प्राप्त किया था। यह वह सरल द्रुम है जहाँ अभिनन्दन स्वामी केवलज्ञानी बने थे। यह वह सच्छाय प्रियंगु वृक्ष है जहाँ सुमतिनाथने केवलज्ञान प्राप्त किया। सीतादेवी देखो, यह वह शाल वृक्ष है जहाँ पद्मप्रभ-जिन केवलज्ञानी हुए थे और हे जानकि, यह शिरीषका महाद्रुम है जहाँ भगवान् सुपार्श्वने ध्यान धारणकर समस्त विश्वको जाना था। चन्द्रमाके समान देखो यह नाग वृक्ष है जिसके नीचे चन्द्र प्रभु भगवान्ने केवलज्ञान प्राप्त किया था। यह वह मालती वृक्ष है जहाँ पुष्पदन्त ज्ञानसे विभूषित हुए थे। फल-फूलोंसे लदा हुआ यह वह तेंदुकी की तरह प्लक्ष वृक्ष है जहाँ दुःखनाशक शीतलनाथ और श्रेयांस भगवान्को केवलज्ञानकी उत्पत्ति हुई थी ॥१-११॥

[४] यह सामनेके पत्तोंवाली पाटली लता है जिसकी छायामें वासुपूज्यको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था। ये वे जामुन और पीपल के वृक्ष हैं जिनके नीचे विमलनाथ और अनन्तनाथ ज्ञानसे समर्थ हुए थे। ये दधिपर्ण और नन्दीवृक्ष हैं जिनके नीचे धर्मनाथ और शान्तिनाथ ज्ञानसे समृद्ध हुए। ये वे तिलक और सहकार वृक्ष दिखाई दे रहे हैं जहाँ कुंथुनाथ और अरहनाथको ज्ञानकी उत्पत्ति हुई। यह वह अशोक वृक्ष है जहाँ मल्लिनाथ जिनने केवलज्ञान प्राप्त किया। क्या तुम यह चंपक पेड़ नहीं देख रही हो जहाँ केवल ज्ञानी, मुनिसुव्रत ध्यानके लिए बैठे थे। इस उत्तम वृक्षकी तो इन्द्र तक वन्दना करता है और इसीलिए लोग भी इसका अभिनन्दन करते हैं।" इस प्रकार बातें करते हुए वे लोग वहाँ पहुँचे जहाँपर महारक, जितकाम, देशभूषण और कुलभूषण मुनि प्रतिमा योगध्यानमें लीन बैठे थे। शुद्धमन वे दोनों यति पूरवे हुए व्यन्तर देवों, विषाक्त साँपों-बिच्छुओं और लताओंसे इस प्रकार घिरे हुए थे जैसे पाखंडीजन घर स्त्री आदि परिग्रहसे घिरे रहते हैं ॥१-१०॥

[५] रामने जब वहाँ सब ओर सर्प-समूह देखा तो स्वयं भयङ्कर गरुड़ बनकर बैठ गये। तूणीर उनके पंख थे, सीतादेवी चोंच थी। रोमांच और कंचुक उनके पंखके बाल थे। लक्ष्मण ही मुड़ा हुआ विकट मुख था। तीखे तीर डरावने नेत्र थे। दोनोंके दो धनुष उस (गरुड़) के कान थे। इस तरह राम भीषण गरुड़ का रूप धारण करके बैठ गये। उस (रामरूपी गरुड़) को देखकर सर्पोंके लिए अपने प्राणोंकी चिन्ता होने लगी कि इस नरसंगममें हम शीघ्र ही नष्ट हो जायेंगे। यह गरुड़ पक्षी हमें खा लेगा। इस प्रकार उन सर्पोंका नाश वैसे ही हो गया जैसे मुनिके कर्मबन्धका नाश हो जाता है। मनसे त्रस्त, भयभीत और कातर वे व्यस्त होने

हजारों मुक्का और असंख्य नेत्रों को बनाकर आये। यह सब होनेपर भी उन विमलबुद्धि दोनों मुनियों का ध्यान डिगा नहीं। (आततायी) सब्बल हलि हल और मूसलस प्रहार कर रहे थे, अपनी तरह-तरह की मगिमाओं से न समझो तरह कराल जान पड़ रहे थे ॥१-९॥

[११] उस भयानक उपसर्गको देखकर हर्षितमन निशाकर, महाबली राम और लक्ष्मणने सीताको अभयवचन दिया और अपने करतलसे मुनियों के चरण-कमल पकड़कर, दोनों धनुष चढ़ा दिये। उनकी कठोर ध्वनिसे सुमेरु पर्वत भी हिल उठा। धरती और आसमान दोनों भयकातर हो गूँज उठे। उस शब्दसे शत्रुओं के हृदय दहल गये। उनका मान खण्डित हो गया। उन धनुषों की टंकारसे बड़े-बड़े क्षुब्ध राक्षस वैसे ही प्रणष्ट हो गये जिस प्रकार जिनके द्वारा आठ कर्म और पाँचों इन्द्रियाँ विजित कर ली जाती हैं। इस प्रकार मान और मत्सरसे भर हुए राक्षसोंके नष्ट होते हाथ उन व्रतधारी मुनियों को केवलज्ञान उत्पन्न हो गया ॥१-९॥

[१२] सब सुर और असुर उनकी वन्दना भक्तिके लिए आये। और उनकी कीर्ति चारों लोकों में फैल गई। ज्योतिष, भवन और व्यंतरवासी देव आने लगे। सबसे पहले भवनवासी देवों ने शङ्खध्वनि की। फिर व्यन्तर देवों ने अपना तूर्य बजाया और ज्योतिष देवोंने सिंहनाद किया तथा कल्पवासी देवोंने जय-घण्टोंका निनाद किया। इस प्रकार चारों निकायों के देवों के प्रस्थान करते ही आकाश इस प्रकार ढक गया मानो मेघों से ही आच्छन्न हो उठा हो। विमान विमानको चापकर चढ़ रहे थे। सवारीसे सवारी टकरा गई। अश्वों से अश्व और रथों से रथ अवरुद्ध हो उठे।

गजसे गज और मुकुटसे मुकुट टकराकर उछल पड़े। मानविद्रुत और अभय देवसेना वहाँ इस तरह आइ माना मृत्युलोकका अन्धकार दूर करनेके लिए धर्मबुद्धि ही चारो ओर बिखर गई हो ॥१-६॥

[१३] तब इन्द्रने भी अपना ऐरावत हाथी सजाया। उमा के मन और नेत्रा के लिए सुहावने उस गजकी चौसठ आँखें अत्यन्त शोभित हो रही थीं। अपने बत्तीस मुखा से वह गुरगुरा रहा था। उसके एक-एक मुखमें आठ-आठ दाँत थे जो स्वर्णिम निधानकी तरह लगते थे। एक-एक दाँतपर एक-एक सरोवर था प्रत्येक सरोवरमें उसीके अनुरूप आकार-प्रकारकी कमलिनी थी। एक-एक कमलिनीपर मृणालसहित बत्तीस कमल थे। एक-एक कमलमें बत्तीस पत्ते थे और पत्ते-पत्तेपर उतनी ही अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं। जम्बूद्वीप प्रमाण वह गज अपने स्थानसे चल पड़ा। उसपर सुरसुन्दर पुरन्दर भी मुनिकी वन्दना-भक्ति करनेके लिए आया। इन्द्रके सम्मुख नयनानन्द नामक देवसमूहने जिनकी स्तुति प्रारम्भ की। देव दानव यक्ष और मनुष्यों में उस समय कौन ऐसा था जो उन मुनियोंके चरणोंमें नत न हुआ हो और तो और, स्वयं इन्द्र चक्रको लगाके उतरकर आना पड़ा ॥१-११॥

[१४] जिनवरके चरण-कमलोंके सेवक देवों ने केवलज्ञानी उन मुनियोंकी खूब अर्चना की। फिर इन्द्रने कहा—"अरे, अरे! तुम्हें यदि जन्म, जरा, मरण और वियोगसे आशंका हो, और यदि तुम चारगतियोंके भ्रमणसे छूटना चाहते हो तो जिनवर भवनकी शरणमें क्यों नहीं आते। जितना पुत्र-कलत्रकी अपने मनमें चिन्ता करते हो उतनी जिन-प्रतिमाकी चिन्ता क्यों नहीं करते। जितना तुम मांस और कामका चिन्तन करते हो, उतना जिन-शासनका

चिन्तन क्यो नहीं करते ? जितनी चिन्ता तुम ऋद्धि, श्री और सम्पदा की करते हो उतनी जिनवरके चरणोंकी क्यो नहीं करते ? जितनी चिन्ता तुम्हें रूप, धन और यौवनकी है, और भी धान्य, सुवर्ण, घर और परिजनोंकी है, जितनी चिन्ता तुम्हें नश्वर भव पञ्जर (शरीर) की है, उतनी चिन्ता परमात्मरूपवाले (जिनवर) की क्यो नहीं है ? जरा, धर्मका फल तो देखो कि चतुरंग देवसेना मुनिवरकी तीन बार प्रदक्षिणा दे रही है। वह भुवनेश्वर-परमेश्वर जिनकी सेवा कर रही है ॥१-६॥

•

तेतीसवीं संधि

केवलज्ञान उत्पन्न होने पर रामने पूछा, "कुलभूषण देव आप पर यह उपसर्ग क्यों हुआ।"

[१] यह सुनकर वह परम गुरु बोले, "सुनो बताता हूँ। पद्मस्थानपुर नामका एक नगर था। उसमें कर्षक और सूरप नामके दो ग्यारह प्रतिमाधारी भाई रहते थे। वे दोनो एक राजाके उसी प्रकार अनुचर थे जिस प्रकार इन्द्रके तुम्बुरु और नारद अनुचर हैं। प्रबुद्ध उन दोनोंने एक दिन व्याधसे आहत एक पक्षी की रक्षा की। बहुत दिनोंके बाद मरने पर वह पक्षी विन्ध्याटवीमें भिल्लराज हुआ। सूरप और कर्षक, दोनो भाई भी मरकर राजा अमृतसरकी पत्नीसे उत्पन्न हुए। उनके जन्म दिनका उत्सव खूब धूमधामसे मनाया गया। बन्धुजन बधाई देने आये। उनके

नाम चवित और मुदित रक्खे गये। ये दोनो ऐसे प्रतीत होते थे मानो अमर कुमार ही स्वर्गसे अवतरित हुए हों। धीरे-धीरे वे यौवनरूपी महागज पर आरूढ हो चले। तो भी उन पर विवेक का अंकुश उनके हाथमें था ॥१–४॥

[२] (कुछ समयके बाद) पिताने पद्मिनीपुरके राजा विजयको अपने पुत्र दिखाये। उसने उन दोनोंको सुकुमार उठानेमें समर्थ जानकर अपने पुत्र जय धरका अनुचर नियुक्त कर दिया। इस प्रकार सम्पदाका उपभोग करते हुए वे दोनो रहने लगे। एक दिन उनके पिता अमृतसरको (किसी कामसे) बाहर जाना पड़ा। राजाने उसे भूमिसम्बन्धी कोई लेखमाला देकर बहुत दूर भेजा। वसुभूति नामका ब्राह्मण भी उसके साथ गया। वह वहाँ (परदेशमें) कुछ और नहीं कर सका था अमृतसरके प्राणोंको ही समाप्त कर बैठा। (उसका अमृतसरकी पत्नीसे अनुचित सम्बन्ध था) वहाँसे लौटकर पतिको मरा समझ वह ब्राह्मण उसकी पत्नीके साथ आनन्दोपभोग करने लगा। उसे चवित-मुदितकी जरा भी परवाह नहीं थी। वह इस प्रकार उपभोगके साथ अधरामृतका पान करने लगा। तब बड़े भाईने उसे दुश्चरित्र समझकर मार डाला। वह भी मरकर विन्ध्याटवीमें भीलोंका राजा हुआ। पूर्वकृत कर्म सभीको भोगने पड़ते हैं ॥१–६॥

[३] इसी बीच राजा विजयके उद्यानमें एक मुनि संघका आगमन हुआ। वृक्षोंके नीचे निवास करता हुआ वह संघ ऐसा जान पड़ता था मानो वृक्षोंके नीचे भो ही अवतरित हुई हो। उनके अंकुर कोमल हो गये। नये पत्ते फल और फूल आ गये। मुनि वृक्षोंकी ही भाँति अपने ध्यानमें अचल थे। पेड़ोंके पल्लव

उन्हें बार-बार हक छेते थे । यह पुष्पकी ही तरह तपनशील (तप और घामको सहनेवाले) उन्हींको तरह मूलगुणों (अट्ठाईस मूल गुण और जड़) से महान् थे। फिर भी वे महामुनि वृक्षोंके समान आलवाल (परिग्रह और लता आदि) से रहित थे। परन्तु फल (मोक्ष) से सहित थे। उन्हें देखकर वनपाल राजा विजयके पास दौड़ा गया और जाकर बोला "परमेश्वर सिंहकी भाँति पराक्रमी, उत्तम मुनियोंने बलात् उद्यानमें प्रवेश कर लिया है।" मना करने पर भी वे वैसे ही भीतर घुस आये हैं जैसे किशोर सिंह वनमें घुस आता है ॥१-८॥

[४] यह सुनते ही राजा वहाँ आ पहुँचा जहाँ वह मुनि संघ विराजमान था। जाकर उसने भर्त्सना करते हुए कहा, "अरे अपण्डित परममूर्ख यतिवरो ! तुम तो स्वयं परमात्मा बनकर बैठे हो। तुमने मुनिका यह वेष किस लिए बनाया ? अत्यन्त दुर्लभ मानव शरीर पाकर उसका नाश क्यों कर रहे हो ? फिर परममोक्ष किसने आज तक प्राप्त किया ? इसलिए सुन्दर स्त्रीजनको ही बढ़िया समझो। ये सुन्दर कान्तिमय अङ्ग सोलह शृङ्गारके योग्य हैं। यह चौड़ा कटिभाग हय गज और रथोंकी सवारीके लिए है। तुम्हारा लावण्य रूप और यौवन सभी कुछ व्यर्थ गया। लोकमें प्रसिद्ध (मौजकी) तुमने एक भी बात नहीं की। तुम्हारा यह सब ढेरा उठाना एक प्रकारसे व्यर्थ गया ॥१-६॥

[५] तब मोह महावृक्षके फलको बढ़ानेवाले मतिवर्धन नामके यतिने राजासे कहा "तुम अपनी विडम्बना क्यों कर रहे हो। सुख-दुखमें सने क्यों बैठे हो। किसका यह घर, किसके पुत्र-

छत्र ? ध्वजचिह्न, चामर, छत्र, विमान, पालकियां, याम्य रथ, अश्व, गजराज, दुर्ग, धन-धान्य, जीवित, यौवन, जलक्रीड़ा, प्राण, उपवन, आसन, धरती और हीरा रत्न किसीके भी साथी नहीं होते। इन्होंने शत्रुओंको खण्डित किया है, लाखों महामानियों मानवोंको मार दिया है। इनसे हजारों इन्द्र धराशायी हो गये। सैकड़ों चक्रवर्ती विनष्ट हो गये। इनको और दैत्योंको भी कालने कवलित किया है। सम्पदा किसीके भी साथ एक भी पग नहीं गई॥१-६॥

[६] तब परमेश्वरने बार-बार यही कहा—"जीवकी तीन अवस्थाएँ होती हैं। जन्म, जरा और मृत्यु। पहले तो (पूर्वजन्ममें) जो जीवन देहरूपी घर किया था (उसका बन्ध किया था।) वहीं पुद्गल परमाणुओंके सूत्रको लेकर हाथों और पैरोंके चार खम्भ बनाये जाते हैं फिर बहुत-सी हड्डियों और आँतोंसे उसे ढककर मांस और चमड़ेके चूनेसे पोत दिया गया है। फिर सिर रूपी कलशसे अलंकृत होकर यह चमकने लगता है। इस तरह मनुष्यका तन एक उत्तम भवनसे मिलता-जुलता है। यौवनका तो यह जिस किसी तरह दकेलता है पर बादमें क्षीण-क्षीण हो जाता है। सिर काँपने लगता है, मुखसे बात नहीं निकलती। कान सुनते नहीं, आँखें देखती नहीं। पैर चलते नहीं। हाथ काम नहीं करते, केवल शरीर जर्जर हो उठता है। फिर मरण-कालमें यह देहरूप घर ढह जाता है और जीव उससे उसी तरह उड़ जाता है जिस तरह पक्षी पंखको छोड़कर उड़ जाता है॥१-६॥

[७] यह सुनकर राजा शान्त हो गया। अपने पुत्रको उसने अपने पदपर नियुक्त कर दिया। वह स्वयं भवरूपी ग्राहसे गृहीत होकर दूसरे सौ राजाओंके साथ दीक्षित हो गया। यहींपर

मुदित-मुदित भी दिगम्बर हो गये। अपने करकमलोंसे ही उन्होंने केश लोंच कर लिया। फिर वह श्रमणसंघ उस नगरसे जिनवरकी वंदना-भक्ति करनेके लिए चल पड़ा। परन्तु सम्मेदशिखरजीको आते-जाते मुदित मुदित दोनों भाई मुड़कर, पथ छोड़कर गलत मार्गपर आ लगे। भूले-भटके वे दोनों वसुमति भीलराजके गाँव में पहुँच गये। उन्हें देखते ही आरक्त नेत्र, मदिरा पिये हुए वह वैर-भाव कर उनपर दौड़ा। उसका वक्ष दुर्दर्शनीय था और हाथ स्थूल और विशाल थे। उसने अपना गम्भीर स्वरवाला धनुष चढ़ा लिया। ठीक ही है कि वैर न तो नष्ट होता है और न क्षीण। यह निश्चित है कि आहत व्यक्ति सात भवान्तरोंमें भी मारता है ॥१-६॥

[८] अपने शत्रुओंके वैरसे विरुद्ध होकर दुर्धर उसने उन दोनोंको ललकारा "हे हेरिको! कहाँ जाते हो? मैं तुम्हें मारता हूँ।" यह सुनकर महाव्रतधारी बड़े भाईने छोटे भाईको धीरज बंधाते हुए कहा "डरो मत दूसरे भवका मनमें विचार करो, उपसर्ग सहन करना ही तपका भूषण है"। उस ऐसे विधुर समयमें भयाकुल्ध घोर संकट आ पड़नेपर एक और भिल्लराज उनके उद्धारकी इच्छासे कन्धा ऊँचा करके स्थित हो गया। यह पूर्व भवका वही पक्षी था जिसकी प्रवसानमें इन्होंने रक्षा की थी। उसने कहा "अरे लुब्धक, हट। ऋषिको कौन मार सकता है, तू मुझसे मारा जायगा।" इस तरह उसने उससे इन्हें छुड़वा दिया। कालान्तरमें मरकर वह दयाकी नसैनी चढ़कर लीलापूर्वक स्वर्ग चला गया ॥१-६॥

[९] परन्तु पापाशय वह भीलराज खूब पाप कर, बहुत समय तक नरक और तिर्यञ्च गतियोंमें भटकता रहा। फिर धन-जनसे पूर्ण अरिष्ट नगरमें उत्पन्न हुआ। उसका नाम था अनुधर। दुबरान वह अपनी मां कनकप्रभाके लिए बहुत दुखदायक था। वे हर्षित-मुदित भी, अपने कुलके दुर्लभ ध्वज सदृश प्रियव्रत नामक राजाके पुत्र हुए। वे दोनों ही विज्ञान और कलामें पारङ्गत थे। पर्वतकी तरह धीर समुद्रकी भांति गम्भीर प्रजापालन और राज-काजमें निपुण। उनके नाम थे रत्नरथ और विचित्ररथ। शशि और सूर्यकी तरह प्रभावाले वे रानी पद्मावतीसे उत्पन्न हुए थे। (कुछ समयके बाद) छह दिनका सल्लेखना व्रत करके जब उनका पिता प्रियव्रत राजा मरकर स्वर्ग चला गया तब उन दोनों भाइयोंने विद्रोही और [illegible] अनुधरको पकड़ लिया। और उसका विग्रह कुचल दिया। मरकर दूसरे जन्ममें वह अग्निकेतु नामका देव हुआ ॥१-९॥

[१०] बहुत कालके अनन्तर रत्नरथ और विचित्ररथ तप करके स्वर्गवासी हुए। और फिर घूम-फिरकर सिद्धार्थपुरमें उत्पन्न हुए। वह नगर धनकण कंचन जन और दुग्धसे खूब भरपूर था। परस्पर एक दूसरेके नेत्रोंके लिए शुभङ्कर विमला और क्षेमङ्कर उनके माता-पिता थे। उनमें बड़ेका नाम कुलभूषण और छोटेका देशभूषण था। एक और कमलोत्सवा नामकी चन्द्रमुखी कन्या उत्पन्न हुई। वे दोनों कुमार शासनमें आचार्य नमिको सौंप दिये गये। पढ़ लिखकर जब वे युवक हुए तो ऐसे मालूम होते थे जैसे दैवहीने उन्हें गढ़ा हो। उनके वक्षस्थल विशाल, बाहुएँ लम्बी थीं। वे ऐसे प्रतीत होते थे मानो स्वर्गसे इन्द्र उपेन्द्र ही अवतरित हुए

हों। एक दिन कमलासेना कहींसे आती हुई उन्हें दिख गई। कामकी भल्लीकी तरह वह शीघ्र ही उनके हृदयमें बिंध गई ॥१-६॥

[११] अपनी ही बहिनके रूपमें आसक्तमन होकर उन दोनोंको चन्द्रलेखाकी छवि भी नहीं भाती थी। न तो धवल, अमल कोमल, कमल अच्छा लगता और न जल या जलार्द्र दक्षिण-पवन। उसके सुकोमल चरण देखकर उन्हें सुन्दर रक्त-कमल अशोभन लगते थे। उसके गाढ़ सुडौल स्तनोंको देखकर उनका मन हाथीके कुम्भस्थलसे उचट गया। उस बालाका मुख देख लेनेपर उन्हें चाँद या चाँदनी अच्छी नहीं लगती थी। उसके सौन्दर्यमें उन दोनोंकी आँखें ऐसी खिन्न हो गईं मानो हाथी कीचड़में फँस गये हों। उसके केश-कलापको देखकर उनके मनको वनमें नाचता हुआ मोर अच्छा नहीं लगा। अपनी दृष्टिमें विष छिपाये हुए वह बाला—सापके समान थी जो भी उसे देखता वही मारा जाता ॥ १-६ ॥

[१२] उस अवसरपर बन्दीजनोंने राजासे कहा—"धनुर्धर! सचमुच आप सत्पुरुष तुम्हीं हुए हो। महीमण्डलपर तुम्हीं एक धन्य हो कि जिसकी कमलासेना जैसी पुत्री है और कुल-भूषण देश-भूषण जैसे दो पुत्र हैं।" यह सुनकर वे दोनों कुमार जैसे सन्न रह गये। वे अपने वहाँ सोचने लगे—"अभागे हृदय! तुम क्या चिन्तन कर रहे हो, इससे तुम घोर दुःख पाओगे। इन पाँच इन्द्रियोंमें तुम मत फँसो। ये क्षुद्र और दुष्ट पशुवत् हैं, अनर्थ करने-वाली हैं, ये नारकीय नरकमें ले जानेवाली हैं। ये राग-व्याधि और दुःखोंको आमन्त्रण देती हैं और शाश्वत शिवगमनका निवारण करती हैं। तीर्थङ्करों और गणधरोंने इनकी निन्दा की है। इसस

शलभ रससे मछली, शब्दसे मृग, गन्धसे भ्रमर और स्पर्शसे मत्त गज विनाशको प्राप्त होता है। पर जो पाँचोंका सेवन करता है उसका निस्तार कहाँ ? ॥ १-९॥

[१३] यह विचारकर उन्हें विषाद और दोषपूर्ण राज्यके मार्गसे विरक्ति हो गई। अपने देहमय महारथसे उन्होंने तपके पथपर चलना प्रारम्भ कर दिया। और इस प्रकार हम दोनों विचक्षण (कुलभूषण और देशभूषण) हुए आठ कर्मोंसे प्रचण्ड, इन्द्रियरूपी अश्वोंसे संचालित, सात धातुओंसे आबद्ध, चक्र‌रूप चरण चक्रसे सजाये मनरूपी मुख्य सारथिसे प्रेरित, एवं तप संयम, नियम धर्म आदिसे भरे हुए अपने-अपने इस शरीर-रूपी महारथोंसे चलकर इस पर्वत पर आये। और एक शिखरपर प्रतिमायोगमें लीन होकर बैठ गये। इसी अवसर पर अग्निकेतु आकाश-मार्गोंसे कहीं जा रहा था कि उसका विमान हम लोगोंके ऊपर आते ही अचानक स्खलित हो उठा। इसपर पूर्व जन्मके वैरका स्मरणकर वह क्रोधसे आगबबूला हो गया। अवरुद्ध हो वह आकाशमें विघ्नकारी बनकर स्थित हो गया। (बादमें) उसने हम लोगोंके ऊपर अपना उपसर्ग करना प्रारम्भ कर दिया। वह नाना रूपोंसे आकाशमें विस्मय दिखाने लगा। तब उस घोर संकटके समय गुरुओंपर भारी उपसर्ग देखकर तुम्हारे प्रभावसे राक्षस भय ग्रस्त हो गये और धनुषकी टंकार सुनते ही भाग खड़े हुए। कालान्तरमें मरणको प्राप्त हुए हमारे पिताजी भी गरुड़ हुए यहाँ दिखाई दे रहे हैं ॥ १३॥

[१४] तब तत्काल प्रसन्न होकर—गरुड़देवने उन्हें दो विद्याएँ प्रदान कीं। रामचन्द्रजीपर सिंहवाहिनी और लक्ष्मणके ऊपर गरुड़वाहिनी। पहली सात्त्वी और दूसरी शैलसी शक्तियोंसे

पडिकूली सच-सएँहिँ सहिय । अणुपच्छिम तिहिँ सएँहिँ भडिय ॥३॥
तो कोसल-सुएँण सु-कुद्धएँण । वुच्चइ वइदेही बद्धएँण ॥४॥
अच्छन्तु ताम दुम्महु जें घरें । अवसरें पडिवण्णें पसाउ करें ॥५॥
सहुँ गरुडें संभासणु करेंवि । गुरु पुच्छिउ पुणु वयणेंहिँ धरेंवि ॥६॥
'अम्हहुँ दिण्णउ परिम-घरें । जं जिम होसइ तं तेम कहें ॥ ॥
कुलभूसणु अक्खइ दसरहहों । 'जसु अक्खेंवि साहिय-सायरहों ॥८॥

घत्ता

संगाम-सयाइँ जिणेहि मि जिणेवाइँ ।
मडि-बन्धइँ तिण्णि स इँ मुञ्चेवाइँ ॥९॥

●

[२४ चउवीसमो सधि]

कण्णें कोमलहिँ उप्पण्णएँ चउविह-देव-णिकाय-पवण्णएँ ।
पुच्छइ रामु महायस-धारा 'धम्म-पाव फलु अक्खहि भडारा ॥

[१]

काइँ फलु पञ्च-महव्वयहुँ । अणुवय-गुणवय सिक्खावयहुँ ॥१॥
काइँ फलु कहएँ अणत्थमिएँ । उववास-पोसहएँ संजमिएँ ॥२॥
फलु कवँ जीव सम्मीसियएँ । परदव्वें परदारें अहिंसियएँ ॥३॥
काइँ फलु सच्चें बोल्लिएँण । अविरुद्धवारेण भासेहिएँण ॥४॥
काइँ फलु जिणवर-अच्चियएँ । वर-विउलें वरासणें पच्चियएँ ॥५॥
काइ फलु मासें खविएँण । रत्तिदिउ धरें खविएँण ॥६॥
काइँ फलु जिण-संभरणेंण । बलि- दीवयार- णिवेयणेंण ॥७॥

घत्ता

कि चारित्तें णाणें दएँ दसणें सम्मु पयासिएँ जिणवर-सासणें ।
ण फलु होइ जम्मण-विणासा त मिच्छत्तें वि अक्खहि भडारा ॥८॥

सहित थी। तब कौशल पुत्र सीतापति, सुलभ रामने (गरुड़से) कहा, "तबतक आप घरपर रहें और अवसर आनपर प्रसाद करें।" इस प्रकार गरुड़से सम्भाषणकर और फिर गुरुके चरण छूकर रामने पूछा "धरतीपर घूमते हुए हम लोगोंका क्या-क्या होगा? बताइए?" यह सुनकर कुलभूषणने कहा, "दक्षिण समुद्रको लांघकर तुम लोग शत्रु युद्धोंमें जीतकर तीनों लोकोंकी धरतीका उपभोग करोगे" ॥१-८॥

•

सैंतीसवीं संधि

[१] चारों देव-निकायोंको जाननेवाला केवलज्ञान जब कुल-भूषण महाराजको उत्पन्न हो गया तो रामने उनसे पूछा —"हे भट्टारक, धर्म और पापका फल बताइए। पाँच महाव्रत अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रतका क्या फल है? अनर्थदण्ड व्रत ग्रहण करनेका क्या फल होता है? उपवास और प्रोषधोपवासका क्या फल है? जीवोंको अभयदान करने और परस्त्री तथा परधनमें अभिलाषा न करनेका क्या फल है? सच बोलने और झूठ छोड़नेका क्या फल है? जिनवर पूजाके अनुष्ठान तथा गृहस्थाश्रमके प्रपंचसे बचनेमें क्या फल है? मांस छोड़ने और दिन-रात संयमके पालनमें क्या फल प्राप्त होता है? जिनका अभिषेक करने और नैवेद्य तथा दीप धूप और विलेपन करनेका क्या फल है? चारित्र व्रत दान वगैरह आदिका जिन-शासनमें जो फल वर्णित हो उसे बताइये। हे जिस काम! केवलज्ञानसे उसे जानकर प्रकट करें" ॥१-८॥

[२] रामने दुबारा उनसे पूछा—"पुण्य-पापका फल भी बतलाइए। शत्रुके लिए भयंकर और चराचर धरतीका उपभोग करनेवाला किस कर्मके उदयसे भूप बनता है? किस कर्मसे दूसरेके बलका ग्रहण करता है? रथ, अश्व और गजसे युक्त होता है। किस कर्मसे वह सुन्दर स्त्रियों और उत्तम मनुष्योंसे घिरा रहता है और उसपर उत्तम चँवर डुलाये जाते हैं और ध्वजा गज उसे स्वच्छन्द मत्त गजकी भाँति समझते हैं? किस कर्मसे मनुष्य पंगु, कुबड़ा, बहरा और अन्धा बनता है? किस कर्मके उदय से वह कुँवारा तथा गुरु-स्वर और शरीरसे हीन-हीन और रोगी बनता है? भील, नाहर व्याध शबर दरिद्र और दूसरोंका सेवक किस कर्मसे बनता है? दृढ़शरीर सपत्सूर सब जीवोंके आशापूरक जितेन्द्रिय और परोपकारी कौनसी गति प्राप्त करते हैं? हे भट्टारक, बताइए॥ १-६॥

[३] और भी मनुष्य, दूसर-दूसरे दुर्लोंसे मुक्ति पाकर स्वर्ग कैसे जाते हैं? चन्द्र, सूर्य, मङ्गल, राहु आदि एक दूसरेसे भिन्न कर्म करनेवाले क्यों हैं? हंस, मेष महिष, बैल,गज, मयूर, तुरग, रीछ, मृग, साबर आदि इनोंके बीच उत्तम होकर उनके वाहन कैसे बनते हैं? और जो यह वज्रसे प्रहार करनेवाले, ऐरावत गजपर आरूढ़ इन्द्र है, जिसकी सहस्रों किन्नर-दम्पति और बड़े बड़े देव चारों ओरसे जय बोलते हैं, हा हा, हू हू नारे बोलते हुए तुम्बुरु देव और वेण्ण जिसके चाकर हैं। चित्राङ्ग जिसके लिए भृदङ्ग वादक है। स्वयं तिलोत्तमा अप्सरा जिसके लिए प्रकट होती है। आखिर यह सब किस कर्मके फलसे होता है? जो स्वयं

असुरों और देवों के बीच मोक्षकी तरह सबसे ऊपर रहता है और जिसकी इतनी प्रभुता दीख पड़ती है, वह इन्द्रत्व किस फल से मिलता है" ॥ १-९ ॥

[४] रामके वचन सुनकर कामका भी मान खण्डित करने वाले कुलभूषण मुनिने कहा— 'सुनो, राम बताता हूँ। धर्मका फल सुनो। मधु, मद्य और मांसका जो त्याग करता है, वह निकायके जीवोंपर दया करता है और (अन्तमें) सल्लेखनापूर्वक मरण करता है, वह तो मोक्षरूपी महानगरमें प्रवेश करता है। परन्तु जो मधु-मांसका भक्षण करता है, प्राणियोंका वध करता है वह योनि-योनिमें घूमता हुआ चौरासी लाख योनियोंमें भटका करता है यह पुण्य-पापका फल है, अब सत्यका फल सुनो। महीधर सुर, असुर घन और समुद्र पर्यन्त यथेच्छ धरती है, तथा वरुण कुबेर, मेरु कैलाश प्रभृति जितना भी त्रिभुवन है वह भी सत्यका गौरव व्यक्त करनेमें असमर्थ है। सत्य सबसे उत्तम महान् है ॥ १-९ ॥

[५] जो मनुष्य सत्यधारी नहीं वह समाजमें मृगकी तरह नगण्य होकर जीता है। और जो दूसरेके धनकी इच्छा नहीं करता है वह स्वर्ग लोकमें जाता है। जो मूढ़बुद्धि दिन-रात एक क्षण भी चोरीसे बाज नहीं आता वह मारा जाता है और नरक-निकाय में छेदा-भेदा-काटा जाता है। परन्तु जो दुर्धर ब्रह्मचर्य व्रत धारण करता है उसका यश रूठकर भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता। जो व्यक्ति स्त्री-योनिमें खूब रमण करता है कामकमें मौरैकी तरह उसकी मृत्यु हो जाती है। जो परिग्रहसे निवृत्त होता है वह मोक्षके सुखद पथपर अग्रसर होता है। और जो सदैव परिग्रह से कराल होता है वह महातमःप्रभ नरकमें वास करता है। अथवा कितना वर्णन किया जाय। जब एक-एक व्रत पालन करनेमें इतना फल

घत्ता

अहवइ जिणभवणइँ केत्तिउ पुच्छेवएँ वयहोँ फलु पुच्छिउ ।
जो महुँ एक्कु वि धरइ वयाइँ तासु मोक्खु पुच्छिज्जइ काइँ ॥९॥

[६]

फलु पुच्छिउ पञ्च-महव्वयहोँ । सुणु एवहिँ पञ्चाणुव्वयहोँ ॥१॥
जो करइ णिरन्तर जीव-दया । परिहरइ असच्चु वयणु वि सया ॥२॥
जिण्ण लिन्ति अदिण्णु स-उत्तरिय । ते णरय-महण्णउ-उत्तरिय ॥३॥
जे णर स-दार-संतुट्ठ-मण । पर-दव्व- पर-णारी- परिहरण ॥४॥
अपरिमिय-गाम-करण पुरिस । ते हुन्ति पुरन्दर-सम-सरिस ॥५॥
फलु पुच्छिउ पञ्चाणुव्वयहुँ । सुणु एवहिँ तिण्णि मि गुणव्वयहुँ ॥६॥
दिस-पच्चक्खाणु पमाण-करु । वर-सग्गु तासु ण दूरियरु ॥७॥

घत्ता

इय तिण्णि गुणव्वयइँ गुणवन्तउ अच्छइ सग्गेँ सुरइँ भुञ्जन्तउ ।
तासु ण तिण्णि मि सम्मेँ एक्कु वि गुणु तहोँ संसारहोँ छेउ करइ पुणु ॥८॥

[७]

फलु पुच्छिउ तिण्णि मि गुणव्वयहुँ । सुणु एवहिँ चउ सिक्खावयहुँ ॥१॥
जो पढिल्लउ सिक्खावउ धरइ । जिणवरहोँ तिकाल-वन्दण करइ ॥२॥
सो णरु उप्पज्जइ जहिँ जेँ जहिँ । पणमिज्जइ कोडिहिँ तहिँ जेँ तहिँ ॥३॥
जो बीउ पुणु मि स-पासण-मणु । परिसहोँ वि ण पावइ जिय-भवणु ॥४॥
सो सावउ सग्गेँ ण सामयहुँ । अणुहवइ अमर वर-सामयहुँ ॥५॥
जो तीयउ सिक्खावउ धरइ । पोसह-उववास-सयाइँ करइ ॥६॥

प्राप्त होता है तो पाँचों व्रतोंके धारण करने पर 'जीव' के मोक्षका क्या पूछना ॥१-५॥

[६] पाँच महाव्रतोंका यह फल है अपर य—अणुव्रतों का फल सुनिए। जो सदैव जीव दया करता है तथा झूठ थोड़ा और सच बहुत बोलता है, हिंसा थोड़ी और अहिंसा अधिक करता है वह नरक रूपी महानदीका संतरण कर लेता है। जो मनुष्य अपनी स्त्रीमें संतुष्ट रहकर परस्त्री और परधनका त्याग करता है और परिग्रहसे रहित होकर दान करनेमें समर्थ है, वह इन्द्रके समान हो जाता है। पाँच अणुव्रतोंका यह फल है। अब तीन गुणव्रतोंका फल सुनिए। जिसने दिग्व्रत और भोगोपभोग परिमाणव्रत लिया है, और जो दुष्ट जीव, मुर्गा, बिल्ली आदिका संग्रह नहीं करता वह इन तीन गुणोंसे अन्वित होकर स्वर्गलोकमें सुखका भोग करता है, और जिसके इन तीनोंमेंसे एक भी नहीं है, कहो उसके संसारका नाश कैसे हो सकता है ॥१-८॥

[७] इस प्रकार तीन गुणव्रतोंका इतना फल है। अब चार शिक्षा व्रतोंका फल सुनो। जो पहला शिक्षा व्रत धारण करता है और जो तीन समय जिनकी वन्दना करता है। वह मनुष्य फिर कहीं भी उत्पन्न हो लोकमें वन्दनीय हो उठता है। परन्तु जिसका मन विपयासक्त है, जो वर्षभरमें एक भी बार जिन-भवनके दर्शन करने नहीं आता वह श्रावकोंके बीचमें (रहकर) भी श्रावक नहीं है। प्रत्युत वह शृगालकी भाँति है। जो दूसरा शिक्षाव्रत धारण करता है। वह सैकड़ों प्रोषधोपवास करता है, वह मनुष्य देवत्वकी कामना करता है और सौधर्म स्वर्गमें अप्सराओं के बीचमें रमण करता है। जो तीसरा शिक्षाव्रत धारण करता है, तपस्वियोंको आहारदान देता है और सम्यक्त्व धारण करता

सो पर देवत्तणु अहिलसइ । सोहम्में बहुय-सम्में रमइ ॥७॥
जो तइयउ सिक्खावउ धरइ । उवसिद्धि आहार-दाणु करइ ॥८॥
अण्णु वि सम्मत्त-भाउ वहइ । देवत्तणु ऐसाणेँ लहइ ॥९॥
जो चउथउ सिक्खावउ धरइ । सण्णासु करेप्पिणु पुणु मरइ ॥१०॥
सो होइ तिलोयहों अहिवइ । णउ जम्मण-मरण-विओय-भउ ॥११॥

घत्ता

सामाइउ उववासु स-पोसहु पच्छिम-कालें अण्णु सल्लेहणु ।
चउ सिक्खावयइँ जो पालइ सो इन्दहों इन्दत्तणु राअइ ॥१२॥

[८]

पॅउ एम्व सिक्खावएँ समणिएँ । सुणु एवहिँ अवमि अणत्थमिएँ ॥१॥
घरि कम्मु संघु घरि मज्जु महु । घरि अलिउ वयणु हिंसएँ महुँ ॥२॥
घरि जीविउ गउ सरीरु अलसिउ । एउ रयणिहिँ भोयणु अहिलसिउ ॥३॥
पुण्णक्खउ गण-गन्धव्वहुँ । मज्झण्हउ सव्वहुँ देवहुँ ॥४॥
अवरण्हउ पियर-पियामहहुँ । णिसि रक्खस-भूय-पेय-गहहुँ ॥५॥
णिसि-भोयणु-अण न परिहरिउ । मणु तेण काइँ न समायरिउ ॥६॥
णिसि-कीड-पयङ्ग-अयाइँ भसइ । कुसरीर-कुजोणिहिँ सो वसइ ॥७॥
जो चइँ णिसि-भोयणु उम्माहइ । विमलत्तणु विमल-गोत्तु लहइ ॥८॥

घत्ता

सुअउ ण सुणइ ण दिट्ठउ देक्खइ केम वि बोल्लिउ कहों वि ण भक्खइ ।
पोमएँ मउणु चउत्थउ पालइ सो सिव-सासय-गमणु णिहालइ ॥९॥

[९]

परमेसरु सुद्धु एम भणइ । जो जं मग्गइ सो तं लहइ ॥१॥
सम्मत्तहुँ को वि को वि वयइँ । कोँ वि गुण-पय-वयण रयण-सयइँ ॥२॥
उवयरणु कइउ परियॅणु । पंसत्ताव-अमर-वराहियॅणु ॥३॥

है, वह देवलोकमें देवत्वको पाता है। जो चौथा शिक्षाव्रत धारण करता है और सन्यासपूर्वक मरण धारण करता है वह त्रैलोक्य में भी वृद्धिको पाता है। उसे जन्म मरण और वियोगका भय नहीं होता। इस प्रकार सामायिक उपवास, आहारदान और मरण-कालमें संलेखना इन चार शिक्षाव्रतोंका जो पालन करता है, वह इन्द्रका इन्द्रपन टालनेमें भी समर्थ है ॥१-१२॥

[८] शिक्षाव्रतका फल यह है। अब अनर्थदण्डव्रतका फल सुनो। मांस खाना, मद्य और मधु पान करना हिंसा करना झूठ बोलना, किसीका धन अपहरण कर लेना अच्छा, पर रात्रिभोजन करना ठीक नहीं चाहे शरीर स्खलित हो जाय। गन्धर्व देव दिनके पूर्वमें सभी देव दिनके मध्यमें, पिता पितामह दिनके अंतमें तथा राक्षस भूत पिशाच और ग्रह रातमें खाते हैं। इसलिए जिसने रात्रिभोजन नहीं छोड़ा बताओ उसने कौनसा आचरण नहीं किया (अर्थात् सभी कुछ किया)। वह सैकड़ों कृमि पतगों और कीड़ों का भक्षण करता है और कुयोनियोंमें वास करता है। (इसके विपरीत) जो रात्रिभोजनका त्याग करता है वह विमल शरीर और उत्तम गोत्रमें उत्पन्न होता है। जो भोजन करनेमें मौनका पालन करता है, सुनकर भी नहीं सुनता देखकर भी नहीं देखता किसीके पुकारने पर भी नहीं बोलता वह शाश्वत मोक्षको पाता है ॥१-९॥

[९] जब परमेश्वर कुलभूषणने इस प्रकार (धर्मका) सुंदर प्रतिपादन किया और जिसने जो व्रत माँगा उसे वह व्रत मिल गया। किसीने सम्यक्त्व ग्रहण किया तो किसीने किसी और व्रत को। किसीने गुणसमूहसे भरे वचन रूपी रत्नोंको ग्रहण किया। वंशस्थलके राजाने तपस्या अंगीकार कर ली। इतने लोग उनकी

वन्दना-भक्ति करके चले गये। तब सीतादेवीने भी धमकी (धुरा) रक्षिव्रतको ग्रहण किया। रामने भी व्रत ग्रहण किया। परन्तु बालुक प्रभ नरकमें जानेवाले लक्ष्मणने एक भी व्रत ग्रहण नहीं किया। कितने ही दिनों तक वे लोग वहीं रहे। वहाँ उन्होंने जिन-पूजा और जिनका अभिषेक किया। दीनोंको दान दिलवाया। सैकड़ों निर्ग्रंथ साधुओंको आहारदान दिया। इसके बाद त्रिभुवनानन्द दायक जिनवरकी वंदना-भक्ति करके उन लोगोंने बड़े हर्षके साथ दण्डक वनकी ओर प्रस्थान किया ॥१-९॥

[१] दण्डकवनकी यह अटवी उन्हें विलासिनी स्त्रीकी तरह दिखाई पड़ी। वह सिंहोंके नखसमूहसे विदारित, घाटियोंके रूपमें अपने स्तन प्रकट कर रही थी। बड़े-बड़े सरोवर रूपी नेत्रोंसे विस्फारित करती और घाटियोंके मुखकुहरोंसे विभूषित वृक्ष रूपी रोमराजिसे अलंकृत चंदन और अगरु (इस नामके वृक्ष) से अनुलिप्त तथा वीरबहूटी रूपी केशरसे अर्चित थी। अथवा अधिक विस्तारसे क्या मानो वह दण्डक अटवी गजोंके पदसंचार के बहाने नृत्य कर रही थी। निर्झरोंके स्वरोंमें मृदंगकी ध्वनि थी मयूरोंके स्वर ही प्रतिष्ठित हुए थे। मधुकरियोंकी सुंदर कल-कल ध्वनि गीत थे। नव पल्लवोंके से वह अपने हाथ मटका रही थी। सीहाराशिसे उठा हुआ कल-कल स्वर ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो वह अटवी मुनिसुव्रत (भगवान्) का मंगल पाठ गान कर रही हो। उसके भीतर उन्हें भ्रमरोंकी भाँति सुन्दर एक लतागृह दिखाई दिया। स्वच्छन्द क्रीड़ा करते हुए वे लोग उसमें उसीप्रकार रहने लगे जिस प्रकार मुनीन्द्र योग ग्रहण कर रहने लगते हैं ॥१-१०॥

[११] शत्रुभयङ्कर लक्ष्मण उस वनमें अपना समुद्रावर्त धनुष लेकर घूमने लगे। कभी वह मनगजपर जा चढ़ते और

कभी वनकी गायों और भैसोंका दूध दुहने लगते। कभी दूध, दही और घी सहित मट्ठा (मही) लाकर जानकीका देवे और सीता उनसे भोजन बनातीं। इस प्रकार मनईंडिय वनधान्य तन्दुल, मुकंद, तरह तरहके फलरस कढ़ी, करवद, करीर, साकन आदिका विविध भोजन करते हुए ये तीनों अपना समय यापन करने लगे। एक दिन जीवदयाके दानी, गुप्त और सुगुप्त नामके महाव्रती दो महामुनि आये। वे काष्ठा मुक्त (एक सम्प्रदाय और त्रिकाल योगी) कापालिक (सम्प्रदाय विशेष और कामकषायसे दूर) भगवा (भगवा वस्त्र धारी और पूज्य शंकर) शंकर (शिव और सुख देनेवाले) तपन शील (आदित्य और ऋद्धिसे युक्त) वन वासी (एक सम्प्रदाय और वनमें रहनेवाले) गत महान, वन्दनीय सवनीय, संन्यासी और यज्ञकी तरह धूलिसे आच्छादित थे। जरा जन्म मरणका नाश करनेवाले वे दोनों (महामुनि) चर्याके लिए निकले ॥१-९॥

[१२] आते हुए उन यतियोंको देखकर माना वृक्ष भावकोंकी भाँति नत हो गये। भ्रमरोंसे गुंजित और पवनसे काँपते वे माना कह रहे थे "ठहरिए ठहरिए"। कोई वृक्ष फूलोंकी वर्षा कर रहे थे माना विधाता ही उनकी फूलोंसे पादपूजा कर रहा था। तब भी महाव्रत धारी वे ठहरे नहीं। चलकर वे दोनों भट्टारक रामके आश्रमके निकट पहुँचे। मुनियोंको देखते ही सीता देवी बाहर निकलीं माना साक्षात् वनदेवी ही बाहर आई हों। वह बोलीं 'राम देखो देखो अपराह्नकी बात है दो यति चर्याके लिए निकले हैं। यह सुनकर राम एकदम पुलकित हो उठे। और माथा झुकाकर, आह्वान करते हुए उन्होंने कहा—"ठहरिए ठहरिए"। तब विनयरूपी अंकुशसे वे दोनों साधुरूपी महागज रुक गये। रामने

दिण्ण ति-वार धार पक्खिवन्त वि । कय चच्चिय गोसीर-रसेण वि ॥११॥
पुप्फक्खय बलि दीवङ्गारेंहिँ । धूव पयावेंहि अट्ठ-पयारेंहिँ ॥१२॥

घत्ता

वन्दिय गुरु गुरु भत्ति करेवि सम्मइ पसंसमि सीयाएवि ।
सुह-पिय अच्छइ पच्छ मण-भाविणि सुय पउम-समुप्पेंहिँ णाममिणि ॥१३॥

[१५]

दिण्णु पसाउ पुणु मुहरें पिसारउ । चारुण-मोग्गु जेम दढवारउ ॥१॥
सिहरउ सिहरु जेम सिरदीहउ । जिणवर-भाउ जेम बहुदीहउ ॥२॥
पुणु भणिमउ दिण्णु दिणइच्छिउ । जिह सु-कलत्तु सु णेसु-स-णयणउ ॥३॥
सुरहँ पुणु सम्मणहँ विचित्तइँ । तिरुवइँ जाहँ णिवासिमि-चित्तइँ ॥४॥
दिण्णहँ पुणु तिम्मणहँ मण्डिहँ । अहिणव-कइ-कव्वा इव मिट्ठइँ ॥५॥
पच्छइ सिसिर स-मच्छर सुरउ । गुरु-कलत्त जेम धइ-वरउ ॥६॥
पुणु मण-सलिलु दिण्णु सीयालउ । जं जिण-वयणु पाव-पक्खालउ ॥७॥
कम्मुँ जिमिय भडारा जावँहिँ । पउमचरिउ पयरिसिउ तावँहिँ ॥८॥

घत्ता

दुन्दुहि गन्धवाउ रयणावलि साहुक्कारु अण्णु कुसुमञ्जलि ।
पुण्ण पवित्तइँ सासण-पुज्जइँ पाउ वि अच्छरियइँ सइँ भूअइँ ॥९॥

●

उनके चरण साफकर, तीन बार उसकी धारा छोड़कर उनका प्रक्षालन किया। उसके अनन्तर चन्दन रसका लेपकर आठ प्रकारके द्रव्य (पुष्प अक्षत नैवेद्य, दीप धूपादि) से पूजा की। स्तुति वन्दना-भक्तिके अनन्तर सीता स्वाधीन आहार देना शुरू किया। कामुकके लिए कामिनीकी तरह मनभाविनी सीता दयाने मादक मुस्वमधुर भोजन और पेय दिया ॥८–११॥

[१२] फिर उसने मुनिको प्रिय लगनेवाला स्वादिष्ट, तपस्वीके योग्य हलका भोजन दिया। यह भोजन सिद्धिके लिए अभिलाषी सिद्धकी तरह सिद्ध था जिनवरकी आयुकी तरह सुदीर्घ था। फिर सीताने उन्हें सुन्दर शाक परोसे। वह शाक, सुस्त्रियोंकी तरह सस्नेह (प्रेम और घी से युक्त) और स्वादनीय थी। फिर उन्हें पिवामिनियोंके चित्तकी भाँति शुद्ध विविध शालन परसा गया। उसके अनन्तर अभिनव कवि-वचनोंकी तरह मीठी मनप्रिय कढ़ी दी। दुष्ट स्त्रीकी भाँति घट (गाढ़ी और ढीठ) दही मठाई दी। उसके अनन्तर पीने योग्य जिन-वचनोंकी तरह अत्यन्त शीतल और सुगन्धित जल दिया। इस प्रकार जब सीता पूर्वक उन परम भट्टारकोंने भोजन समाप्त किया था। पाँच आश्चर्य प्रकट हुए। दुंदुभिका बज उठना सुगन्धित पवनका चलना रत्नोंकी वृष्टि आकाशमें देवोंका जय जय कार और पुष्पोंकी वर्षा। पुण्यसे पवित्र शासन देवताकी तरह ये आश्चर्य प्रकट हुए ॥१–९॥

•

[३५ पञ्चतीसमो संधि]

गुरु-वयणइँ लक्खेंवि पहाएँ रामु स-सीय परम-सब्भावें ।
देवेंहिँ राम-रिद्धि कएँ दरिसिय वण-अब्भिन्तरें बहुसार पवरिसिय ॥

[१]

ताव महावणु रयण सु-पगासइँ । जम्बइँ तिण्णि सयइँ पञ्चासइँ ॥१॥
वरिसें वि रयण-वरिसु सइँ हत्थें । रामु पसंसिउ सुरवर-सत्थें ॥२॥
'तिहुवणें अवरु एक्कु पर भल्लउ । दिव्वाहारु जेण वणें भिल्लउ' ॥३॥
सयँ परितुट्ठइँ अमर-सयाइँ । 'अण्णें दाणें किज्जइ काइँ ॥४॥
अण्णें परिउ भुवणु सयरायरु । अण्णें धम्मु कम्मु पुरिसायरु ॥५॥
अण्णें रिद्धि विद्धि बहुअरउ । अण्णें पेम्मु विलासु स-विब्भमु ॥६॥
अण्णें णेउ वरु सिरिसुन्दरु । अण्णें णाणु झाणु परमक्खरु ॥७॥
अण्णु सुपत्तु अण्णु किं किज्जइ । जेण महन्तु भोगु पाविज्जइ ॥८॥

घत्ता

अण्ण-सुवण्ण-रयण-गोदाणहुँ मेइणि-मणि-सिद्धन्त-पुराणहुँ ।
सयलहुँ अण्ण-दाणु उवासणु पर-भासणहुँ जेम जिण-सासणु' ॥९॥

[२]

राम-रिद्धि पेक्खेंवि पत्तीसउ । अवर अहाइ जाउ आईसउ ॥१॥
समाउ-पवणउ मुणि-अणुराएं । पडउ धाइ सिरें मामय-पाए ॥२॥
जिह जिह सुमरइ णियय-भवन्तर । तिह तिह मेल्लइ अंसु णिरन्तरु ॥३॥
'मइँ पावेण तिजम्मेयाम्महु । पञ्च-सयइँ पाडियइँ मुणिवरहुँ' ॥४॥

पैंतीसवीं संधि

शुभ सुगुप्त मुनिके प्रभाव तथा राम और सीताके सद्भावसे, देवोंने दानका प्रभाव दिखानेके लिए रामके आश्रममें (तत्काल) रत्नोंकी वृष्टि की।

[१] उन्होंने साढ़े तीन करोड़ बहुमूल्य रत्नोंकी वृष्टि की। इस प्रकार अपने हाथों रत्नोंकी वर्षा करके देवोंने रामकी प्रशंसा की, 'तीनों लोकोंमें एक राम ही धन्य हैं जिन्होंने वनमें भी मुनियोंके लिए आहार दान दिया। उन्होंने आपसमें चर्चा की कि अन्नदान ही उत्तम है, दूसरे दानसे क्या? अन्नसे चराचर विश्व पलता है। अन्नसे ही धर्म अर्थ और काम पुरुषार्थ हैं। अन्नसे ही ऋद्धि वृद्धि और संपत्तिकी समुत्पत्ति होती है। अन्नसे ही हाव भाव सहित प्रेम और विलास उत्पन्न होते हैं। अन्नसे ही गेय वाद्य और सिद्धान्त होते हैं। अन्नसे ही ज्ञान ध्यान और परमाक्षरपद (सिद्धपद) प्राप्त होता है। अतः अन्नको छोड़कर और क्या दान किया जाय। अन्नदानसे बड़े भाग प्राप्त होते हैं। अन्नदान सुवर्ण कन्या गौ धरती, मणि शास्त्र और पुराणोंके दानसे महत्त्वपूर्ण है। उनमें उसका स्थान वैसे ही ऊँचा है जैसे दूसरे शासनोंमें जिन शासनका स्थान ऊँचा है॥१-९॥

[२] दानकी ऋद्धि देखकर पक्षिराज जटायुको अपना जाति स्मरण हो आया। मुनिके प्रति भक्तिसे वह गद्गद हो उठा। उसे लगा जैसे उसके सिरपर वज्रका झटका लगा हो। ज्यों-ज्यों वह अपने जन्मान्तरोंकी याद करता त्यों-त्यों उसे अश्रु वेगसे बहने लगते। वह बार-बार पश्चात्ताप करता कि 'मुझ पापीने त्रिभुवनानंददायक पाँच सौ मुनियोंको पीड़ित किया था।" इस प्रकार

प्रलाप करता हुआ वह मुनिके निकट गया। उनके चरणोंपर गिरते ही वह मूर्छित हो गया। तब रामने चरणोंके प्रक्षालनका जल छिड़ककर उसकी मूर्छा दूर की। यह सब देखकर सीता देवीने कहा—"इस समयसे यह मेरा पुत्र है।" और उसे उठाकर सुखसे रख लिया। रत्नोंकी आभासे उस पक्षीके पंख सोनेके हो गये। चोंच मूँगेकी, कण्ठ नीलमका पीठ मणिकी चरण वैदूर्य मणिके। इस प्रकार तत्काल उसके पाँच रंग हो गये। वह ऐसा जान पड़ता था मानो दूसरी पंच रत्न-वृष्टि हुई हो ॥१-६॥

[३] हर्ष और विषादसे भरे हुए नटकी भाँति उस पक्षि-राजने दोनों मुनियोंकी भावसहित प्रदक्षिणा दी। उस आनन्द-दायक पक्षीको देखकर दशरथ-पुत्र रामने प्रणामपूर्वक मुनिसे पूछा 'हे आकाशगामी और दुःखरूपी महानदीके लिए नौका तुल्य (कृपया) बताइए, यह सुन्दर कान्तिवाला पक्षी सोनेके रंगका कैसे हो गया?" यह सुनकर वह *अनाहत मुनि* बोले, "उत्तम नरकी संगतिसे सब कुछ संभव है। संगतिसे छोटा आदमी भी बड़ा आदमी बन जाता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार पद पर्वत की चोटीपर बड़ा हो जाता है और सुमेरु पर्वतपर तिनका भी सोनेके रंगका दिखाई देता है। तीर्थमें पड़ा हुआ पानी मोती बन जाता है। इसी प्रकार यह पक्षी भी मणि-रत्नोंकी आभा और गंधोदकके (प्रभावसे) स्वर्णिम रंगका हो गया।" यह सुनकर रामने बिना किसी बाधाके पूछा— विकलांग यह पक्षी चुसता हुआ किस कारणसे मूर्छित हो गया? ॥१-६॥

[४] तब त्रिज्ञानपिंडके धारक परमेश्वर बोले, "पहले यह पक्षी दण्डपुरमें दंडक नामका राजा था। वह बौद्ध धर्मका अनुयायी था। एक दिन वह आखेटके लिए वनमें गया। वहाँ

उसे त्रिकालज्ञ मुनि दिखे। वह आतापिनी शिलापर बैठे, हाथ ऊपर उठाये, ध्यानमें अवस्थित थे। सुमेरु पर्वतकी तरह अचल और दुर्मोह उन्हें देखते ही वह आगबबूला हो उठा। "आज अवश्य कोई न कोई ममगळ अपशकुन होगा"—यह सोचकर एक साँप मारा और उसे मुनिके गलेमें डाल दिया। राजा अपने नगर वापस आ गया। मुनि उस विरोधमें अन्तार्सग रहे। उन्होंने अपने मनमें यह बात ठान ली कि जब तक कोई (अपने आप) इस साँपको अलग नहीं करेगा तबतक मैं अपने हाथ ऊपर ही उठाये रहूँगा। दूसरे दिन जब वह दुष्ट राजा फिर वहाँ गया तो उसने भट्टारकको वहीं देखा। उनके गलेमें पड़ा हुआ वह साँप कंठहारकी तरह शोभित था ॥१-६॥

[४] उन मुनिसिंहको (पहलेकी तरह) अविचल देखकर उसने सर्पकी वह कंठ-मञ्जरी दूर कर दी। फिर उसने कहा—"बताइये परमेश्वर, इस तपके अनुष्ठानसे क्या होगा ? यह शरीर क्षणिक है। जीव भी क्षण भर ठहरता है। जिसका ध्यान करते हो वह अतीत हो चुका है। तुम भी क्षणिक हो, और सिद्धत्व आज भी प्राप्त नहीं है, और फिर इस मोक्षका क्या प्रमाण है। उसका लक्षण क्या है ?" परन्तु इस प्रकार राजाने जो कुछ कहा वह सब निरर्थक हो था क्योंकि मुनिने नयवादसे उसका उत्तर दे दिया। (उन्होंने कहा) "यदि क्षणिक पक्ष कहते हो तो 'क्षण' शब्दका उच्चारण भी नहीं हो सकता। फिर तो 'क्ष' और ण भी क्षणिक हो जायगा। तब क्षणिक शब्दका उच्चारण नहीं होगा। अघटित अघटमान और अघटत, क्षणिक, चर्ण्यतमात्र, शून्यसे शून्यासन कैसे सम्भव है। अतः बौद्धोंका सब शासन व्यर्थ है ॥१-८॥

[६] इस प्रकार सुभिक्ष शब्दसे निरुत्तर होकर राजा दण्डकने फिर कहा, "जब सब अस्ति दिखाई देता है, तो फिर तप किसके लिए किया जाय।" यह सुनकर कवियों और वादियोंके स्वामी वह मुनि बोले, "जैसे नैयायिकोंकी हँसी उड़ाई जाती है वैसे हमसे नहीं कह सकते। हम अस्ति और नास्ति दोनों पक्षोंको मानते हैं। अतः तुम्हारे खण्डनकी तरह हमारे (मतका) खण्डन नहीं हो सकता।" यह सुनकर दण्डकराजने कहा "तुम्हारा परम पक्ष मैंने जान लिया। अस्ति और नास्तिमें नित्य संदेह है। क्योंकि यह जीव कभी धवल होता है और कभी श्याम। फिर कभी मत्तगज या कभी सिंह। फिर ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र।" इसपर भट्टारकने उत्तर दिया, "एक चोरको चिरकालसे तलार (कोतवाल) ने पकड़ रखा है। गर्दन, मुख नाक, आँखसे रुधिर, श्वास लेता हुआ भी वह किसीको दिखाई नहीं देता। अधिक विस्तारसे क्या ॥१-६॥

[७] अथवा इस प्रकार सन्देह करना व्यर्थ है। अस्ति और नास्ति दोनों पक्ष सन्देहसे परे हैं। जहाँ अस्ति हो वहाँ अस्ति कहना चाहिए और जहाँ नास्ति हो वहाँ नास्ति कहना चाहिए। स्वयम्भुवदास इस प्रकार विचार करनेपर राजा दण्डकने जैनधर्म अङ्गीकार कर लिया। उसने मुनिको घर आनेका आमंत्रण दिया। त्रसठ प्रकारके चारित्रमें पारङ्गत, पाँच सौ साधुओंके साथ वह मुनि राजाके घर पहुँचे। यह देखकर जनमनको प्रिय लगनेवाली दुर्नयस्वामिनी उसकी पत्नी आधे ही पलमें आगबबूला हो उठी। वह अपने पुत्र मयवर्मनसे बोली, "राजेश्वर जिनका भक्त हो गया है। अच्छा हो कोई मन्त्र उपाय सोचा जाय। सब पूँजी इकट्ठी करके मन्दिरमें रख दी। राजा उसे खोजता हुआ वहाँ आयगा, और इन पाँच सौ मुनियोंको मरवा देगा ॥१-६॥

[८] एक दिन उसने वैसा ही करवा दिया। सारा खजाना जिन-मन्दिरमें रख दिया गया। मयवभनने राजासे कहा कि तुम्हारा भण्डार मुनियोंने चुरा लिया है। कुमारके इस प्रलापपर राजा सिंहनादमें अट्टहास करके बोला, "विश्वास करलो कि शैल शिखर पर कमलपत्र हो सकते हैं, विश्वास कर लो कि मह नक्षत्र धरतीपर आ सकते हैं। विश्वास कर लो कि सूर्य और चन्द्र पूर्वकी अपेक्षा पश्चिममें उग सकते हैं। विश्वास कर लो कि समुद्र सूख सकता है, विश्वास कर लो कि कुल पर्वत आकाशमें होते हैं विश्वास कर लो कि चारों दिशाएं एक हो सकते हैं, विश्वास कर लो कि चौबीस तीर्थङ्कर नहीं हुए विश्वास कर लो कि चक्रवर्ती और कुलधर नहीं हुए, विश्वास कर लो कि त्रेसठ पुराणपुरुष, पाँच इन्द्रियाँ पाँच ज्ञान, साढ़ साग तथा जन्म और मरण नहीं होते, पर यह विश्वास कभी मत करो कि जैन मुनि चोरी करते हैं।" जब राजाने आदर पूर्वक ऐसा कहा तो फिर रानीने अपने परिवारके लोगोंके साथ मन्त्रणा की। और यह निश्चय किया कि किसी एकको मुनिका रूप बनाकर रानीके निकट बैठा दिया जाय ॥१-१०॥

[९] तब अवश्य राजा क्रोधमें आकर इन मुनिवरोंको मरवा देगा।" यह विचारकर तत्काल किसीको मुनिरूपमें वहाँ बैठा दिया तथा उत्तमनभाषिनी रानी तुन्तपस्वामिनी उसके साथ विकार चेष्टाका प्रदर्शन करने लगी। तब इसी बीचमें पुलकित-शरीर पुत्र मयवभन दौड़ा-दौड़ा राजाके पास गया और बोला—"राजन, देखो देखो मुनियोंका कर्म जो कुछ मैंने निवेदन किया था उसका प्रमाण मिल गया। मूर्ख अज्ञानी तुम आज भी नहीं समझ सकते। भण्डारको तो उसने हरण किया ही था और आज स्त्रीको भी हरण कर लिया है। तुम जानबूझकर अपने मनमें मूर्ख बनते

हो।" यह सुनते ही राजा दण्डक क्रोधरूपी महागज पर आसीन हो बैठा। उसने तुरन्त अपने आदमियोंको आदेश दिया कि इन पाँच सौ मुनियोंको पकड़ लो" ॥१-८॥

[१०] राजाके आदेशसे वे पाँचसौ मुनि बन्दी बना लिये गये। वे पञ्चेन्द्रियोंके प्रसारका निवारण करनेवाले, कलियुगके पाप और कषायोंका नष्ट करनेवाले, घोर संसारसे पार जानेवाले, चारित्ररूप नगरके प्राचीर, आठ दुष्ट कर्मोंको चूरनेवाले जितकाम, अनासक्त, भविकजनोंके उद्धारक, शाश्वत शिव सुखके प्रचारक, गर्व और प्रमादके निवारक, दारिद्र्य और दुखके नाशक, सिद्धिरूपी वधूके लिए प्राणप्रिय व्याकरण और पुराणोंमें पारङ्गत, सिद्धान्त मर्यादा पालनमें प्रत्येक अपनेमें प्रधान था। उस वैसे मुनि-समूहको, यन्त्रोंसे क्षुब्ध कर कसमसाता हुआ यह राजा पीड़ित करने लगा। जिस समय पाँच सौ ही साधु इस प्रकार पीड़ित हो रहे थे उसी समय आतापिनी शिलापर तप करके दो मुनिवर नगरकी ओर आ रहे थे ॥१-९॥

[११] उन्हें आते हुए देखकर किसीने कहा, "तुम दोनों नगरके भीतर प्रवेश मत करो नहीं तो प्राणोंसहित समाप्त कर दिये जा सकते हो। तुम्हारा गुरु आपत्तिमें है। राजा उन्हें यन्त्रसे पीड़ा दे रहा है।" यह सुनते ही उनमेंसे एक मुनि एकदम क्रुद्ध हो उठा। मानो प्रलयकालमें यम ही विरुद्ध हो उठा हो। वह घोर रौद्रध्यानमें उतर आया। उसका समस्त व्रत और चारित्र नष्ट-भ्रष्ट हो गया। आत्मा आत्मासे विभक्त हो गई। उसी समय उसने अग्निपुंज छोड़ा। इस प्रकार उसने जो क्रोध ज्वाला मुक्त की वह शीघ्र ही नगरके सम्मुख पहुँची, चारों ओरसे वह नगर जलने लगा।

ायु नामका) पक्षी हुआ है। और इस समय तुम्हारे आश्रमके ानमें उपस्थित है।" यह सुनकर वह पक्षी अपने मनमें बहुत ताया। मैंने नाहक श्रमणसंघको यातना दी। इतने मात्रसे मेरा र हो गया। अब तो मैं बार-बार जिनकी शरणमें हूँ ॥१-१०॥

[१६] पक्षिराज जटायुके जन्मान्तर सुनकर राम और ाने पूछा "क्या फिर भव्य हो आप हमें भी कुछ व्रत दें और पर्वोका भी सुपथ दिखायें।" बलभद्र रामके वचन सुनकर रवरने पाँच अणुव्रतोंका नाम लेकर उन्हें शिक्षा प्रदान की। उन ोंने मुनिका अभिनन्दन किया। मुनियोंके आकाश-मार्गसे ान करनेपर जब लक्ष्मण घर लौटकर आया तो उसने कहा, चरज है यह सब क्या। घर रत्नोंसे भर गया है। तब न कहा कि यह सब हमें अपने आहार-दानका फल प्राप्त । है। तत्क्षण उन्होंने वे पाँच आश्चर्य उसे दिखाये कि जिनकी न्तर वर्षा हुई थी। तब पश्चात् लक्ष्मणने रामके वचन सुन- उन (बहुमूल्य) मणियोंका इकट्ठा कर लिया। फिर बटमराह ाट प्रचण्ड अपने भुजदण्डोंसे लक्ष्मणने रत्नपिंजरित उत्तम बनाकर तैयार किया ॥१-८॥

•

छब्बीसवीं संधि

इसमें मणियों और रत्नोंसे रचित कुतूहल-जनक वह रथ लगता था मानो सूर्यका ही रथ आकाशसे उड़कर धरती- ा गिरा हो ॥१-६॥

[१] सुन्दर और कान्तिपूर्ण तथा वनगजोंसे जुते हुए रथकी धुरापर लक्ष्मण बैठे हुए थे और भीतर राम सीता। इस प्रकार वे धरती पर लीलापूर्वक विहार कर रहे

एक दूसरेको रागसे देखकर, फिर कृपाणसे टुकड़े-टुकड़े कर देते । एक दूसरेको खील जाते । कुलयस्वामिनी इसी नरकमें पहुँची ॥१-२ ॥

[१४] और भी जिसने मन्त्रणा की थी, गुणहीन उसे असिपत्रवन नरक में डाल दिया गया। वहाँके तिनके तक बाणोंके समान हैं। और पेड़ भागके रगके हैं वहाँ तेलोहके कटीले माड़ हैं। तलवारकी तरह उसके पत्ते हैं। वह बड़ा विकराल, दुर्गम और दुस्तरणीय है तथा दुःखप्रिय है। तरह-तरहके अस्त्रोंके समान फलोंसे लदा हुआ है। वहाँ भी उसके पत्ते गिरते हैं उनसे शरीर निरन्तर छिन्न-भिन्न होता रहता है। उनसे नष्ट होकर, फिर वह वैतरणी नदीमें जा गिरता है जो अत्यन्त दुर्गन्धित पानी, पीप तथा मांस और रक्तसे भरी हुई है। उसका जल उष्ण, खारा और अत्यन्त विरस है। पीपमिश्रित वह जलवस्ती वहाँ पिलाया जाता है। इस तरह सन्ताप और दुःखोंको सहन करता हुआ जीव उसमें क्षण-क्षण सन्मता और मरता रहता है। मयवढन भी तब-तकके लिए सातवें नरकमें गया है कि जब-तक धरती, सुमेरु पर्वत और आकाश विद्यमान रहेंगे ॥१-८॥

[१५] इसके अनन्तर उन विरुद्ध नारकीयोंने राजाको भी ललकारा "तूने जो-जो खोटे आचरण किये हैं, उन्हें याद कर। तूने पाँचसौ मुनियोंको मारा, अब इसका दुःख भोग। यह कहकर उन्होंने उसे तलवारसे काट-कूट दिया। फिर बाणों और भालोंसे भेदा। उसके बाद करपत्रसे विरूप-छिद्र काटकर उसे गीध कुत्तों और शृगालोंको दे दिया। हाथीके पाँवके नीचे दबोचकर साँपोंसे लपेट दिया। फिर खण्डितकर पाँचसौ-पाँचसौ बार उसे यन्त्रसे पीड़ित किया। इस प्रकार कष्ट पूर्वक हजारों यातनाओंको सहन करता हुआ वह नाना योनियोंमें भटकता फिरा। यहाँ अब इस वनमें

पत्तु सिहरग्गु ताव जिण-भवणें । पुज्जिउ मच्चइ तुम्ब-पवणें ॥९॥

घत्ता

ताव पत्ति मणें पच्छुत्ताविउ जिह मइँ सयल-सहासु संतासिउ ।
पत्तिय-भत्तें अब्भुद्धरणउ महु मुणइहों वि जिणवर सरणउ ॥१०॥

[१९]

जं आपच्छिउ पत्ति-भत्तउ । ताम्रइ-कण्ठें पभणिउ मुणिवरु ॥१॥
'तो वरि अम्हइँ धरइँ धरासणु । पत्तियएँ सुरण-पत्तु वरिसासणु' ॥२॥
ते वक्खाणों अप्पणु सुमेल्लिवि । पञ्चमुणिवर अण्णारेण्णिवि ॥३॥
दिण्ण परिक्खिय तिहि मि वणेहिं । पुणु अहिणन्दिय एक्क-मणेहिं ॥४॥
मुणिवर गय आयासहों तावेंहिं । लक्खणु सयलु पराइउ तावेंहिं ॥५॥
'राहव एउ काइँ अच्छरियउ । जं मन्दिरु मणि-रयणेंहिं भरियउ' ॥६॥
तेण वि कहिउ सव्वु जं वित्तउ । 'मइँ पव्वार-दाण-फलु पत्तउ' ॥७॥
लक्खणें पउमचरिउ पयरिसियउ । मेहहिं जिह जलधरउ पवरिसियउ ॥८॥

घत्ता

रामहों अप्पणु सुवेवि अक्खेंतें पेक्खवि मणि-रयणइँ वक्खन्तें ।
वउ पारिय-कम्महिं पच्चेंहिं रहवइ वरिउ स वं सु वन्धवेंहिं ॥११॥

•

[३६ छत्तीसमो संधि]

रहु कोहुाणयउ मणि-रयण-सहासेंहिं भरियउ ।
गयणहों रविकरेंहिं व दियवर-समासु पडियउ ॥

[१]

तहिं तेहएँ सुन्दरें सुप्पवरें । आरण्ण महागय जुत्त रहें ॥१॥
पुरें अक्खणु रहवरें रामरहिं । सुर-कम्पएँ पुणु णिहरिन्ति मंहि ॥२॥

(जटायु नामका) पक्षी हुआ है। और इस समय तुम्हारे आश्रमके आँगनमें उपस्थित है।" यह सुनकर वह पक्षी अपने मनमें बहुत पछताया। मैंने नाहक श्रमणसंघको यातना दी। इतने मात्रसे मेरा उद्धार हो गया। अब तो मैं बार-बार जिनकी शरणमें हूँ ॥१-१०॥

[११] पक्षिराज जटायुके जन्मान्तर सुनकर राम और सीताने पूछा "तो फिर अच्छा हो आप हमें भी कुछ व्रत दें और इस पक्षीको भी सुपथ दिखावें।" बलभद्र रामके वचन सुनकर मुनिवरने पाँच अणुव्रतोंका नाम लेकर उन्हें दीक्षा प्रदान की। उन तीनोंने मुनिका अभिनन्दन किया। मुनियोंके आकाश-मार्गसे प्रस्थान करनेपर जब लक्ष्मण घर लौटकर आया तो उसने कहा, "अचरज है यह सब क्या। घर रत्नोंसे भर गया है।" तब रामने कहा कि यह सब हमें अपने आहार-दानका फल प्राप्त हुआ है। तत्क्षण उन्होंने वे पाँच आश्चर्य रत्न दिखाये कि जिनकी निरन्तर वर्षा हुई थी। तब बलवान् लक्ष्मण रामके वचन सुनकर उन (बहुमूल्य) मणियोंका इकट्ठा कर लिया। फिर बटप्ररोह की तरह प्रबल अपने भुजदण्डोंसे लक्ष्मणने रत्नविजड़ित उत्तम रथ बनाकर तैयार किया ॥१-६॥

•

छत्तीसवीं संधि

हजारों मणियों और रत्नोंसे रचित कुतूहल-जनक वह रथ ऐसा लगता था मानो सूर्यका ही रथ आकाशसे छूटकर धरती-पर आ गिरा हो ॥१-६॥

[१] सुन्दर और कान्तिपूर्ण, तथा यनगजोंसे जुते हुए उस रथकी धुरापर लक्ष्मण बैठे हुए थे और भीतर राम और सीता। इस प्रकार वे धरती पर क्रीड़ापूर्वक विहार कर रहे

त कण्णकण्ण-माइ मुएँ वि गय । कें वि कहि मि णियडासिय मत्त मय ॥३॥
कत्थ वि पमत्त गिरि-गुहेंहिँ । मुत्ताहलि विक्खिरन्ति णहेंहिँ ॥४॥
कत्थ वि वग्घाविय सउज सस । णं भवियहिँ जड्डेंवि पाव गय ॥५॥
कत्थ वि मऊर णच्चन्ति वणें । णावइ णडवा सुणइ-जणें ॥६॥
कत्थ इ हरिणइँ भय-भीयाइँ । संसारहों जिह पव्वइयाइँ ॥७॥
कत्थ वि णाणाविह-रुक्ख-राइ । णं महि-कुलवहुअहें रोम-राइ ॥८॥

घत्ता

तहों पट्टणहों अमाएँ दीसइ जउणाविलि ।
णावेँ कोक्कइ पिय-गमण णाइँ वर-कामिणि ॥९॥

[२]

कोसल्लहें तीरेण सत्थियइँ । सम-मण्डवें णम्पि परिट्ठियइँ ॥१॥
घर जें घर जें सरयहों अण्णमणेँ । सच्छाय महादुम जाय वणें ॥२॥
वण-णलिणिहें कमलइँ वियसियइँ । णं कामिणि-वयणइँ पहसियइँ ॥३॥
एक्केक्क णिरन्तर-णिम्माएँण । वण-कमलें हिँ पवण-सहाएँण ॥४॥
अहिसिञ्चें वि तक्खणें वसुह-सिरि । णं घविय भवाहिणि कुम्भइरि ॥५॥
तहिँ वेलएँ सरए सुहावणएँ । परिभमइ जणासु काणणएँ ॥६॥
कोसल्ल सिरिकीसुइ गहिय-कर । गयजम्त मत्त मायङ्ग पर ॥७॥
वणें ताम सुभन्तु वाउ भइउ । जो पारियाय-कुसुमब्भहिउ ॥८॥

घत्ता

कंहिउ ममर जिह वें पाए सुरहुँ सुयन्धें ।
धाइउ मधुमहणु जिह मउ गणियारिहें गन्धें ॥९॥

[३]

मायन्दहें परिभोसिय-सर्णेण । संघण्णउ कलियउ अक्कन्तेण ॥१॥
णं सवण-बिम्बु आवासियउ । णं मयरद्धु वाहें तासियउ ॥२॥

थे। कृष्णा नदी पार करने पर कहीं उन्हें मद झरते वनगज दिखाई पड़े और कहीं सिंह जो गिरि-गुहाओंमें अपने नखोंसे मोती बखेर रहे थे। कहीं पर सैकड़ों पक्षी इस भाँति चह रहे थे माना अटवीके प्राण बचकर आ रहे हों। कहींपर वनमोर इस प्रकार नृत्य कर रहे थे मानो युवतीजन ही नाच रहा हो। कहींपर भयभीत हरिन इस प्रकार खड़े थे मानो संसारसे भीत संन्यासी ही हों। कहींपर नाना प्रकारकी वृक्ष-मालाएँ थीं जो मानो धरारूपी वधूकी रोम राजी ही हो। ऐसे उस दण्डक वनके आगे उन्हें क्रौंच नामकी नदी मिली वह सुन्दर कामिनीकी मन्थर-गतिसे बह रही थी ॥१-६॥

[२] क्रौंचके तटपर आकर वे एक लतागृहमें बैठ गये। (इतनेमें) शरद्के आगमनसे वनवृक्षोंकी कान्ति और छाया (सहसा) सुन्दर हो उठी। नई नलिनियोंके कमल ऐसी हँसी बखेर रहे थे मानो कामिनीजनोंके मुख ही रसमसान हों। (और वह दृश्य ऐसा लगता था) मानो अपने निरन्तर निकलनेवाले घनरूपी धवल कलशोंसे आकाशरूपी महागजन (शरद्कालीन) वसुधाकी सौन्दर्य लक्ष्मीका अभिषेककर उस भयोधिनीका शुभ कार पर्वतपर अभिषिक्त कर दिया हो। ऐसी उस सुहावनी शरद्ऋतु में मत्तगजोंको पकड़नेवाले लक्ष्मण, अपना धनुषबाण लिये घूम रहे थे। (इतनेमें अचानक) पारिजात कुसुमोंके परागसे मिश्रित सुगन्धित पवनका झोंका आया। उस सुगन्धित पवनसे, भ्रमरकी तरह आकृष्ट होकर कुमार लक्ष्मण उसी तरह दौड़े जिस प्रकार हाथी हथिनीकी गंधासे (आकृष्ट होकर) दौड़ पड़ता है ॥१-६॥

[३] थोड़ी दूर चलनेपर सम्मुख मन लक्ष्मणको एक बड़ा रम्य भामक स्थान दीख पड़ा। वह ऐसा जान पड़ा मानो स्वयम्-

समूह ही ठहरा हो, या व्याघ्रसे पीड़ित मदगज ही हो। तब अत्यन्त निकट आकर, उसने आकाशमें लटका हुआ एक खड्ग देखा। यमकी भौंहकी तरह भयानक वह, पुष्पमालाओंसे ढका हुआ था। वह मानो, लक्ष्मणका उद्धारक और शम्बूक कुमारके लिए यमकरण था। यह वह सूर्यहास खड्ग था जिसके तेजसे चन्द्रमा भी अपनी आभा छोड़ देता है, जिसकी पैना धारमें कालदृष्टि बसती है यम कृतान्त भी जिससे सन्त्रस्त हो उठते हैं। लक्ष्मणने हाथ फैलाकर उस खड्गको उसी प्रकार ले लिया जिस प्रकार कोई विट परपुरुषगामी स्त्रीको पकड़ ले। तब खेल-खेलमें कुमार लक्ष्मणने उस खड्गसे वंशस्थलपर चोट की थी उसमेंसे मुकुट और कुण्डल सहित एक सिर लुढ़क पड़ा ॥१–६॥

[४] उस मूक सिरकमलको देखकर लक्ष्मण दोनों हाथसे अपना सिर धुनकर पछताने लगा "मुझे धिक्कार है कि व्यर्थ ही मैंने बत्तीस लक्षणोंसे युक्त एक आदमीका वध कर दिया है।" जब उसने उस वंश-समूहको देखा उसमें एक सफ़ेद मनुष्यका धड़ दिखाई दिया। उसे देखकर खड्गधर लक्ष्मणने सोचा शायद कोई मायाका रूप धारणकर इसमें बैठा था। यह विचारकर वह पलभरमें अपने डेरेमें पहुँच गया। तब रामने पूछा "हे राम, यह खड्ग तुमने कहाँ पाया तुम कहाँ गये थे।" तब लक्ष्मणने जिस तरह वंशस्थल देखा था और कुमारका सिर काटकर वह खड्ग प्राप्त किया था वह सब हाल कह सुनाया। इसपर राम बोले, "अरे तुमने इस तरह (उसे) काट डाला, निश्चय ही तुमने यमकी बाढ़ उखाड़ की है। वह कोई मामूली व्यक्ति नहीं था" ॥१–६॥

[५] यह बात सुनते ही सीतादेवी काँप-सी गई। वह बोली, "चल, लतामंडपमें घुस चलें। इस वनमें प्रवेश करना शुभ

नहीं है। कुमार लक्ष्मण तो दिनोंदिन वहीं घूमते रहते हैं जहाँ युद्ध और विनाश (की सम्भावना) रहती है। हाथ, पैर, सिर और शरीरका नाश करनेवाले इन युद्धोंसे मुझे बहुत विरक्ति हो उठी है। इससे मुझे उतना ही सन्ताप होता है जितना कलिकाल और कृतान्तसे।" यह सुनकर कुमार लक्ष्मणने कहा—"जिसमें पुरुषार्थ नहीं वह राजा कैसा? मनुष्यकी कीर्ति दान, सुकवित्व, आयुध और शासनसे ही फैलती है वैसे ही जैसे जिनवरसे यह यह संसार धवल बनता है। इनमेंसे जिसके मनका एक भी अच्छा नहीं लगता वह मर क्यों नहीं जाता वह व्यर्थ ही यमका भाजन बनता है॥१-५॥

[६] इसी बीच चन्द्रनखा इधरसे उछलती हुई, वहाँ आई। वह रावणकी सगी छोटी बहन और पातालंलकाके राजा खरकी पत्नी थी। "चार दिन ऊपर बारह वर्ष हो चुके हैं, दूसरे ही दिन खड्ग आकाशसे गिरकर मेरे पुत्रके हाथमें आ जायगा" मधुर स्वरमें यह गुनगुनाती हुई नैवेद्य दीप धूप वगैरह पूजाका सामान हाथमें लिये जैसे ही वह सज्जनोंके मन और नेत्रोंका आनन्ददायक अपने पुत्रके निकट पहुँची वैसे ही उसने खड्गसे छिन्न उस वंश स्थलको गिरा हुआ देखा। कुमारका मुकुट-कुण्डलसे सहित कटा हुआ सिर देखकर उसे ऐसा जान पड़ा मानो किसीने आर्त-आर्त वन-कमलको तोड़कर फेंक दिया हो॥१-९॥

[७] (छिन्न) सिरकमलको देखकर वह भयभीत हो उठी। रोती हुई वह मूर्छित होकर धरतीपर गिर पड़ी। क्रन्दन करती रोती और वेदनासे भरी हुई वह एकदम निर्जीव और निश्चेतन हो उठी। फिर बड़े कष्टसे उसने अपना मन समझाया। उसका मुख कमल कातर हो रहा था आँखें भयसे मुकुलित थीं।

मूर्च्छाने एक प्रकारसे उसकी बहुत बड़ी सहायता की जो उसके गमनशील प्राणोंको बचा लिया। उठकर वह फिर दोनों हाथ पीटने लगी। कभी वह सिर पीटती और कभी छाती। कभी वह (अपने पुत्रको) पुकार उठती और कभी धाड़ मारकर रोने लगती। रोती गिरती पड़ती, उठती और फिर वह क्रन्दन करने लगती। इस तरह बार-बार, अपनेको प्रताड़ित करती और कभी धरतीपर सिर पटक देती। उसके रोदनका स्वर आकाशमें गूँज रहा था। चारों ओर लग हुए वृक्ष, मानो अपनी डालोंसे यह संकेत कर रहे थे कि "चन्द्रनखा रो मत" और भाईकी तरह उसे सहारा दे रहे थे ॥१-६॥

[८] तो भी वह, किसी भी प्रकार अपने आपको ढाढ़स नहीं दे पा रही थी। रोती हुई वह बार-बार कह उठती "हे पुत्र! तुम चिर प महानिद्रामें क्यों निमग्न हो हे पुत्र! मुझसे क्यों नहीं बोलते हे पुत्र! तुमने मौका यह रूप क्या दिखाया, अहा! अपने रूपको तुम फिरसे दिखा दो हे पुत्र! मुझसे मीठी बातें करो। हे पुत्र! तुम्हारे वस्त्र रक्तरंजित क्यों हैं! हे पुत्र आ, और मेरी गोदमें चढ़। हे पुत्र अपना मुखकमल मेरे मुँहसे लगा। हे पुत्र! आ और मेरा दूध पी हे पुत्र मुझे आलिंगन दे जिससे मैं मनमें बधावा नाच सकूँ मैंने जिसके लिए, तुझे नौ माह पेटमें रखा, मेरे उस मनोरथको सफल कर। हा हा हे शठ दुष्ट दैव, तूने मेरे पुत्रको कहाँ ले जाकर रख दिया। मैं उसे कहाँ खोजूँ? कृतान्तने यह सब क्या किया हे देव! मैं किस दिशामें जाऊँ? ॥१-६॥

[९] आज सचमुच विधाताने पातालंकार नगरका बहुत बड़ा अमंगल किया है। आज बान्धवजनोंका धीरज टूट गया है आज रावणकी मानो एक भुजा टूट गई है। आज खरका रोदन भी

गया, आज सचमुच शत्रुओंकी पड़ती होगी, हा आज उस यमका सिर क्यों न फूट गया जिसने मेरे पुत्रका हमेशाके लिए अपलाप कर दिया। वह खड्ग किसी मामूली आदमीके लिए नहीं था, किसी अर्ध चक्रवर्तीके लिए था, क्या उसीने मणिमय कुण्डलोंसे मण्डित गण्डस्थलवाला उसका सिरकमल काटकर गिरा दिया है। वह बार-बार रवि अग्नि, वरुण और पवन आदि देवोंको उसे दिखाकर कह रही थी "अरे तुम लोग मेरे लालको नहीं बचा सके। तुम सबने मिलकर इसकी उपेक्षा की। परन्तु इसमें तुम्हारा दोष नहीं। दोष है मेरा शायद दूसरे जन्ममें मैंने किसी दूसरेको सताया होगा" ॥१-६॥

[१०] इस प्रकार शोकातुर वह, जिस किसी प्रकार ईर्ष्यासे भरी हुई नटीकी तरह ज्ञान पड़ती थी। उसकी आँखें डरावनी मुख सूखा हुआ और रूक्ष। वह प्रलयकालकी भाँति विकराल थी। पड़कर वह सूर्य-मण्डलमें जा मिला और यमकी जिह्वाकी तरह किलकिलाती हुई वह बोली—"जिसने आज, खरके नन्दन, रावणके भानजे और मेरे पुत्रकी हत्या की है, उसके जीवनका यदि मैं हरण नहीं करूँ तो आगकी लपटोंमें प्रवेश कर लूँगी।" यह प्रतिज्ञा करके वह ज्यों-ही धरतीकी ओर मुड़ी त्यों-ही उसे लता-मंडपमें दो आदमी उसे दिखाई दिये मानो वे धरतीके ही उठे हुए दो हाथ हों ? उनमेंसे एक, हाथमें तलवार लिये हुए दिखाई दिया। उसने सोचा शायद इसीने मेरे पुत्रको मारा है। इस तलवारसे इसने मेरे कुलकी प्राचीरको ध्वस्त किया है बाँसोंके साथ ही मेरे कुमारका सिर भी काटकर गिरा दिया है ॥१-९॥

[११] वनके बीचमें जैसे ही उसने उन दोनों नरोंको देखा वैसे ही उसका पुत्रवियोगका क्रोध चला गया। और अब वियोग

महाभटने उसपर बाण छोड़ दिया। कामदेव उसे नचाने लगा। वह सहसा पुलकित हो उठी। वह पसीना-पसीना हो गई। वह सन्तप्त होने लगी, उसके ज्वरकी पीड़ा बढ़ गई। कभी वह मूर्छित होती तो कभी उच्छ्वास छोड़ती। कभी रुन-झुन कर उठती। इस प्रकार वह विकारसे भग्न हो उठी। उसने मनमें सोचा 'अच्छा मैं अब अपने इस रूपको छिपा लूँ और सुर-सुन्दरीका नया रूप ग्रहण कर लूँ तब इस उत्तम लतामण्डपमें प्रवेश करूँ। इनमेंसे एक-न-एक अवश्य मुझसे विवाह करेगा।" यह विचारकर उसने तत्काल अत्यन्त सुन्दर रूप बना लिया। वह अब ऐसी लगने लगी मानो कामदेवने ही साक्षात् कोई कौतुक किया हो। कुछ दूरीपर जाकर वह धाड़ मारकर रोने लगी। उसके क्रन्दनको सुन-कर सीतादेवीने रामसे कहा,—"आर्य देखो तो यह लड़की क्यों रो रही है, जान पड़ता है जो दुःख कायसे अन्तरित था, वही अब इसपर प्रकट हो रहा है" ॥१-९॥

[१२] तब बलभद्र रामने ऊँचे स्वरमें पुकारकर रोती हुई उस बालासे पूछा 'सुन्दरी बताओ तुम क्यों रो रही हो? क्या किसी स्वजनका दुःख आ पड़ा है या कभी किसीने तुम्हारा पराभव कर दिया है।" यह वचन सुनकर वह बाला बोली—"मैं पापिनी, दैवसे दयनीय भाई-बन्धुओंसे हीन एक दम अनाथ हूँ। इसी लिए रो रही हूँ। इस वनमें भूल गई हूँ। दिशा मैं जानती नहीं और न ही मैं यह जानती हूँ कि कौन मेरा देश या प्रान्त है। कहाँ जाऊँ समझमें नहीं आता। मैं जैसे चक्रव्यूहमें पड़ गई हूँ। अब मेरे पुण्यसे तुम अच्छे आ गये हो, यदि मेरे ऊपर आपका मन हो तो दोमेंसे कोई एक मेरा वरण कर ले। यह वचन सुनते ही

रामने फौरन मुट्ठी कर ली। मुँहपर दोनों हाथ रखकर, भौंहें टेढ़ीकर, उन्होंने अपना मुख फेर लिया और कहा—"वधू, यह सुन्दर न होगा। तुम लक्ष्मणका मुख ओढ़ो" ॥१-६॥

[१३] राम सोचने लगा—"जो राजा अत्यन्त सम्मान करने वाला होता है उसे अवश्य भय और सामर्थ्यका हरण करनेवाला होना चाहिए। जो दान देनेमें अधिक ममत्व रखता है उसे अवश्य ही विषभर जानो। जो मित्र अकारण घर आता है उसे अवश्य ही हरण करनेवाला दुष्ट समझो। जो पथिक मार्गमें झूठा स्नेह जताता है उसे अवश्य ही अहितकारी चोर समझो। जो नर जल्दी-जल्दी चापलूसी करता है उसे अवश्य सीमाहरण करने वाला समझो। जो स्त्री कपटसे भरी हुई चाटुता करती है वह निश्चय ही सिरकमल काटेगी। जो कुल-वधू बार-बार शपथ करती है वह अवश्य सैकड़ों बुराइयाँ करनेवाली है। जो कन्या होकर भी पर-पुरुषको वरण करती है क्या वह बड़ी होनेपर ऐसा करना छोड़ देगी। लौकिक धर्मकी भाँति जो मूढ़ इन बातोंमें विश्वास नहीं करता, वह अवश्य ही पग-पगमें अप्रिय पाता है ॥१-६॥

[१४] तब कमल-मुख रामने सोच-विचारकर लक्ष्मणसे कहा—"मेरे पास एक सुन्दर स्त्री है, तुम अनेक लक्षणोंसे युक्त हो चाहो तो इसे ले लो।" जब रामने अत्यन्त संक्षेपमें यह कहा तो लक्ष्मणने भी तुरन्त बात ताड़ ली। उन्होंने कहा—"नहीं मैं तो सुलक्षणा स्त्री लूँगा जिसका सामुद्रिक-शास्त्रोंमें उल्लेख है। जिसकी आँखें घर अमल हों। हाथ नख अंगुली भौंहें लम्बी हों। जिसके पद आरक्त हों और (गति) गजेन्द्रकी भाँति दर्शनीय हो जो सुनहले रंगकी सम्माननीय हो। जिसका भाल और नाक उन्नत

हो, वह तीन-तीन पुत्रोंकी माता होती है। जिसके पैर और स्वर काककी तरह हों और पैरकी अंगुलियाँ बराबर हों, और श्यामा वर्णिक हो वह तापसी होती है। जो हंस-चरा, और वीणाके उत्तम स्वरवाली हो। मेरे रक्तकी भाँति अत्यन्त कान्तिमती हो तथा जिसकी नाभि, सिर और स्तन सुन्दर तथा सुडौल हों वह बहुपुत्र-वती, धनवती और कुटुम्बवाली होती है। जिसकी बाईं हथेलीमें चक्र, अंकुश और कुण्डल चमके हों, रोमराजि साँपकी तरह मुड़ी हुई हो ललाट अर्धचन्द्रकी तरह सुन्दर हो, दाँत मोतीकी तरह चमकते हों, इन लक्षणोंसे युक्त वनिताके विषयमें यह कहा जाता है (सामुद्रिक-शास्त्रमें) कि वह चक्रवर्तीकी पत्नी होती है और उसका पुत्र भी चक्रवर्ती होता है ॥१-९॥

[१४] परन्तु राघव, यह वधू कुलक्षणी है। यह मैं नहीं सामुद्रिक शास्त्र कह रहा है। जिसकी जंघा और पिंडरी स्थूल हो आँखें चपल, और जो चलनेमें उतावली करती हो, जिसके पैर कछुएके समान ऊँचे हों अंगुलियाँ विषम और बाल कपिल वर्णके चंचल हों सारे शरीरमें रोमराजी उठी हुई हो उसके पुत्र और पति दोनों मर जायेंगे। जिसकी कमर लम्बित और भौंहें मिली हुई हों वह रूप यह निश्चय ही पुंश्चली होती है, दरिद्र, तीतर या कबूतर-सी आँखवाली स्त्री निश्चय ही नरमक्षिणी होती है। काकके समान दृष्टि और स्वरवाली जो हो वह अयश हो दुःखकी पात्र है। जिसकी नाक भाग कुछ चिपटी या लजिता होती है, बहुत विस्तारसे क्या जिसके बाल कमर तक नहीं होते और जो मसाली होती वह बहुत भयावना राक्षसिना होती है। जिसकी कमर पतली और कुचि मत्त गजराज की भाँति हो, ऐसी कन्यासे मैं विवाह नहीं कर सकता।" यह सुनकर चन्द्रनरनाग अपने

मनमें सोचा तो क्या मैं अपने स्वभावपर लज्जित होऊँ ? कभी नहीं। यदि मैं सच्ची निशाचरी होऊँगी तो अवश्य तुम्हारा भाग करूँगी ॥१-७॥

•

सैंतीसवीं सन्धि

तब चन्द्रनखा एक दम क्रोधाधीन होकर गरजती हुई बोली, "मरो मरो, मैं तुम्हारी बलि भूतोंको दूँगी। अपने रूपका विस्तार करती हुई रण-रससे आक्रोश वह, राम और रावणकी साक्षात् कलहकी भाँति जान पड़ती थी।

[१] बार-बार बढ़ती हुई वह कभी खिलखिला पड़ती और कभी आगकी ज्वालामाला छोड़ने लगती। कापालकसे चलती हुई और भयभीषण वह ऐसी लगती थी मानो वसुधाकी बाधा ही उत्पन्न हो गई हो। या रवि और कमलोंके लिए आकाश-गंगा ऊपर उठती चली आ रही हो। या वायुरूपी दहीको मथ रही हो, या तारारूपी सकड़ों बुदबुद बिखर गये हों, या शशिरूपी नवनीतका पिण्ड लेकर ग्रहरूपी बच्चका पीठा लगानेके लिए दौड़ पड़ रही हो। अथवा बहुत विस्तारसे क्या मानो वह आकाशरूपी शिलाको उठा रही थी या राम और लक्ष्मण रूपी मावियोंके लिए, धरती और आसमान रूपी सीपोंको एक क्षणमें ढाकना चाहती थी। (यह देखकर) रामने लक्ष्मणसे कहा— 'बस बस तुम इस वधूके चरित्रको देखो।' यह सुनकर तृण बराबर भी नहीं डरती हुई चन्द्रनखा बोली "जिस तरह तुमने मेरे पुत्रको मारकर वह खड्ग लिया है उसी तरह तुम तीनों मारे और खाये जाओगे, अपनी रक्षा करो" ॥१-९॥

[२] तब उसके मसुद्वायने वचन सुनकर दृढ़ कठोर कठिन और सन्तापकारी लक्ष्मणने अंगुली और अँगूठेसे दबाकर उसे तलवार दिखाई। उसका मण्डलाग्र थर-थर काँप रहा था, मानो पतिके भयसे सुकलत्र ही थर-थर काँप रही हो। अनवरत मदजल झरते नरनाशक गजोंके कुम्भस्थलोंका विदीर्ण करनेसे उस खड्गकी धारमें आ मोती समूह लग गया था मानो वही उसके प्रस्वेदकण रूपी चिनगारियाँ थीं। उस वैसे खड्गको लेकर लक्ष्मणने विद्याधरोंसे कहा "यह वही सूर्यहास खड्ग है जिसने तुम्हारे पुत्रके प्राण हरण किये, यदि कोई (तुम्हारा) मनुष्य रण-भार उठानेमें समर्थ हो तो उसके लिए यह धर्मका हाथ बढ़ा हुआ है।" यह सुन सत्-पत्नी चन्द्रनखा बोली "यह काम क्या नहीं हो सकता। इसे आज कौन मुझे मार या हटा सकता है" यह कहकर गरजती हुई और धरतीको कंपाती हुई बिलपती वह, अतुल दृढ़ खर और दूषणके निकट पहुँची ॥१-९॥

[३] जब वह उनके पास पहुँची तो उसका मुख दीन था वह रो रही थी और आँखोंसे मेघधाराकी तरह अश्रुधारा प्रवाहित थी। अपनी लम्बी केशराशि उसने कटिभाग तक ऐसी फैला रक्खी थी मानो सर्पसमूह चन्दनलतासे लिपट गये हों। ढाकके चन्द्रकी तरह अपने नखोंसे उसने अपने आपको विदीर्ण कर लिया था। रक्त-रञ्जित उसके कान्त स्तन ऐसे लगते थे मानो कुंकुममण्डित स्वर्णिम कलश हों। या मानो रामलक्ष्मणकी कीर्ति चमक उठी हो या मानो खर दूषण और रावणकी भवितव्यता हो हो, मानो निशाचरके लिए दुःखकी खान हो मानो मन्दोदरीके पतिकी हानि हो या मानो लङ्कामें भ्रमरा करती हुई भाराङ्गा ही हो। वह पलभर में पातालनगरी जा पहुँची और अपने भवनमें ढाढ़ मारकर ऐसे

पाने जगी जैसे खर-दूषणके लिए मारी ही घुस पड़ी हो। विलाप सुनकर, अपनी पत्नीको देखनेके लिए खर इस तरह मुड़ा जिस तरह संहार और प्रलय करनेके विचारसे कृतान्त मुड़कर देखता है ॥१-४॥

[४] उसका क्रन्दन सुनकर कुलभूषण दूषणने चन्द्रनखासे पूछा, "कहो किसने (आज) यमके नेत्र उखाड़े, कहो किसने कालका मुख देखा है ? कहो किसने कृतान्तका वध किया, कहो मेरुके स्कन्धको किसने चपेटा ? कहो पवनसे पवनको किसने बाँधा, पवनमें आगसे आगको कौन जला सका ? कहो वज्रसे वज्रका भेदन किसने किया ? जलसे जलको धारण आजतक किसने किया। सूर्यको उष्णतासे आजतक कौन तपा सका ? कहो समुद्रकी प्यास किसने शान्त की ? साँपके फनसमूहको किसने तोड़ा ? इन्द्रके वज्रका आघात कौन सहन कर सका ? कहो वनकी आगको कौन बुझा सका है ? कहो रावणके प्राण कौन छीन सकता है ?" (यह सुनकर) आँखोंमें आँसू भरकर चन्द्रनखाने कहा ! "राजन् मेरा जनप्रिय सुन्दर पुत्र कुमार शम्बूक विनयके समान अपने प्राणोंको लेकर मर गया" ॥१-४॥

[५] अपने पुत्रकी सन्ताप, शोक और वियोग उत्पन्न करनेवाली मृत्युकी बात सुनकर म्लानमुख गलिताभ दुःखातुर और भयकातर खर रो पड़ा। (वह विलाप करने लगा) हे अतुल शरीर आज मेरा बाहुदण्ड ही टूट गया है, आज मेरे मनमें बड़ी भारी आशंका उत्पन्न हो गई है। आज पातालंकाका सूनी-सूनी लग रही है। हे पुत्र दशसिंह रावणके लिए मैं अब क्या उत्तर दूँगा।" इसी बीचमें एक त्रिपुण्ड्रधारी बहुबुद्धि महापार्श्व

'है भरवइ मूढा कवणि कारें । संसारें भमन्तउँ सुय सयारें ॥७॥
मायाएँ सुमतेँ गयाइँ अतेँ । धो सयल राम गमेवि ताहँ ॥८॥

घत्ता

कहों घरु कहों परियणु कहों सम्पय-बन्धु माय बप्पु कहों पुत्तु तिय ।
में कहें रोवहि अप्पउ सोयहि भव ससारहों एह किय' ॥९॥

[६]

तं सुणेवि सुणवि समन्थिउ राउ । पडिबोहिउ जिण-वरिन्दें घराउ ॥१॥
'कहें केम वहिउ महु तणउ पुत्तु' । त वयणु सुणेवि चवियाएँ वुत्तु ॥२॥
'सुणु णरवइ सुणामें सुप्पहेसों । सुम्मोह पइ पहुण पवेसें ॥३॥
पव्वाणय कयवम्मय कमलें । तहिं लेहएँ सम्पय-कमें विवाहें ॥४॥
व मणुस थिउ सोम्हार वीर । मेहारविन्द सल्लिवइ सरीर ॥५॥
कोवग्ग-सिहोवुर गयविय-हत्थ । पर चक्क-चक्क-रयणउम समत्थ ॥६॥
तहिं पत्तु थिहु तियलउँ पसमु । तें कहिउ तम्पु हउ पुत्तु अम्मु ॥७॥
अप्पु वि भयमेयहि देव देव । कमलाउ वियारिउ पेच्छु केम ॥८॥

घत्ता

तवें वरें वि समन्हो थाइ सुमन्ती कह वि ण सुय तेम मरेंण ।
जिण-पुण्णेहिँ जुसी णइ-सुर-हत्थी वकिवि वेम सरेँ कुमरेंण' ॥९॥

[७]

तं वयणु सुणेवि पहु-अयणुहिँ । उवसमियउ अप्पोहिँ रायपुहिँ ॥१॥
मासर पवर पवर मणाएँ । पर पुवइँ कम्मइँ अवरुयाइँ ॥२॥
मणुउ व समिच्छिय सुपरिसेण । अप्पउ विहरेवि थाय तेण' ॥३॥
पत्थन्तरेँ मिलइ मिलइ जाम । णइ मिपर-वियारिय थिउ ताम ॥४॥

कहा, "हे मूर्ख राक्षस ! तुम रोते क्यों हो, संसारमें तुम्हारे सैकड़ों पुत्र घूम रहे हैं इनमें जो मर गये हैं उनको कौन गिन सकता है। किसका घर, किसके परिजन, किसकी सम्पत्ति और धन, आखिर तुम रोते किस लिए हो अपनेको शोकमें मत डालो, संसारका यही क्रम है ॥१-६॥

[६] बहुत कठिनाईसे सचेत होनेपर खर अपनी पत्नीसे कहा, "मेरे पुत्रको किसने मारा ?" यह सुनकर वह बोली, "दुर्गम और दुष्प्रवेश्य गज-सपपसे आकुल प्रदेश तथा लाखों सिंहोंसे विकराल उस वनमें मैंने दो प्रचण्ड वीर देखे हैं। उनमेंसे एकके शरीरका रंग मेघवर्ण है और दूसरेका कमलके रंगका। धनुषबाण हाथमें लिये हुए वे दोनों शत्रुसेनाको परास्त करनेमें समर्थ हैं। उनमेंसे एकके पास सुन्दर कृपाण थी उसीने उस खड्गको लिया है और मेरे पुत्रका वध भी किया है और हे देव ! यह भी तो सुनिए। उसने किस तरह मेरा वक्षस्थल विदीर्ण कर दिया है। वनमें गाली और डाह मारती हुई भी मुझे पकड़कर किसी तरह वे मेरा मान भर नहीं कर पाये। नखाग्रसे विदीर्ण होने पर भी मैं किसी प्रकार अपने पुण्योदयसे उसी प्रकार बच सकी जिस तरह सरोवरमें कमलिनी हाथीसे बच जाय ॥१-६॥

[७] चन्द्रनखाके वचन सुनकर, सयानी और जानकार दूसरी-दूसरी रानियोंको यह लगते देर नहीं लगी कि यह सब इसी (बेलके समान स्थूलस्तनी) कुल्टाका क्रम है। शायद उस पुरुषने इसे नहीं चाहा होगा इसी कारण अपनी ऐसी गत बनाकर यह यहाँ आ गई। भरोंसे क्षत-विक्षत चन्द्रनखा सारकी ऐसी लगी कि मानो लाल पलाशलता हो, या भ्रमरोंसे आच्छन्न

रक्तकमलोंकी माला हो। रक्ताभ भागसे फटे हुए उसके अधर ऐसे लगते थे मानो फागके महीनेमें सूर्योदय हुआ हो।" यह सब स्वर सुनकर खर उसी तरह भड़क उठा जिस तरह गजका गन्ध पाकर सिंह भड़क उठता है। उस योधाकी भृकुटि भयंकर और भास्वर हो उठी। मानो जगमें प्रलय ही आना चाहता हो। दूषण काँपकर आपसमें कहने लगे "अरे, खर आज किसपर कुपित हुआ है।" तदनन्तर शशि और यशके साथ रथमें चढ़कर खरने कहा कि मैं भी उस पामरका कपालित करूँगा ॥१-८॥

[८] इस प्रकार उसके उठते ही भट-समूह उठ खड़ा हुआ। पल-भरमें उसके दरबारमें खलबली मच गई। एक दूसरेको चपेटते और चूर-चूर करते हुए योधा वहाँ पहुँचने लगे मानो समुद्रने अपनी मर्यादा छोड़ दी हो। सिरसे सिर पैरसे पैर और हाथसे हाथ टकराने लगे। मुकुटसे मुकुट और मरकतोंसे मस्तक भग्न हो उठे। कितने ही योधा दूसरेके बराबर परवाह न करते हुए उठे। दीनता या मानके कारण वे नमस्कार तक नहीं कर रहे थे यदि कुपणतावश कोई झुकता भी तो गिरकर सेनाके भारके कारण उठ ही नहीं पाता। इस प्रकार अहङ्कारसे भरे, बढ़ तैयार होते हुए योधाओंको रोककर दूषण बोला "यदि तुम मेरे होकर एक भी पैर रखोगे तो राजाकी अवज्ञा होगी, अपना विनाश मत करो। तुम लोग बैठ जाओ। जिसने बलपूर्वक तलवार (सूर्यहास) का हरण किया और शम्बूक कुमारका सिरकमल तोड़ा है विधाता पारङ्गत क्या तुम लोगोंमें होगा ॥१-९॥

[९] इसलिए अच्छा यह हो कि तुम लोग हमारी बुद्धिके अनुसार चलो क्योंकि बिना सारके नाश बढ़ जाता है। बिना यत्नके भाग मरता नहीं जाता। इसलिए तुम अच्छे गमन करो

मरते हो। (अरे) समुद्र पास होते हुए भी प्यासे क्यों मरते हो? महागजके होनेपर भी बैलपर क्यों बैठते हो? जिनेन्द्रकी पूजा करके भी संसारचक्रमें पड़ते हो? जिसका सारथि भुवनमें अद्वितीय वीर है, जिसका शरीर वज्रसे भी बढ़कर दृढ़ है जो विश्वसिंह मरिकुलके लिए प्रलयकाल है, शत्रु सेनाके लिए बड़वानल है, विशालबाहु दुर्दम-दानव मारोंका पकड़नेवाला ऐरावतकी सूँड़की तरह स्थूलबाहु त्रिलोककी भटश्रृङ्खलाका तोड़नेवाला दुर्वारनीय भीषण, और यमकी तरह चपेटनेवाला है ऐसे उस देवोंके लिए रास्य स्वरूप और सुरसतापक रावणसे जाकर कहो कि शम्बूक कुमार मारा गया है। आप (उसके हत्यारेका) पीछा करें ॥१-१॥

[१०] खर कड़ककर बोला, धिक्कार धिक्कार तुम्हें, तुम सुपुरुषोंका कथा रहे हो, यह कापुरुषोंका कर्म हो सकता है। सत्पुरुषी पुरुषके जब तक देहमें प्राण रहते हैं तब तक क्या वह दूसरेके पास जाता है। जो उत्पन्न हुआ है उसे जब मरना ही है तो अच्छा यही है कि शत्रु-समूह पर प्रहार किया जाय। उससे लोकमें साधुकार (शाबाशी) तो मिलेगा, फिर इस मर्त्यलोकमें अजर-अमर कौन है? आज मैं अरिसमुद्रसे अवश्य भिड़ूँगा जिससे स्वजनोंका मनोरथ पूरा हो, असि सब्बल और कौंतसे इस तरह भिड़ूँगा, इस तरह तीनों लोकोंमें यशका डङ्का बजाऊंगा आकाश लोकमें सुरसमूहको इस तरह सन्तुष्ट करूँगा, भले ही इस तरह मेरा क्षयकाल आ जाय। आज मैं, बहु रक्तरञ्जित शत्रुरूपी शिलातलपर अपने पराभवके पटका इस तरह धोऊँगा कि जिससे अपने पुत्रकी ही तरह उसे अतिथि (परलोक) का अतिथि बना सकूँ ॥१-६॥

[११] यह सुनकर निजकुलभूषण दूषणने शीघ्र रावणके पास लेख भेजा। इधर, अनेक युद्धोंमें धीर सरने भी तैयार होकर रण-भेरी बजवा दी। अभिमानी कितने ही योद्धा, अपने प्रभुके सम्मान दान और ऋणको याद करके तैयारी करने लगे। किसीने अपने हाथमें तलवार ली। किसीने तूणीर सहित धनुष ले लिया। किसीने प्रचण्ड भुसुंडि और मुद्गर, किसीने हुलि, किसीने भिन्दिपाल, इस तरह नाना अस्त्रोंको हाथमें लेकर, युद्धभार उठानेमें समर्थ योद्धा होकर सेना निकल पड़ी। पातालकामें कल-कल शब्द होने लगा। रथ, घोड़े, गजेन्द्र और नरेन्द्र ऐसे निकल पड़े मानो कविके मुखसे शब्द ही निकल पड़े हों। खर दूषणकी सेना इससे सन्नद्ध होकर भय और क्रोधसे भरकर, आकाशसे आ लगी। उस समय ऐसा लगता था मानो आकाशमें दूसरा ही ग्रहचक्र आ पहुँचा हो ॥१-६॥

[ ] आकाशमें निशाचरोंका समूह देखकर रामने लक्ष्मणसे कहा "देखो यह क्या दीख रहा है क्या कोई किन्नर-समूह स्वागत को आ रहा है, या ये बड़े-बड़े पक्षी हैं, या विराट महामेघ हैं या कि यह देवसमूह है जो जिनकी वन्दना-भक्तिके लिए आ रहा है।" यह सुनकर लक्ष्मणने कहा "यह तो शत्रुकी सेना दिखलाई पड़ रही है पहचानिए। मैंने तलवारसे जिसका सिर काटा था शायद उसीका कोई आत्मीयजन क्रुद्ध गया है।" इस तरह उनकी आपसमें बातें हो ही रही थीं कि गगनमें लक्ष्मणको ललकारा—"सुनो जैसे शम्बूक कुमारके प्राण लिए हैं पाप अब पल ही आते हुए मर पायोगे प्रतीक्षा कर। तूने यह गज्ञ क्या किया दूसरेका खाका हो भाग किया है। हे पुंश्चलीपुत्र ' चपा-चपा

घत्ता

पुलेव-पहाणेंहिँ वरेंहिँ समाणेंहिँ चउदह सहस समावडिय ।
गय मेह महन्दहों रिउ गोविन्दहों हक्कारेप्पिणु अब्भिडिय ॥१०॥

[११]

एत्थन्तरें मउ-कमलदलेण । वोक्कारिउ रामु जणद्दणेण ॥१॥
'तुहुँ सीय पयत्तें रक्ख देव । हउँ जामि सेण्णु मिग-जूहु जेम ॥२॥
जम्बेउ करेसमि सीह-णाउ । तम्बेउ एज्ज महुअर-सहाउ' ॥३॥
तं वयणु सुणेंवि विहसिय-मुहेण । आसंसिउ सिग्घ सीराउहेण ॥४॥
'जसवन्तु विजउ होहि तुज्झ । करें कमाउ जय-सिरि-वहुअ गज्झ' ॥५॥
तं लेवि णिसिणु जणद्दणेण । चड्ढेहि पमिय रिउ-मद्दणेण ॥६॥
तं तिहुवणें वि सम्पइँ जुत्तु एम । 'पडिबिम्बिउ भमर जिणेण जेम ॥७॥
आसंसिउ परीसह चउ कसाय । जर-जम्म-मरण मय-काम-माया ॥८॥

घत्ता

तिह भग्गु परम्मुहु एवँ कुसुमाउहु कोहु मोहु मउ माणु खलु ।
तिह तुहुँ भञ्जहि समरें विभञ्जहि सयलु वि वइरिहिँ तणउ बलु' ॥९॥

[१२]

आसीस-वयणु तं लेवि तेण । अप्फालिउ धणुहरु महुमहेण ॥१॥
तें सद्दें बहिरिउ जगु असेसु । थरहरिय वसुन्धरि चलिउ सेसु ॥२॥
खरदूसण वे वि मिलन्ति जाव । हक्कारिउ हरि तिसिरेण ताव ॥३॥
ते भिडिय परोप्पर हणु भणन्त । णं मत्त महागय गुलुगुलन्त ॥४॥
णं केसरि घोरोरालि मुअन्त । बाणेहिँ बाण छिन्दन्ति एन्त ॥५॥
मोग्गर-सुरप्प-कणिय पडन्ति । वीरेहिँ वीर णं जलहरों जन्ति ॥६॥
एत्थन्तरें अतुल-परक्कमेण । अद्धेन्दु मुक्कु पुरिसोत्तमेण ॥७॥
तहों तिसिरहों सिर-कमलु वि भिण्णु । ससहर पाडिउ पय-सयलु छिण्णु ॥८॥

अपनेका।" इस प्रकार खरके समान एक-से-एक प्रमुख योद्धाओंने लक्ष्मणको घेर लिया तब वह भी हुंकार भरकर युद्धमें जाकर भिड़ गया ॥१-९॥

[१३] उसी बीच शत्रुसेनाका संहार करते हुए लक्ष्मणने रामसे कहा "देव! आप सीताकी रक्षा प्रयत्नपूर्वक कीजिए। मैं इस शत्रु-सैन्यको मृगझुंडकी तरह अभी पकड़ता हूँ। आप धनुष लेकर मेरी सहायताके लिए तब आयें जब मैं सिंहनाद करूँ।" यह सुनकर रामने लक्ष्मणको आशीर्वाद दिया और यह कहा "वत्स तुम चिरायु बनो यशस्वी हो जयश्री वधू तुम्हारे हाथ लगे।" यह बात सुनकर रिपुसंहारक लक्ष्मणने सीतादेवीको प्रणाम किया। तब सीता बोली "जिस प्रकार जिनने पाँचों इन्द्रियोंका भङ्ग किया, बाईस परीषह, चार कषाय—जरा जन्म मरण मन वचन कायको वशमें किया तथा रणमुखमें कामदेवको पराजित किया, लोभ मोह, मद मानको जीता उसी प्रकार तुम भी युद्धमें जीतो और समस्त शत्रुसेनाका नाश करो" ॥१-९॥

[१४] इस आशीर्वादको लेकर धनुर्धारी लक्ष्मणने अपना धनुष चढ़ाया। उसकी ध्वनिसे ही सारा जग बहरा हो गया। धरती काँप उठी और शेष नाग डर गये। खर और लक्ष्मण भिड़ने ही वाले थे कि वीर त्रिशिराने लक्ष्मणको ललकारा। मानो सिंह ही दहाड़ उठा हो या मदगज ही चिंघाड़ा हो। सुन्दर, सुरूप, कर्णिक इस तरह पड़ने लगे मानो जीवसे जीव ही नाशको प्राप्त हो रहा हो। इतनेमें पुरुषोत्तम अतुल पराक्रमी लक्ष्मणने अर्धचन्द्र द्वारा उससे त्रिशिराका सिर किसी प्रकार बच गया। वह भग्न नहीं हुआ। उसका धनुष और ध्वजदण्ड छिन्न-भिन्न होकर गिर पड़े।

बहुगुणी त्रिशिरा वार-बार युद्धमें दूसरा धनुष लेता पर वह भग्न होकर गिर पड़ता। वह वैसे ही क्षणभर भी नहीं ठहरता जैसे भाग्यसे आहत व्यक्तिका धन ॥१-८॥

[१४] धनुष वाण-सारथि छत्र दण्ड समीको वाणोंसे लक्ष्मणने सौ-सौ टुकड़े कर दिये तब विद्याधर त्रिशिरा अमर्ष और क्रोधसे भर उठा। तब उसने अपनी विद्याका स्मरण किया। तत्काल वह तीन मुख और तीन सिरका हो गया। उसका आकार बढ़ गया। उनमें पहले सिरपर कठोर और कपिल केश थे। वह छोटा (बालरूप) था। आँखें पीली थीं। दूसरा मुख और सिर नवयुवकका था। उद्भिन्न और विकट मासुरिके सदृश। तीसरेके मुख और सिर, दोनों सफेद ही सफेद थे। अधर काँप रहे थे और आँखें अत्यन्त भयावनी थीं। अति दुर्दर्शनीय भीषण विकराल दाढ़ थी। जिनधर्मकी तरह प्रगाढ़ और जिन भक्त। परन्तु परबलसंहारक लक्ष्मणने उसे वक्षस्थलमें बेध दिया। लक्ष्मणके बाणोंसे उसके तीनों सिर कट गये और शत्रु धरणी-मण्डलपर गिर पड़ा। यह देखकर सुरवरोंने अपने प्रचण्ड बाहुओंसे उसके ऊपर फूलोंकी वर्षा की ॥१-८॥

●

अड़तीसवीं संधि

जब तक लक्ष्मणने समरांगणमें त्रिशिराको मारा तब तक त्रिभुवन भयंकर रावण भी वहाँ आ पहुँचा।

[२] सुरसिंह रावणके पास दूषणने जो लेखपत्र भेजा था वह उसके सम्मुख पड़ा था मानो रावणपर कुलिश (मार) पहाड़ ही टूट पड़ा हो मानो राक्षसकुलका संहार हो, या मानो

कुमारका भयङ्कर मूल हो या रावणके मस्तकका शूल हो। उस लेखने अपने अभिमानसे ही बता दिया, कि शम्बुकुमारके प्राणोंका अन्त हो गया। खड्ग रत्न छीन लिया गया, और खरकी सेनाके अङ्ग विदीर्ण कर दिये गये। यह सुनकर यशोभूषण दोनों भाइ खर और दूषण जाकर शत्रु-सेनासे भिड़ गये हैं। वहाँ एक सुभग और अनुपम नारी रत्न है, हे रावण वह तुम्हारे योग्य है।" यह लेख पढ़कर रावणने दरबार विसर्जित कर दिया। वह गरजकर, अपने पुष्पक विमानपर चढ़ गया। हाथमें तलवार लेकर वह दौड़ पड़ा और पलभरमें दण्डक वनमें जा पहुँचा। इतनेमें वहाँ लक्ष्मणने खर-दूषणकी सेनाको अवरुद्ध कर लिया। संशयमें पड़ी हुई चतुरङ्ग सेना आकाशमें निश्चलरूपसे स्थित थी। यह सब देखकर, विराधित राजा रावणसे लक्ष्मणकी प्रशंसा की–सिंह अकेला ही अच्छा, मुँह ऊपर उठाये हरिणोंका झुण्ड अच्छा नहीं मृगलाञ्छित चन्द्रमा अकेला अच्छा पर ज्योतिरहित बहुत-सा तारा-समूह अच्छा नहीं रत्नाकर अकेला ही अच्छा, विस्तृत नदियोंका समूह ठीक नहीं। आग अकेले अच्छी, पर पुष्प पल्लव समन्वित वन-समूह अच्छा नहीं। जो अकेला हो चौदह हजार सेनाका मद चूर कर सकता है यह मुझे भी नष्ट कर देगा। देखो प्रहार करता हुआ यह कैसे प्रनेश कर रहा है। उसके धनुष-बाणका संधान दिखाई ही नहीं देता। न अश्व न गज न रथवर और न ध्वज-दण्ड केवल धड़ ही धड़ धरती पर गिरते हुए दिखाई देते हैं॥१–७॥

[२] महार शील कुमार लक्ष्मणकी जब वह इस प्रकार प्रशंसा कर हो रहा था कि इतनेमें ही रावण सीताको देखा। वह सुकविकी कथाकी तरह सुसंधि (परिच्छेद, अङ्गादि आदि)

सुसन्धिय (शब्द-खण्डके जोड़ अवयवोंके जोड़से सहित) सुपय (सुबन्त तिङन्त पद और चरण) सुवयण (वचन और मुख) सुसर (वर्ण और स्वर) और सुवन्न थीं। कलहंसगामिनी, और मन्थरगतिसे चलनेवाली, उसका मध्यभाग कृश था, नितम्ब अति विस्तृत था। कामदेवसे अवशीर्ण रोमराजि ऐसी ज्ञात होती थी मानो चींटियोंकी कतार ही उसमें संलग्न हो गई हो। अभिनव मुख-हीन पीन-स्तन ऐसे जान पड़ते थे मानो उरुरूपी स्तम्भको नष्ट करनेवाले मदमाते हाथी हों। सीताका अमल मुख-कमल ऐसा सोहता था मानो मानसरोवरमें कमल खिल गया हो। उसके सुन्दर नेत्र ऐसे लगते थे मानो ललित प्रसन्न सुन्दर कन्याओंको वर ही मिल गये हों, उसकी पीठपर पड़ी-सी चोटी ऐसी लगती थी कि मानो चन्दन लतासे नागिन ही लिपट गई हो। अधिक कहने से कोई लाभ नहीं त्रिभुवनमें जो कुछ अच्छा था उसे लेकर ही विधाताने सीताके अङ्गोंको गढ़ा था ॥१-६॥

[४] फिर निजकुलदीपक रावणने रामकी प्रशंसा करते हुए कहा "केवल एक इसी रामका जीवन सफल है क्योंकि इसकी सज्जनता अपनी चरम सीमापर पहुँच चुकी है। इसके साथ यह धन्या संलाप करती है बार-बार पान देती है, उसके पैरोंको अपनी गोदमें रखती है, हाथमें हाथ लेकर बात-चीत करती है। माधवी-मालाकी तरह कोमल और चूड़ियों सहित अपने हाथोंसे आलिङ्गन करती है। नाना भंगिमावाले सघर्षशील स्तनरूपी मातंगासे मुँह चूमती है। विभ्रमभरित और विकाररहित निमल तारावाले अपने नेत्रोंसे इन्हें देखती है। अपने मनसे कामना करके यह सीता जिस रामका भोग करती है भला समस्त त्रिभुवनमें उसका प्रतिमल्ल कौन हो सकता है। यह मनुष्य धन्य

है जिसकी ऐसी हृदय-वाञ्छिता पत्नी है। जब तक मैं इसे ग्रहण नहीं करता तब तक मेरे अङ्गोंका सुखका आसन कहाँ ॥ १-१ ॥

[५] सीताको देखते ही रावणको उन्माद होने लगा। वह कामके बाणोंसे आहत हो उठा। कामकी प्रथमावस्थामें उसका मुख विकारोंसे क्षीण हो गया। प्रेमके वशीभूत होकर वह तनिक भी नहीं रुका रहा था, दूसरी दशामें उसका मुख पसीना-पसीना हो उठा, और हठपूर्वक वह आलिङ्गन माँगने लगा, तीसरीमें वियोग की आगसे वह जल उठा और कामग्रस्त होकर बार-बार वह बकने लगा। चौथी दशामें उसके अनवरत निश्वास चलने लगे। कभी वह सिर हिलाता और कभी भौंहें टेढ़ी करता। पाँचवी अवस्थामें वह पञ्चम स्वरमें बोलने लगा और हँसकर अपने पाँव हिलाने लगा। छठीमें अङ्ग और हाथ मोड़ता और दाढ़ी पकड़कर नोचने लगता। आठवींमें उसे मूर्छा आने लगी, नौवींमें मृत्यु आसन्न प्रतीत होने लगी। दशवीं अवस्थामें किसी प्रकार केवल उसके प्राण ही नहीं निकल रहे थे। तब रावणने अपने आपको यह कह कर सान्त्वना दी कि "बलपूर्वक सीताका अपहरणकर मैं दसों मुखोंसे उसका उपभोग करूँगा। अन्यथा सुरलोकको लज्जित करूँगा" ॥ १-१ ॥

[६] सुरपीडक रावणको इसी समय एक उपाय सूझा। और उसने अवलोकिनी विद्याका चिन्तन किया। तुरन्त ही वह 'आदेश दो' कहती हुई आई और बोली, "क्या पानकर समुद्रको सोख लूँ या देवोंसे सहित इन्द्रको पराजित करूँ या जाकर काम देवको ध्वस्त कर दूँ या यममहिषके सींग उखाड़कर फेंक दूँ या शेषनागके फन-मणियोंको चूर-चूर कर दूँ या तक्षककी दाढ़ उखाड़ दूँ या कृतान्तका मुख फाड़ डालूँ। या सूर्यके रथके अरुण

छीन लूँ, या मन्दराचलको अपनी अंगुलीसे टाल दूँ। क्या त्रिलोकचक्रका संहार कर दूँ, या फौरन प्रलय मचा दूँ।" (यह सुनकर) रावणने कहा—"यह सब करनेसे मेरा एक भी काम नहीं सधेगा। कोई ऐसा उपाय बताओ जिससे मैं उस सीताको प्राप्त कर सकूँ" ॥ १-६ ॥

[७] रावणके वचन सुनकर समादरणीय अवलोकिनी विद्याने कहा, "जब तक एकके हाथमें समुद्रावर्त और दूसरेके हाथमें वज्रावर्त धनुष है। जब तक एकके हाथमें आग्नेय बाण है और दूसरेके हाथमें वायव्य और वारुण आयुध हैं। जब तक एक हाथमें गम्भीर हल और दूसरे हाथमें चक्रायुध है, तबतक पथिक राम और लक्ष्मणसे सीता देवीको कौन छीन सकता है। ये लोग त्रेसठ महापुरुषोंमें से एक हैं और प्रच्छन्न रूपसे वनवास कर रहे हैं। ये त्रेसठ महापुरुष हैं—बारह चक्रवर्ती, नौ नारायण, नौ बलभद्र, नौ प्रतिनारायण और चौबीस तीर्थंकर। इनमें भी ये वासुदेव और बलभद्र बहुत ही बलिष्ठ हैं। जब तक तुम्हारे मनमें युद्धकी इच्छा नहीं तब तक तुम इस सीताको कैसे पा सकते हो ?" ॥ १-८ ॥

[८] अथवा इससे क्या यह नारी, हे रावण ! त्रिभुवनको सतानेवाली है। यदि तुम अपनेको अजर-अमर समझते हो तो इस नारीको ग्रहण कर सकते हो। यदि तुम कुमार्ग पर चलना चाहते थे, यदि तुम अपना बड़प्पन धूलमें मिलाना चाहते हो तो इसे ले लो। यदि जिन-शासन छोड़ना चाहते हो तो इसे ले लो, यदि तुम सुरवेश्योंसे नहीं डरते तो इसे ले लो। यदि तुम नरक जानेका साज सजाना चाहते हो तो इसे ले लो। यदि तुम परलोकको नहीं जानते तो इसे ले लो। यदि अपने राज्यकी तुम्हें इच्छा नहीं है तो इसे ले लो। यदि तुम यमशासनकी इच्छा करते हो तो इसे

ले लो। यदि तुम्हें अपने प्राणोंसे विरक्ति हो गई है तो इसे ले लो। यदि अपने पक्षको बाणोंसे भिदवाना चाहते हो इसे ले लो, इन भयावने वचनोंको सुनकर अत्यन्त कामातुर रावणने कहा, "यही तो एक मनुष्यनी है जो एक मुहूर्तके लिए मुझे जिला सकती है। रामवत शिवस्वरूपकी मुझे अपेक्षा नहीं, मुझे यही बहुत है" ॥१-८॥

[६] तब उसे अत्यन्त विषयासक्त समझकर और उसके निश्चयको जानकर, विद्या बोली, "सुन दशमुख! मैं एक रहस्य प्रकट करती हूँ। इन दोनों (राम और लक्ष्मण) के बीचमें एक संकेत है। यह जो सुभट (लक्ष्मण) रणांगणमें दीख पड़ता है और जो खर-दूषणकी सेनासे लड़ सकता है, इसके (लक्ष्मण) सिंहनादको सुनकर दूसरा (राम) अपनी प्रिय स्त्रीको तृणवत् छोड़कर, वज्रावर्त धनुष चढ़ाकर सिंहकी भाँति गरजता हुआ दौड़ पड़ेगा। उसके पीछे (अनुपस्थिति में) तुम सीताको उठाकर पुष्पक विमानमें लेकर भाग जाना।" यह सुनकर रावणने कहा कि यदि ऐसा है तो सिंहनाद करो। प्रभुके आदेशसे विद्या दौड़ी और पलभरमें संग्रामभूमिमें पहुँच गई। इतनेमें लक्ष्मणका भयङ्कर और गम्भीर स्वर सिंहनाद सुनकर नये जलधरकी तरह राम धनुष लेकर दौड़े ॥१-६॥

[१०] सिंहनाद सुनते ही हाथमें धनुष, और दोनों तरकस लेकर राम दौड़े यह सोचकर कि कहीं युद्धमें लक्ष्मण आहत होकर तो नहीं गिर पड़ा। रामके पीछा करने पर उन्हें सुनिमित्त (शकुन) दिखाई नहीं दिये। अपशकुन ही हो रहे थे। उनका बाँया हाथ और नेत्र फड़कने लगा। नाकके दाएँ रंध्रसे हवा निकल रही थी। कौआ विरूप बोल रहा था। 'सयार' रो रहा

था, मानो साँप रास्ता काटकर आ रहा था ? जम्बूक छ्वछ्वाकर ऐसा उठा मानो अनिवारित मन ही लौटकर आया हो। दाहिने ओर गुमुर गुमुर शब्द होने लगा। आकाशमें महाँकी उल्टी स्थिति दीख पड़ने लगी। तो भी वीर राम इन सबकी उपेक्षा करके दौड़े गये और पल भरमें युद्धभूमिमें आ पहुँचे। वहाँ आकर उन्होंने देखा कि लक्ष्मणके बाणरूपी हंसोंसे विच्छिन्न आकाश रूपी महासरोवरके सिररूपी कमल धरातलपर पड़े हैं ॥१-६॥

[११] राघवने युद्ध-स्थलमें लक्ष्मणको इस प्रकार देखा कि मानो वह वसन्त क्रीड़ा कर रहा हो। उसके कुण्डल, कटक और मुकुट फलके रूपमें देख पड़ रहे थे, दानवरूपी दवण मञ्जरी थी। गुल्मावलि ही मानो पल्लवोद्गम था। तथा नरसिरोंके कन्दुक लेकर वे लोग परस्पर रणमें चाचरी खेल खेल रहे थे। बादमें रक्तकी मदिराका पान कर रहे थे। इस प्रकार युद्धरूपी वसन्तमें क्रीड़ा करते हुए आक्रमणशील लक्ष्मणकी रामने प्रशंसा की, "साधु वीर साधु, यह तुम्हें ही शोभा देता है, दूसरे किसके लिए यह उपयुक्त हो सकता है। तुमने सचमुच दूषणकुलका उन्मूलन किया। तुमने सचमुच तीनों लोकोंमें अपने पराक्रम डंका पीटा है।" तब यह सुनकर आदरणीय लक्ष्मणने कहा, "देव बहुत बुरा हुआ यह। आप सीताको छोड़कर उस स्थानसे क्यों हटे। मेरा मन कह रहा है कि किसीने छल करके सीताका अपहरण कर लिया है ॥१-८॥

[१२] मरकत मणिके रंगकी तरह श्याम लक्ष्मणने फिर कहा "मैंने (सिंह) नाद नहीं किया किसी और न किया होगा। यह सुनते ही राम जब तक लौटकर (डेरेपर) आये तब तक दशानन सीताका हरण कर चुका था। (उसकी अनु

पक्षियोंमें) पुष्पक विमानमें बैठाकर रावण वैसे ही भाया जैसे इन्द्र अपनी शिबिकामें बैठकर आता है। मन्दान्मत्त हाथी जिस तरह दूसरेकी हथिनोके पास पहुँचता है, उसी तरह रावण रामकी पत्नीके निकट पहुँच गया। अपने दोनों हाथोंसे उसने सीता देवीको उठा क्या लिया हो, माना अपने ही शरीरकी हानि की हो, या अपने ही कुलके लिए सर्वनाशका आह्वान किया हो, या सकाके लिए आशंका उत्पन्न कर दी हो। वह सीता देवी माना निशाचर-लोकके लिए वज्र थी या रामका भयङ्कर धनुष थी, क्या यशकी हानि, और बहुदुःखोंकी खान थी। या माना मूर्खोंके लिए परलोकके लिए पगडंडी थी। शीघ्र ही रावण अपना विमान आकाशमें पसे बड़ा ले गया माना कालने एक वनवासीका जीवन हरण कर लिया हो॥ १-९॥

[११] आकाश-प्रांगणमें जैसे ही विमान पहुँचा सीता देवीने अपना क्रन्दन करना प्रारम्भ कर दिया। उस विलापको सुनते ही आदरणीय जटायु दौड़ा आया। और उस पक्षिराजने चोंचकी मार पंखोंके स्पर्श और नखोंके आघातसे रावणको आहत कर दिया। वह उसे एक बार पूरा हटा नहीं पाता कि वह पक्षी सौ सौ बार झपट पड़ता। शत्रुसंहारक रावण (प्रहारों से) एकदम खिन्न हो उठा। उसने अपने चन्द्रहास खड्गका चिंतन किया। कभी वह सीताको पकड़ता कभी वह अपनी रक्षा करता कभी लज्जित होकर चारों ओर देखता फिर किसी तरह बड़े कष्टसे अपनको धीरज बँधाता अन्तमें अपने कठोर निष्ठुर आघातसे समरांगणमें जटायुको आहत कर दिया। दयसाभाने आकाशमें कलकल शब्द किया। जानकी राम और लक्ष्मणका स्मरण करता हुआ वह धरती पर गिर पड़ा॥ १-९॥

[१४] छटपटाकर जटायुके गिर पड़नेपर सीता और भी जोरसे विलाप करने लगी, "अरे अरे रणमें दुर्विदग्ध दुष्टो ! तुम अपनी प्रतिज्ञाका भी पालन नहीं कर सके। तुमसे तो पशु-जीवी जटायु पक्षीका ही सुभटपन अच्छा है। (कमसे कम) वह युद्धमें रावणसे लड़ा तो। तुम अपना बड़प्पन नहीं रख सके। सूर्यका सूर्यपन भी मैंने नष्ट किया, चन्द्रमा वास्तवमें राहुग्रस्त हैं। ब्रह्मा तो ब्राह्मण ही ठहरे, विष्णु तो पत्नीवाले हैं। वासुदेव भी अपनी चपलतासे दम्भी हो रहे हैं, यमदूत भी सैकड़ों शापोंसे लज्जित हो रहे हैं। वरुण तो स्वभावसे ही शीतल हैं। शत्रु-सेनाको उनसे क्या शंका हो सकती है। इन्द्र भी अपने इन्द्रपनको याद कर रहे हैं। भला दव-समूहन (आग्नेय) किसकी रक्षा करता है। और फिर क्या दुनियामें चिल्लानेसे किसीका उद्धार हुआ है। अब तो इस जन्ममें राम और दूसरे जन्ममें जिनवरकी ही शरण मुझे प्राप्त हो ॥१-६॥

[१५] सीतादेवी बार-बार विलाप करती हुई नहीं अघा पा रही थी, जो सम्भव था उससे महान दशाननका सामना किया। बार-बार वह (सीता देवी) यही सोच रही थी कि तीनों लोकोंमें मुझे अनाथ समझ, इस प्रकार अपमानित करके ले जा रहा है। सत्पुरुषका यही तो अवसर है। यदि राम और लक्ष्मण यहाँ होते तो इस तरह विलपती हुई मुझे कौन ले जा सकता था। हा दशरथ ! हे गुणसमुद्र मामा ! हा पिता जनक ! हे अपराजिता, हे कैकेयी ! हे सुप्रभा ! हे सुन्दरमति सुमित्रा ! हा शत्रुघ्न ! हे भरतश्वर भरत ! हा सहोदर भामंडल। हा राम लक्ष्मण ! अभागिनी मैं (आज) किससे कहूँ। किसको याद करूँ। मुझे कौन सहारा देगा। अपना इतना भारी दुःख किससे निवेदित करूँ। मैं जिस मार्गमें जाती हूँ वहाँ आगम प्रदीप्त हो उठता है ॥१-६॥

[१६] उस अवसरपर दक्षिण समुद्रके विशाल तटपर अत्यन्त प्रचण्ड एक विद्याधर रहता था। हाथमें खड्ग लिये, मुखमें तुषार, वह भामण्डलका अनुचर था जो उसकी सेवामें कहीं जा रहा था। उसने सीतादेवीके विलापको सुन लिया। उसे लगा कि कोई स्त्री पुकार रही है कि मेरी रक्षा करो, वह राम और रावणका नाम बार-बार ले रही है। फिर वह भामण्डलका भी नाम लेती है। कहीं यह सीता और रावण न हो। क्योंकि दशाननको छोड़कर और कौन परस्त्रीका हरण कर सकता है। "चाहे मैं राजा भामण्डलके पास न जा सकूँ पर मुझे इस दुष्टसे अवश्य जूझना चाहिए।" यह निश्चयकर वह रावणको ललकारकर क्रोधमें कहा "अरे अरे स्त्रीको चुराकर कहाँ जा रहा है। आओ हम दोनों लड़ें। जिससे एक मरे और या दूसरा। रावण! मुड़ो, मुड़ो सीताको लेकर कहाँ जा रहे हो ॥ १-९ ॥

[१७] तब त्रिभुवनकण्टक दशानन उस विद्याधरसे उसी प्रकार भिड़ गया जिस प्रकार सिंह सिंहसे गजेन्द्र गजेन्द्रसे और मेघ मेघसे टकरा पड़ते हैं। दोनोंके हाथमें विद्याएँ थीं। दोनों ही शिविकामें बैठे थे। दोनों ही विविध आभूषणोंसे भूषित थे। दोनों ही अपने हाथोंसे प्रहार कर रहे थे। दोनों एक दूसरेपर आघात करना चाह रहे थे। अपने मनमें क्रुद्ध होकर भामण्डलके अनुचर उस विद्याधरने अपनी उत्तम कृपाण हाथमें लेकर रावणकी छाती पर आघात किया। आहत होकर वह धुरन्धरोंमें श्रेष्ठ गिर पड़ा? रक्तकी धाराओंमें उसका रक्त प्रवाहित हो उठा। तब वह विद्याधर व्यंग्यके स्वरमें बोला—"इकतालीस राव-राव युद्धोंमें दुर्निवार और त्रिभुवनकण्टक रावण तुम्हीं हो जो आज कमल एक ही आघात में चौपट हो गये।" इतनेमें सचेतन होकर और युद्धमत्सरसे

भरकर दशानन उठा। वह विद्याधरके सम्मुख इस प्रकार स्थित हो गया मानो राशियोंके समक्ष शनिश्चर-सा ही आ पड़ा हो ॥१-९॥

[१८] रावण खड्ग लेकर ऐसे उठा, मानो बिजली और महामेघ ही गरजा हो। तब उसने विद्याधरकी विद्याको छेदकर उसे जम्बूद्वीपके भीतर कहीं फेंक दिया। (बादमें) रावण मालाको लेकर चल दिया। (वह आकाशमें ऐसा चमक रहा था) मानो दूसरा ही सूर्य हो। फिर समुद्रके बीचमें जयश्रीका अभिमानी रावण बार-बार सीतासे पूछने लगा— 'हंसगति, तुम मुझे क्यों नहीं चाहती। क्या तुम्हें महारथी पतिकी चाह नहीं है, क्या तुम निष्कण्टक राज्यका भोग करना नहीं चाहतीं। क्या सुरति-सुखका आनन्द लेना नहीं है। क्या किसीने मेरा मान भङ्ग किया है। क्या मैं दुर्भग हूँ या असुन्दर" ऐसा कहकर ज्यों ही उसने सीता देवीका आलिंगन करना चाहा त्यों ही उसने उसकी भर्त्सना की और कहा— 'रावण, थोड़े ही दिनमें तुम जीते जिय जाओगे और हमारी परिपाटीके अनुसार रामके बाणोंसे आलिंगन कराओगे ॥१-९॥

[१९] इन कठोर वचनोंसे आहत रावण मनमें बहुत ही दुखी हुआ। उसने मन ही मन विचार किया कि यदि मैं मारता हूँ तो इसे फिर देख नहीं सकता इसलिए सब बातोंको हँसकर सहन करना ही अच्छा है। अवश्य ही कोई न कोई ऐसा दिन होगा कि जब मुझे चाहने लगेगी और हर्षातुर होकर मेरे (कण्ठका) आलिङ्गन करेगी। और भी फिर मुझे अपने इस व्रतका पालन करना है कि मैं परस्त्रीका बल-पूर्वक ग्रहण नहीं करूँगा। इस असमंजसमें पड़ा हुआ देव-भयङ्कर बड़े-बड़े पर्वतोंको मात

करनेवाला रावण चला और लङ्कामें पहुँच गया। तब सीता देवीने कहा—"मैं नगरमें प्रवेश नहीं करूँगी मैं इसी विशाल नन्दन वनमें रहूँगी और जबतक मैं अपने पतिका समाचार नहीं सुन लेती तबतक मैं आहारका त्याग करती हूँ।" तब रावण सीता देवीको नन्दन वनमें ले गया और वहाँ शिंशपा वृक्षके नीचे उन्हें छोड़ दिया। इस प्रकार सीता देवीको नन्दनवनमें छोड़कर वह तुरन्त अपने घर चला गया। धवल और मङ्गल गीतोंके साथ वह अपने राज्यका भोग करने लगा ॥१-९॥

•

उनतालीसवीं संधि

इधर राम लक्ष्मणकी बात मानकर जैसे ही लौटकर आये तो उन्होंने देखा कि (आश्रम) में लतागृह वही है, वृक्ष भी वही है, पर सीता देवी कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं हो रही हैं।

[१] सीता देवीसे विहीन वह वन रामको ऐसे लगा मानो शोभासे हीन कमल हो या विद्युत्से रहित मेघ-समूह हो या वात्सल्यसे शून्य मुनि-भवन हो, नमकसे रहित भोजन हो, या मानो देवगृहोचित आसनसे विहीन जिन-प्रतिबिम्ब हो या कि दानसे रहित कृपण हो। सीता देवीसे रहित वन रामको ऐसा ही दीख पड़ा। यह सोचकर कि जानकी शायद कहींपर जान-बूझकर छिपकर बैठी हैं वे लतागुल्मोंमें खोजने लगे। फिर उन्होंने उन्हें पर्वतोंकी कन्दराओंमें ढूँढ़ा हो सकता है वह वहीं जा छिपी हों। इतनेमें रामको जटायु पक्षी दीख पड़ा। घाव-विक्षत होकर (वह)

युद्ध भूमिमें पड़ा हुआ था। प्रहारोंसे अत्यन्त विधुर कम्पित शरीर और भयकुपके हुए उस जटायुको देखकर रामने पूछा—"कौन सीताको छल करके हर ले गया।" ॥१-८॥

[ ] फिर रामने णमोकार मन्त्रका उच्चारण करके उसे आठ मूलगुण दिये। ये मूलगुण जिन-शासनके सार मूल हैं और मृत्युके समय भव्य जनोंके लिए अत्यन्त सहायक होते हैं। इनका ग्रहण करनेसे बुद्धि दृढ़ होती है। परलोककी गति शुभतर होती है। जिनका ग्रहण करनेसे सुख सम्भव होता है। जिनका ग्रहण करनेसे दुःखका क्षय होता है। निशाचर-समूहके संहारक रामने ऐसे मूल-गुणोंका उपदेश करते हुए कहा—"तुम अनरण्य और अनन्तवीरके शुभ मार्गसे जाओ।" यह सुनते ही महनीय जटायुने अपने प्राणोंका विसर्जन कर दिया। उसकी मृत्यु और सीता देवीके अपहरणको देखकर राम अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर डाढ़ मारकर विलाप करने लगे—"कहाँ मैं? कहाँ लक्ष्मण और कहाँ कुटुम्बि-जन। कठोर भाग्य दयावान मृत-बलि की तरह मेरे कुटुम्बको कहींका कहीं पटक दिया है।" ॥१-६॥

[२] यह कहकर राम मूर्छित हो गये। तब दो चारण ऋद्धिधारी मुनियोंने रामको देखा। चारण होकर भी वे दोनों आठ गुणोंसे सम्पन्न ज्ञान शरीर शक्तिसे अकृत्रिम फल, पुष्प, पत्र, नभ और पर्वतपर गमन करनेवाले? जल-जन्तु (मृणाल) की तरह जङ्घाओंसे चलनेवाले? धीर सुधीर और विशुद्ध आकाश-गामी वे दोनों वहाँ आये (जहाँ राम थे)। अवधिज्ञानका प्रयोग करके उन्होंने जान लिया कि रामका पत्नी-वियोग हुआ है। तदनन्तर करुणासे भरकर उन मुनि अपनी गम्भीर ध्वनिमें बोले—"अरे मोक्षगामी और चरमशरीर राम! तुम मूढ़ बनकर

रोते क्यों हो ? स्त्रियाँ दुखकी खान और वियोगकी निधि होती हैं। तो उसके लिए तुम क्यों रोते हो ? क्या तुमने यह कहानी नहीं सुनी कि वह कायके अवयवोंपर दया करनेवाले गुणव्रत और अणुव्रतके धारण करनेवाले जिनशासनका किस प्रकार वनमें वानर बनना पड़ा ॥१-६॥

[४] तब धरतीपर मूर्छासे विह्वल रामने सुना कि कोई मुझसे आकाशमें बातें कर रहा है तो वह 'हा सीता' कहकर उठ बैठ चारों ओर देखने लगा। मानो हथिनीके वियोगमें हाथी चारों ओर देख रहा हो। फिर उन्होंने आकाशकी ओर देखा। आकाश में उन्हें दो मुनि दीख पड़े। वे दोनों मुनि अपने परलोककी सारी सगृहीत कर चुके थे। और गुरुभक्तिमें लुब्ध थे। उन्होंने रामसे कहा—"अरे धर्मबुद्धि और श्रीसम्पन्न बाबू राम ! तुम उस बातके लिए क्यों रोते हो जिसमें सुमेरुपर्वत बराबर दुख है। जिसने दुख ओका नहीं छोड़ा उसके लिए नरकरूपी नदीका सतरण बहुत कठिन है। कायर-पुरुष ही इस प्रकार रुदन करते हैं। सत्पुरुष तो स्त्रीको तृणवत् समझते हैं। स्त्री वह व्याधि है जो क्षण-क्षण दुख देती हुई भी नहीं अघाती। परन्तु जो जिनके उपदेशसे प्रसादित होकर इस छोड़ देते हैं उन्हें सैकड़ों जन्ममें भी दुख नहीं होता ॥१-६॥

[५] यह वचन सुनकर अविरल अश्रुधारा बहाते हुए रामने कहा "गाँव और पत्तन मिल सकते हैं, शीतल बड़े-बड़े उद्यान मिल सकते हैं, उत्तम अश्व और गज प्राप्त हो सकते हैं स्वर्णदंडपर फहराती हुई पताका मिल सकती है, आज्ञाकारी अनुचर मिल सकते हैं, और भोगके लिए पर्वतसहित वसुंधरा प्राप्त हो सकती है। परिजन पुरजन मिल सकते हैं। शोभा सम्पत्ति और द्रव्य

भी मिल सकते हैं, पान और विलेपन तथा अनुकूल उत्तम भोजन मिल सकता है। शृंगार (भ्रमर) घुम्मित और कपूर-सुवासित वस्त्र मिल सकता है, परंतु हृदयसे वाञ्छित सुन्दरमुखी यह स्त्री रत्न नहीं मिल सकता। यह यौवन, यह मुख कमल वह सुरति, सुशील हाथ (इन सबको) जिसने इस जगमें बहुत नहीं माना उसका समस्त जीवन व्यर्थ है" ॥१-६॥

[६] थोड़ा मुख पिचकाकर तब फिर परमेश्वर बोले— "तुम भोगकी प्रशंसा क्यों करते हो, तुम उसका केवल उज्ज्वल रंग देखते हो। पर भीतर तो यह रक्तसे लिप्त है। शरीरमें दुर्गन्धित, पूयाकी गठरी और चामवेष्टित हड्डियोंकी पोटली है। मायाके यन्त्रसे वह घूमती है। नौ नाड़ियोंसे उद्भिन्न होकर चल रही है। आठ कर्मोंकी गाँठोंसे संघटित रस मज्जा और रक्तपंकसे भरी उसे केवल मधुर मांसका घर समझिए, कृमि और कीड़ोंका घर है। तथा खोटकी शत्रु और परलोकका भार है। आहारके छिन्न पीसना और शवमें मृतककी भाँति सो जाना जिसमें जीवित रहना। इस प्रकार श्याम केश छोड़के तथा जीते मरते हुए लोगोंका जन्म व्यतीत हो जाता है। मरणकालमें काक उस पेसा फाट खाते हैं कि उस रसकर भाग मुख देखा कर लेते हैं। सैकड़ों मक्खियोंसे भिनभिनाते उस वैसे स्त्री-शरीरसे किस प्रकार रमण किया जाता है" ॥१-६॥

[७] उसके मधुर गतिवाले चरण-युगलको पहाँ बुरी तरह खा जाते हैं यह सुहावना सुरति-नितम्ब कौओंको विसविसाता हुआ पिनौना हो उठता है। यह धर्मकीला पीन मध्यभाग कचरा खा लिया जाता है। अभिमानकी इच्छा रखनेवाला यह यौवन भयंकर रूपमें धारा हो उठता है। जीवित अवस्थाके उस सुन्दर

मुखवालेको, मरते समय कृमि खा जाते हैं। उसके रंगवाले, पूजित और चर्चित मधरबिम्ब सियार लुचित कर देते हैं। विभ्रमसे भरे, कान्तिहीन दोनों नेत्रोंको कौए खण्डित कर देते हैं। कुतूहलजनक यह केशकलाप भी भयंकररूपसे बिखर जाता है। यह मनुष्य, यह मुख कमल, ये स्तन, यह प्रगाढ़ आलिंगन—ये सब नष्ट होने लगते हैं तो लोग यही बोल उठते हैं, "छि छि कितने घिनौने हैं ये" ॥१-७॥

[८] इस मैले रस मज्जा और मांससे भरे देहरूपी घरमें यह जीव ६ माह रहता है। यही पहले नया नाभिकमल (नरा) उत्पन्न होता है। पहला पिंड सम्बन्ध तभी होता है। फिर दस दिन वह रुधिर-रूपी जलमें रहता है, ठीक वैसे ही जैसे बीज धरतीमें पड़ा रहता है। फिर बीस दिनमें वह और उठता है, मानो जलमें फल उठा हो। तीस दिनमें वह बुद्बुद (बुम्बुक्) बनता है मानो परागमें हिमकण पड़ा हो। चालीस दिनमें वह फैल जाता है मानो नया प्रबल अंकुर फैल गया हो। पचास दिनमें वह और पुष्ट होता है मानो चारों ओरसे विकसित सूरन कन्द हो। फिर सौ दिनमें हाथ सिर पैर मन आते हैं और बीस दिनमें शरीर स्थिर हो जाता है। इस प्रकार ६ माहमें जीव शरीर (माँके उदर) से निकलता है। और बढ़ता हुआ यह सब भूल जाता है। (आश्चर्य है) कि जीव जिस द्वारसे आता है यह उसीको नहीं छोड़ सकता। कुँएमें जुते हुए बछड़के बैलकी तरह भव-संसारमें भटकता हुआ कभी नहीं थकता ॥१-१०॥

[६] यह समझकर अपने मनमें धीरज रखना चाहिए। जरा हाथका कड़ा और दर्पण तो रखो। चार गतियोंसे सकुल इस संसारमें आते जाते और मरते हुए जीवने जगमें किसे नहीं रुलाया,

जगेँ जीवेँ को ण रुवाविअउ । को गरुअ वाइ ण मुआविअउ ॥३॥
को कहि मि णाहिँ संताविअउ । को कहि मि ण आवइ पाविअउ ॥४॥
को कहिँ ण दड्ढु को कहिँ ण मुउ । को कहिँ ण भमिउ को कहिँ ण गउ ॥५॥
कहिँ ण वि माणुसु कहिँ ण वि सुरउ । कवणेँ जोणिहेँ किं पि ण वाहिरउ ॥६॥
तइलोक्कु वि भमिउ असन्तएँण । महि सयल गइ खयवन्तएँण ॥७॥

घत्ता

सायर पीउ पियन्तएँण असुएँहिँ रुअन्तेँ भरियउ ।
हड्ड-कलेवर-संचएँण गिरि मेरु सो वि अन्तरियउ ॥८॥

[१०]

अथवइ किं बहु-चविएण राम । भव भमिउ भयङ्करेँ तुहु मि ताम ॥१॥
णइ जिह तिह बहु-रूवन्तरेँहिँ । णर जम्मण- मरण- परम्परेँहिँ ॥२॥
सा सीय वि जोणि-सएहिँ भाम । तुहुँ कहि मि बप्पु सा कहि मि माय ॥३॥
तुहुँ कहि मि भाउ सा कहि मि बहिणि । तुहुँ कहि मि दइउ सा कहि मि घरिणि ॥४॥
तुहुँ कहि मि णरएँ सा कहि मि सग्गेँ । तुहुँ कहि मि महिहिँ सा गयण-मग्गेँ ॥५॥
तुहुँ कहि मि णारि सा कहि मि णाहु । किं सविसा-रिसिहेँ करहि मोहु ॥६॥
उम्मेल्लहि विसीय-णाइग्गहणु । अणवरउ भमइ जगु जिणवसेसु ॥७॥
जइ ण करिउ जिण-वयणामएण । तो पत्तइ माणुसु माणुसेण ॥८॥

घत्ता

एम भणेप्पिणु बे वि मुणि गय कहि मि अणङ्ग-पसत्थेँ ।
रामु परिट्ठिउ झिम्विणु जिह पसु एक्कु समाणि स-हत्थेँ ॥९॥

[११]

णिरहारम- जाम पडिवक्ख- तणु । चिन्तवइ मणु विसण्ण-मणु ॥१॥
णवर संसारेँ ण अत्थि सुहु । णवर गिरि-मेरु-समाणु दुहु ॥२॥

खाइ मारकर कौन नहीं रोया, कहाँ कौन नहीं सताया गया, किसे कहाँ आपत्ति नहीं भोगनी पड़ी। कौन सड़ा नहीं और कौन मरा नहीं। कौन भटका नहीं, कौन गया नहीं, कहाँ किसे भोजन नहीं मिला और किसे कहाँ सुरति नहीं मिली। संसारमें जीवके लिए पाप कुछ भी नहीं है। खाते हुए वसन दाँतों छाक खा डाले और जल-जल कर सारी धरती फूँक डाली। पी-पीकर समस्त सागर पी डाला और रो-रोकर उसे भर भी दिया। हड्डियों और शरीरोंके सङ्कपस समन सुमेरुपर्वतको भी ढक दिया ॥१-८॥

[१०] अथवा हे राम! बहुत कहने से क्या, तुम भी भव सागरमें अबतक भटकते रहे हो। नटकी तरह मानो रूप बदलकर जन्म जरा और मरणकी परम्परामें भटकते रहे हो। यह सीता भी सैकड़ों योनियोंमें जन्म पा चुकी है। कभी तुम बाप बने और यह माँ बनी। कभी तुम भाई बने और यह बहन बनी। कभी तुम पति बने तो यह पत्नी बनी। कभी तुम नरकमें थे यह स्वर्गमें थी। कभी तुम धरतीपर थे तो यह आकाशगामी। कभी तुम स्त्री थे तो यह पुरुष थी। अरे स्वप्नमें प्राप्त इस वैभवमें मुग्ध क्यों होते हो? महाव्रतसे रहित यह वियोगरूपी उन्मत्त महागज सारे संसारमें उत्पात मचा रहा है। यदि जिन-वचन रूपी अंकुशसे इसे वशमें न किया जाय तो यह सारे विश्वको खा जाय।" यह कहकर वे दोनों आकाश-मार्गसे कहीं चले गये। केवल राम ही कृपणकी भाँति एक, धन ही (धम्मा और रुपया-पैसा) अपने हाथमें लेकर बैठे रह गये ॥१-९॥

[११] रामका शरीर वियोग-ज्वालामें जल रहा था। खिन्न-मन होकर वह सोचने लगे "सचमुच संसारमें सुख नहीं है, सचमुच संसारमें दुःख सुमेरु पर्वतके बराबर है। सचमुचमें जन्म,

जरा और मरणका भय है। और जीवन जल-बुदबुदकी तरह क्षणभंगुर है। किसका घर? किसके परिजन और बन्धुजन, किसके माता-पिता और किसके सुधीस्वजन। किसके पुत्र, किसके मित्र किसकी स्त्री, किसका भाई, किसकी पहल, जब तक कम-पक्ष है तभी तक बन्धु और स्वजन वैसे ही हैं जैसे पक्षी पेड़पर आकर बसेरा कर लेते हैं। यह विचारकर राम उठे किन्तु रोते हुए वह अपनी सुध-बुध फिर भूल गये। राम विटकी तरह कामातुर होकर 'हा सीता' कहते हुए घूमने लगे। वह निधन (धन्या और धनसे रहित) अलक्षणवर्जित (लक्षण और गुणोंसे शून्य) और बहुव्यसनों (दुःख और बुरी आदत) से युक्त थे॥१-६॥

[१२] तब मन्नप्राय और स्वाभिमानी रामने वनदेवीसे पूछा—"मुझे क्षण-क्षणमें क्यों दुःखी कर रही हो। बताओ यदि तुमने मेरी कान्ता देखी हो। यह कहकर वह आगे बढ़े ही थे कि उन्हें एक मत्त गज मिला। उन्होंने कहा "अरे मेरी कामिनीकी तरह सुन्दर गतिवाले गज क्या तुमने मेरी मृगनयनीको देखा है?" अपनी ही प्रतिध्वनिसे प्रतारित होकर वह यही समझते थे कि मानो सीता वधीन ही उन्हें पुकारा है। कहीं वह नील कमलोंको अपनी पत्नीके विशाल नयन समझ बैठते, कहीं खिलते हुए अशोक वृक्षको वे यह समझ लेते कि सीतादेवीकी बाँह हिल डुल रही है। इस प्रकार समस्त धरती और वनको छान करके राम वापस आ गये और वह अपने सुन्दर लतागृहमें पहुँचे। अपना धनुष बाण (उतारकर) एक ओर रखकर वह धरती पर गिर पड़े॥१-६॥

चालीसवीं सन्धि

(फिर कवि निवेदन करता है कि) अब इस रामचरितको सुनिये जो दशरथके तपका कारण, सबका उद्धारक, वज्रवर्णके सम्यक्त्वसे परिपूर्ण, जिनवरके कीतनसे शोभित और सीताके सतीत्वसे भरपूर है।

[१] मैं कवि (स्वयम्भू) शान्त और अठारह प्रकारके दोषोंसे रहित मुक्तिके अधीश्वर मुनिसुव्रत जिनको प्रणाम करता हूँ। वेद कषाय और पापोंके नाशकर्ता, सुन्दर कान्तिसे परिपूर्ण सधारी आदिसे रहित माया और प्रमादके वंचक, दुष्टतासे अपूज्य और सुरेन्द्रोंसे पूज्य है। वह उपाध्यायसे रहित होकर भी त्रिलोकके विद्वानोंके शिक्षक हैं। वह वारण रहित होकर भी मद मधु आदिके निषेधकर्ता हैं। निन्द्रा रहित और जितेन्द्रिय महान प्रचण्ड कामके संहारक और सुन्दर निधियोंके अधिपति हैं। मैं ऐसे उन शुभगतिगामी मुनिसुव्रत स्वामीको प्रणाम करता हूँ। अब मैं दृढ़संकल्प होकर इस बातको कहता हूँ कि लक्ष्मणने किस प्रकार खरदूषणको मारा और उसकी सेना परास्त की ॥१-११॥

[२] यहीं (इस प्रसंगमें) सीतादेवीका हरण हुआ, यहीं रामको वियोग दुःख सहन करना पड़ा यहीं जटायुका घार युद्ध हुआ यहीं विराधित विद्याधरसे भेंट हुई। इस समय उस भीषण वनमें भयंकर युद्ध हो रहा था। सुभट एक दूसरेको ललकार रहे थे। वे अत्यन्त क्रूर और विकट दृष्टिसे उठ रहे थे। बहुत बड़े बड़े दृढ़ बने हुए थे आक्रमणशील, भयसे भयंकर रौद्र जर्जर अंग और घावोंसे भरे हुए थे। तलवार सहित हाथ इधर उधर कटकर

पड़े थे। वे तीव्र और कठोर शब्द बोल रहे थे, हाथियोंके शरीर विध्वंस थे। उनके कुम्भस्थल टूट फूट चुके थे। सिर फूटनेसे भग्न भी आहत हो उठे थे। रक्तरंजित वह युद्ध, समुद्रमें हुए उस मन्थनकी तरह जान पड़ता था। छत्रों और ध्वज-दण्डोंके सौ-सौ टुकड़े हो चुके थे। हड्डियों और धड़ोंसे मण्डित उस भयंकर युद्धमें लक्ष्मण सेनापर प्रहार करता हुआ दिखाई दे रहा था। योद्धाओंके शरीर सवारियों और बाणकी अनीकोंसे सहित थे। उनकी चोटी-चोटी कट चुकी थी। वक्षस्थल जर्जर थे। रक्तरंजित ध्वजाएँ काँप रही थीं ॥१-१०॥

[२] स्वयं कुमार लक्ष्मणके तीरोंसे आहत होकर कोई योधा अस्त्र सहित और कोई यान सहित खण्डित हो गया था। कोई आकाशसे गिरता हुआ दिखाई दे रहा था। कोई योधा गजपत्र (अङ्कुश) और चिह्नके साथ छिन्न शरीर दीख पड़ा। कोई योधा बाणों और शाखोंसे बिंधकर पड़ा हुआ था। कोई कल्पद्रुमकी तरह छिन्न-भिन्न हो गया था। कोई योधा तीखे तीरोंसे विद्ध हो उठा। बड़े-बड़े अस्त्रोंसे सम्पन्न होने पर भी कोई योधा बन्दी बना लिया गया। क्रुद्ध होकर कोई सुभट काँपता और मरता हुआ भी गरज रहा था। कोई समय योधा सशरीर ही छिन्न-भिन्न हो गया। कोई योधा हाथमें धनुष-तीर लिये हुए ही मूर्छित होकर गिर पड़ा। क्रोधसे उद्भट कोई योधा चमकते चमरोंकी शोभासे ऐसा चमक रहा था कि मृत भी जीवित लग रहा था। कोई योधा मांस-मज्जाकी घनी कीचड़में धँस गया। कोई गिरता पड़ता अपनी ही आँतोंमें छिप सा गया। आता हुआ कोई मन मुरपोंसे छिन्न-भिन्न हो गया। कुसिद्धकी तरह नियन्त्रित होने पर भी वह सिद्धि प्राप्त नहीं कर पा रहा था। लक्ष्मणके तीरोंसे आहत

खर-दूषणकी अपरवरी सेना कामिनीके नवल प्रेमकी तरह जान पड़ती थी। क्योंकि न तो यह (नवल प्रेम और सेना) जा ही पाता था और न ठहर ही पाँव पाता था ॥१-१०॥

[४] इस प्रकार दूसरेके धन और स्त्रीका अपहरण करनेवाले, शत्रु सेनाओंमें तोड़-फोड़ करनेवाले सात हजार योधा राजाओंको अकेले लक्ष्मणने ही मारकर गिरा दिया। इस प्रकार आधी सेनाके धराशायी हो जानेपर अब आधी सेना ही शेष बची तो परम यशस्वी विराधितने कुमार लक्ष्मणका अभिनंदन करते हुए कहा—"हे देव आज अवश्य ही आप मेरी रक्षा करें आप मेरे स्वामी हैं और मैं आपका अनुचर। चारण मुनियोंने जो कुछ भविष्यवाणी की थी उसे मैं आज अपनी आँखोंसे सच होता हुआ देख रहा हूँ। आज मैंने आपके चरणयुगलके दर्शन कर लिये। जब मैं अपनी माताके गर्भमें था तभी इसने (खर-दूषणने) मेरे पिताका वध कर दिया था। और साथ ही उत्तम प्रजासे सहित मेरा तमलंकार नगर भी छीन लिया। इस प्रकार इस महा-समरमें खर-दूषणसे बहुत पुरानी शत्रुता है।' विजय-लक्ष्मीके इच्छुक विराधितने और भी कहा "मुझ सेवकपर प्रसाद करें। आप युद्ध मुखमें आकर खरसे लड़कर उसे नत करें और तबतक मैं दूषणसे निपटता हूँ ॥१-२०॥

[५] विद्याधर विराधितके वचन सुनकर कुमार लक्ष्मणने उसे अभयदान दिया। उसने कहा—"जबतक मैं एक ही तीरसे शत्रुको मार गिराता हूँ तबतक तुम यहीं बैठो। खरदूषणकी सेना को मैं आज ही अपने तीरोंसे तितर-बितर करता हूँ। और पताका वाहन, राजा गजोंके साथ सबोंका शम्बूक कुमारके पथपर प्रेषित किये देता हूँ। तुम्हें मैं अपनी जन्मभूमिके दर्शन करा दूँगा। मैं

मी समलकारनगरका उपभोग करूँगा।" इस प्रकार लक्ष्मणके आश्वासन देनेपर विद्याधर विराधित प्रसन्न हो उठा। वह सिर झुकाकर चरणोंमें नत हो गया। इसी बीच, युद्धसे निपटनेपर खरने अपने मन्त्रीसे पूछा कि 'यह कौन है कि इस प्रकार एक दम निराकुल होकर और हाथमें अंजलि लेकर (लक्ष्मणको) प्रणाम कर रहा है। वह बाहुबलि (विराधित) लक्ष्मणसे उसी प्रकार जा मिला है जिस प्रकार वर्षाकाल जाकर कृतान्तसे मिल जाता है।" इसपर विमानमें बैठे-बैठे ही मन्त्रीने कहा कि "क्या आपने अपने शत्रु विराधितको नहीं देखा। प्रचण्ड यशस्वी विशालबाहु वह, अनुराधाका पुत्र विराधित है। रथ और अपनी सेना लेकर वह, चंद्रोदरका पुत्र है" ॥१-९॥

[६] राजा खर और मन्त्रीमें जब इस प्रकार बातचीत हो रही थी तभी लक्ष्मण और विराधितने मिलकर शत्रुसेनाको घेर लिया। अरिदमन लक्ष्मणने खरको ललकारा और विद्याधर विराधितने रथ बढ़ाकर दूषणको। सम्मुख युद्धमें समर्थ हाथमें धनुष बाण लिये हुए आरक्तनयन गज कुम्भस्थलोंका विदारण करनेवाला वह (विराधित) रणमें अत्यन्त भयंकर हो रहा था। अपने पूर्व बैरका स्मरणकर उसने दूषणको (ललकारकर) चुनौती दी। अश्व अश्वपर अश्व और गजपर गज प्रेरित कर दिये गये। रथपर रथ हाँके जाने लगे। और योधापर योधा दौड़ पड़े। इस प्रकार दोनों ही सेनाएँ एक दूसरेके निकट जाकर आपसमें लड़ने लगीं। वे दोनों ही सेनाएँ समुद्र थीं? सभी कवच आयुध और वाहनोंसे परिपूर्ण थीं ॥१-९॥

[७] उस तुमुल युद्धमें सेनाएँ आपसमें भिड़ गईं। विराधित दूषणसे लक्ष्मण खरसे भिड़ गये। पट-पटह पड़े टूट तूर्योंके

तहिँ रण-संगमेँ । कुम्भ दुराऍसे ॥२॥
रह-धय-गोन्दलेँ । वलिय मन्दलेँ ॥३॥
भड कडमालेँ । मोडिय-सन्धेँ ॥४॥
मरवर-वमिएँ । किम-किकिविविहम् ॥
धम्मा सुखिएँ । रह-सय-चलिएँ ॥६॥
तहिँ अपराजय । चार नाराजय ॥७॥
मिलिय महम्मक । मिलइ सरत्थल ॥८॥
ज वि समप्पर । जे वि भयउर ॥९॥
जे वि चक्काचर । जे वि असावर ॥१०॥
जे वि महप्पर । जे वि अणुप्पर ॥११॥
जे वि अणुवर । जेम्पि वि दुद्धर ॥१२॥

घत्ता

जेम्पि वि जस-लुद्धा अमरिस-कुद्धा तिहुयण-मल्ल समावडिय ।
अमरिस्त-वसलव विप्फुरियाणण णाईं परोप्पर अब्भिडिय ॥१३॥

[८]

दुवई

ताम जमदुमेण अण्णेण्णु विसज्जिउ रणेँ भयङ्करो ।
पं वप-कालेँ काहु उप्पाइउ तिहुयण-जण-भयङ्करो ॥१॥
संचल्लु बाणु । महपवक समाणु ॥२॥
रिउ-सरहेँ दुरुक्कु । तव कर वि मुक्कु ॥३॥
सारहि वि भिन्नु । धय-दण्ड छिन्नु ॥४॥
चक्कवर वि भग्गु । कव वि ण लग्गु ॥५॥
पाडिउ विमाणु । विमएँ समाणु ॥६॥
तव थिरु आउ । थिउ असि-सहाउ ॥७॥
पावइ दुरन्तु । मुह विप्फुरन्तु ॥८॥
पच्छें वि राम । णारायणेण ॥९॥
ण सुरहाणु । थिउ कर्णे पगासु ॥१०॥
अब्भिडु जे वि । असिवरइँ लेवि ॥११॥

भीषण और गम्भीर कलकल होने लगा। अश्वोंके मुख ऊपर थे। रथ और गजोंकी भीड़ मची थी। ढोल बज रहे थे। योद्धाओंका संहार होने लगा। रथ मुड़ने लगे। नरवर ध्वस्त हो रहे थे। केश पसीने आ रहे थे। सैकड़ों रथ वहीं खप गये थे। इस प्रकार उस युद्धमें अपराजित कुमार लक्ष्मण और खरमें मुठभेड़ हो रही थी। दोनोंके उर विशाल थे, दोनों मत्सरसे भरे हुए भयङ्कर हो रहे थे। दोनों ही वीर पराक्रमी आकांक्षा रखते थे। दोनों ही उद्भट और धनुर्धारी थे। दोनों ही पराक्रमशाली अमरोंसे क्रुद्ध और त्रिभुवन मल्ल थे। वे ऐसे भिड़े मानो दशानन और इन्द्र ही भिड़े हों ॥१-१३॥

[८] तब लक्ष्मणने भयङ्कर अर्धचन्द्र तीर छोड़ा। वह तीर मानो दोनों आकाशोंका सब जलानेवाला धूमकेतु ही था। आकाशतलमें भ्रमण करता हुआ वह तीर खरके रथके निकट पहुँचा। खर तो किसी प्रकार बच गया परन्तु उसका सारथि और ध्वज-दण्ड छिन्न-भिन्न हो गये। उसका धनुष भी टुकड़े टुकड़े हो गया। किसी तरह वह तीर उसे नहीं लगा। फिर भी उसका रथ खण्डित हो गया। अब खर विरथ हो गया केवल उसके हाथमें तलवार था। तब तमतमाकर दौड़ा। यह देखकर नागपाश लक्ष्मणने भी सूर्यहास खड्ग अपने हाथमें ले लिया। अब उनमें संग्राम इनमें इन्द्र होने

लगा। हाथमें खड्ग लिये हुए वे नाना स्थानोंसे अपनी पैतरेबाजी दिखाने लगा। श्याम (गौर) वर्ण वे दोनों ऐसे जान पड़ते थे मानो नव वर्षागम कालमें बिजलीसे शोभित मेघ हों ॥१-१२॥

[९] वे दोनों ऐसे लगते थे मानो सूँड उठाये हुए हाथी हों या पीठपर पूँछ फहराये हुए सिंह। पवनकी तरह निष्ठुर, समुद्रकी तरह खारे, और सर्पराजकी तरह घुघर हो रहे थे। युद्धधीर वे दोनों वीर आपसमें भिड़ गये। इसी बीच आकाशमें देवबालाएँ प्रसन्न होकर आपसमें बात-चीत करने लगीं। एक बोली—"बताओ, किसमें अधिक गुण हैं?" यह सुनकर, चन्द्रमुखी और कमलनयनी दूसरी अप्सराने मत्सरसे भरकर उसे झिड़कते हुए कहा—'अरे सुभट शत्रु-शिविरका खरको छोड़कर दूसरा कौन चकनाचूर कर सकता है।' इस अवसरपर कई अप्सराओंने कहा—"अरे लक्ष्मणके साथ इस खर (गधे) की तुलना क्या करती हो। उसका तुलनाम खर तो एक दम निकम्मा है।" इतनेमें खर कण्ठमें आहत हो उठा। लक्ष्मणके तीरोंकी नोक और सूर्यहास खड्गके नखाग्रसे खरका सिरकमल तोड़कर लक्ष्मणने फेंक दिया। आपाप्ति? उसकी मृणाल थी। मुखसे कण्टकोंसे उसके दाँत पराग थे। और अधर पत्ते ॥१-११॥

[१०] जिस समय कुमार लक्ष्मणने निशाचर-सेनाके सार श्रेष्ठ खरका मार गिराया उसी समय विराधितका दूषणने रथ विहीन कर दिया। उसकी सेना रथ गज और वाहनोंके साथ शीघ्र ही पराजित होने लगी। इस प्रकार शत्रु-सेनाका स्वामी जीते जी पकड़ लिया गया। हाथ फैलाकर उसने विराधितके बाल पकड़ लिये किसी प्रकार उसे मारा भर नहीं। इसी बीच खरका सिरकमल काटकर लक्ष्मण उस ओर दौड़े जहाँ विराधित था।

[१२] लक्ष्मणने आकर देखा कि राम सीताके वियोगमें दुःखसे परिपूर्ण हो रहे हैं। धनुष तीर और तूणीर, सभी कुछ हाथ से छूटकर धरतीपर पड़ा है। वियोगके शोकसे आकुल राम, ऐसे ही म्लान शरीर हो रहे थे जैसे मम्नदन्त गज छिन्नशाखा वृक्ष फणरहित सर्प, वज्र पीड़ित पर्वत, राहुग्रस्त चन्द्र और जलरहित मेघ मलिन होता है। तुरन्त ही लक्ष्मणने रामसे पूछा—"अरे जटायु दिखाई नहीं देता, सीताके साथ वह कहाँ गया।" यह सुनकर रामने जो कुछ कहा, लक्ष्मणको वह किसी भी प्रकार अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कहा—"सीता वनमें नष्ट हो गई, मैं अब और कोई बात नहीं जानता' तथा जो अजेय पक्षिराज जटायु था उसका भी रणमें संहार हो गया—किसी दृढ़ बाहु और प्रचंडवीरने उसे धरतीपर पटक दिया ॥१–६॥

[१३] इस तरह राम और लक्ष्मणमें बातें हो ही रही थीं, तभी अपनी गिनी-चुनी सेना लेकर विराधित वहाँ आया। हाथोंमें अंजलि लेकर और पीठ तक माथा झुकाकर विद्याधर विराधितने रामको वैसे ही प्रणाम किया जैसे इन्द्र जन्मके समय जिनेन्द्रको प्रणाम करता है। निमल रामने भी उसे आशीर्वाद देकर लक्ष्मण से पूछा कि "यह कौन है जो तारोंसे वेष्टित चंद्रकी तरह, सेना सहित मुझे नमस्कार कर रहा है।" यह सुनकर लक्ष्मणने सद्भाव पूर्वक कहा, "इस मंदरापवर्की तरह विराध और दृढ़ हृदय चंद्रोदरका पुत्र विराधित है, मेरा पक्का मित्र और खरदूषणका कट्टर शत्रु है।' इस प्रकार उसकी प्रशंसा करके लक्ष्मणने तत्काल कहा— सीता दूर की गई है, उन्हें अब कहाँ पाऊँ। दैवके विमुख होनेपर क्या करूँ। राम सीताके वियोगमें मर रहे हैं। इनके मरनेपर मैं भी मर जाऊँगा" ॥१–१०॥

[१४] यह सुनकर राहुग्रस्त चंद्रकी तरह क्षिप्रशरीर और विमल चन्द्रोदरपुत्र विराधित चिंतित हो उठा। वह अपने मनमें सोचने लगा कि "मैं जिसकी आशासा (शरण) में जाता हूँ वही असफल क्यों हो जाता है। इनके बिना मैं अपने समयका यापन कैसे करूँगा ? निधन होनेपर भी बड़ेकी सेवा करना अच्छा। हो न हो मैं इनकी ही सेवामें रहूँगा। आखिर भाग्यकी विडम्बना अवश्य रहेगी। एक न एक दिन अवश्य सफल होगी।" यह विचारकर उसने लक्ष्मणसे कहा, "पीछा करना कौन बड़ी बात है, मैं तबतक सीतादेवीकी खोज करता हूँ, कि जबतक वह मिल न जाय।" यह कहकर उसने तुरन्त भेरी बजवा दी। दसों दिशाओं में सेना इस प्रकार चल पड़ी मानो विजय-लक्ष्मी ही लौट रही हो या फिर स्यादिपक्ष ही घूम रहा हो या सिद्धका सिद्धि प्राप्त हो रही हो। किंतु (प्रयत्न करनेके अनंतर) विद्याधर सेना ध्वज और वाहनों सहित अपना मुख नीचा करके ऐसे रह गई मानो हिम वातसे आहत म्लान और परागविहीन कमलिनीवन हो ॥१-१ ॥

[१५] तदनन्तर विराधितने आकर रामसे कहा, "खरदूषण के मार डालनेके अनंतर रावणके जीवित हुए, देवभीषण और त्रिभुवनके जनोंके लिए भयकर इस वनमें रहना ठीक नहीं। शम्बूकका वधकर सूर्यहास उत्तम खड्गको लेकर एव (इस प्रकार) कालके मुखमें प्रवेशकर कौन (यहाँ) बच सकता है। जहाँ इन्द्रजीत भानुकर्ण पंचमुख मय और मारीच हैं। तथा जहाँ मेघ वाहन अक्षयकुमार तथा सहस्रमति और दुर्निवार विभीषण विद्यमान हैं। हनुमान नल नील जाम्बवंत तथा युद्धमार उठानेमें समर्थ सुग्रीव वर्तमान हैं, जहाँ अंग अंगद गवय और गवाक्ष हैं। वहाँ उसके बहनोईको मारकर कौन जीवित रह सकता है।" यह सुन-

[१७] सेना भागती हुई देखकर खर-दूषणका वीर पुत्र प्रचंड सुण्ड उसका निवारण करनेके लिए तैयारी करने लगा। हाथोंमें अस्त्र लेकर वह आकर द्वारपर जम गया। रणमुखमें अत्यन्त भयङ्कर सुण्डके स्थित होते ही रामका सेना-समुद्र उमड़ पड़ा। दोनों सेनाओंमें कल-कल ध्वनि होने लगी। अत्यन्त भयङ्कर तथा स्पष्ट हाहारव मच गया। सैकड़ों शङ्ख, करताल, काहल टट्टरी, झल्लरी, मृदङ्ग आदि बाजों, भम्भीस भेरी, सरुञ्ज, और हुडुक्कका कोलाहल पूरित हो उठा। सज्जित मद झरते और गरजते हुए गजोंके घण्टोंसे भीषण रव उठा। वक्षस्थलोंमें आहत होकर समस्त पैदल सेना धराशायी होने लगी। सुन्दर रथचक्रोंकी कतारें धरतीमें धँसने लगी। टूटती हुई पताकाओंके स्वर्णिम दण्डों और चामरोंकी कान्ति चमक उठी। रथका पीठके साथ योधा गिरने लगे। चपलाङ्ग महान अजेय दुर्दर्शनीय हिनहिनाते और कान खड़े किये हुए अश्व धरती पर मण्डलाकार बना रहे थे। हलि हल, मूसलास्त्र, भाला अर्धचन्द्र शूल, चापसे मुक्त बाण और शस्त्रोंसे भिन्न कपाल मस्तकहीन धड़ धरतीपर अपनी भुजाओंको हिलाते हुए नाचने लगे। इस प्रकार उस तुमुल युद्धमें पराक्रमी विराधित और सुण्डके बीच घमासान भिड़न्त हुई। ठीक उसी तरह, जिस तरह धरतीके लिए, भरत और बाहुबलिके बीच हुई थी ॥१–९॥

[१८] परन्तु चन्द्रनखा (खरकी पत्नी) ने बीचमें ही अपने पुत्रको यह कहकर युद्धसे विरत कर दिया कि शम्बूक और खर-दूषणका हत्यारा लक्ष्मण दिखाई दे रहा है, इस प्रकार लड़नेसे काम नहीं चलेगा। जीवित रहने पर तुम्हें दूसरा राज्य मिल जायगा। अच्छा हो तुम सुरसंहारक रावणके पास जाकर गुहार करो। माँके कहने पर सुण्ड युद्धसे विमुख हो गया। उसने तुरन्त

एत्थु स-विराहिउ पइट्ठु रामु । णं कामिणि-जणु मोहन्तु कामु ॥५॥
खर-दूसण मन्दिरेँ पइसरेवि । चन्दोयर पुत्तहों रज्जु देवि ॥६॥
साहारु ण बन्धइ कहि मि रामु । णइरेवि विभाएँ धामु धामु ॥७॥
दह दिसिउ णउणेंहिँ परिभमन्तु । दीहिय विहार मढ परिहरन्तु ॥८॥
गउ ताम जाम जिण-भवणु दिट्ठु । परिओसें वि अब्भन्तरें पइट्ठु ॥९॥

घत्ता

जिणवरु णिज्झाएँ वि चित्तें थुणेंवि आइ णिसारिउ विलक्खमइ ।
माउहेँहिँ मासेँहिँ कोल-सहासेँहिँ दुक्खु स ण प्र वमाहियइ ॥१०॥

●

[४१ एकचालीसमो संधि]

खर-दूसण गिलेंवि चन्दणहिहें तित्ति ण जाइय ।
ण खय-काल-छुह रामहों पडीवी आइय ॥

[१]

कच्छकुमार-तीरें अत्थन्तएँ । खर-दूसण-सगामें समत्तएँ ॥१॥
पुरोहारिएँ सुन्द-महब्बलें । रमणहार-णयर गएँ हरि-बलें ॥२॥
पत्तएँ असुर-मल्लें सुर-डामरें । जणविवें मणु-कन्द-महाभरें ॥३॥
पर-बल मल पयालाहिम्बोलें । णवरि समुद्द रउद्द विरोलें ॥४॥
मुक्कलइम- भयाणय गयणयलें । राम-रणाहवें हणुवन्तलें ॥५॥
विहडिय-भड-घड भिन्न-कबन्धएँ । कामिणि-जण मच भयभसन्दएँ ॥६॥
सीयएँ सहु सुरवर-सन्तावें । दुइ दुइ कह पइडएँ रावणें ॥७॥
तहिँ अवसरें चन्दणहि पराइय । विवविय कम-कमलेंहिँ दुइ-बाइय ॥८॥

ही उन्होंने लिए प्रस्थान किया। इधर तमलङ्कार नगरीमें रामने विराधितके साथ वैसे ही प्रवेश किया जैसे काम कामिनीजनमें प्रवेश करता है। खर-दूषणके भवनमें आकर विराधितने राजपाट सौंप दिया। परन्तु राम किसी भी प्रकार अपनेको सान्त्वना नहीं दे पा रहे थे। सीताके वियोगमें वह क्षीणतम हो रहे थे। राम त्रिपथ और चतुष्पथोंमें भ्रमण करते हुए वह विशाल विहार और मठोंको छोड़ते हुए एक जिन-मन्दिरमें पहुँचे। तीन बार उसकी प्रदक्षिणा देकर उन्होंने भीतर प्रवेश किया। वहाँ जिनवरका दर्शन और ध्यानकर विमल बुद्धि राम एकदम निराकुल हो गये। अपभ्रंश (अपभ्रंश) भाषाभाषामें हजारों श्लोकोंसे वनपति रामने स्वयं जिनकी स्तुति की॥१-५॥

०

इकतालीसवीं संधि

खरदूषणके मारे जानेपर भी चन्द्रनखाको शांति नहीं हुई। प्रलयकालकी भूखकी तरह वह रावणके पास दौड़ी गई।

[१] इधर वीर शम्बूकका अन्त हो चुका था खरदूषण भी युद्धमें समाप्तप्राय थे। वीर सुभटकी सेना हट चुकी थी। राम और लक्ष्मण ससैन्य तमलङ्कार नगरमें प्रवेश कर चुके थे। इधर दुर्दय भयंकर, निशाचर वीर रावण भी अनर्थ कर प्राप्त कर चुका था। वह अत्यन्त ही समर्थ था सनात्पी पवनका आन्दोलित करनेमें भयंकर शत्रु-समुद्रके मथनमें निरंकुश-नारीओंको वश करनेमें, दान-युद्धमें मुक्तदान करनेमें विघटित भटसमूहको कुपलनेमें कामिनियोंके मन और नयनोंको आनन्द देनेमें। सुरपीड़क उमन सोनाके साथ जिस समय उद्यानमें प्रवेश किया उसी समय दुर्दर्श

भारी चन्द्रनखा भी उसके निकट पहुँची। चरणोंमें गिरकर वह बोली, "शम्बूक कुमार मारा गया, खरदूषणने भी यमका रास्ता नाप लिया है। आपके जीते जी मेरी यह दशा" ॥१-५॥

[२] चन्द्रनखाके दीन हीन वचनोंको सुनकर, दशानन शीश झुकाकर ऐसे रह गया मानो चन्द्र ही कान्तिसे हीन हो उठा हो या पवन दावानलमें जलकर प्रभाहीन हो उठा हो। या मुनि ही चरित्रसे भ्रष्ट हो गया हो, या भव्य जीव संसारसे त्रस्त हो उठा हो। उसकी आँखोंसे अश्रु प्रवाह निरन्तर जारी था। उसका मुख एकदम कातर हो उठा मानो सूर्य ही राहुसे ग्रस्त हो गया हो। वह कष्टसे किसी प्रकार अपने दुःखको दूरकर, दशानन रावणके स्नेह स्वरमें बोला 'कुमार शम्बूक और खरदूषणका जिसने वध किया है मैं उसे आज ही यमके शासनमें भेज दूँगा। अथवा इस माहात्म्यसे क्या। (अपूर्ण पाठ ??) असमयमें कौन नहीं मरता। धारण पारण करो। शोक छोड़ो। जन्म जरा मरण और वियोग किसे नहीं होता उससे कोई नहीं बचता। जो जन्मा है वह मरेगा अवश्य। हम तुम भी (एक दिन) आखिर खर दूषणके पथपर जायेंगे ॥१-९॥

[३] शत्रुओंका अभिमानी रावण अपनी बहिनको समझा बुझाकर रातको सोनेके लिए गया। वह अलंकेश्वर उत्तम पलंगपर पड़ा मानो अयाल सहित मृगेन्द्र ही गिरिशिखर पर पड़ा हो मानो विषधर ही निःश्वास छोड़ रहा हो, या दुष्टजनोंसे सताया हुआ सज्जन ही हो। सीताके मोहमें विह्वल होकर रावण कभी गाता, कभी बजाता कभी सुहावन ढंगसे पढ़ने लगता, नाचता और हँसता। इस प्रकार वह विकारग्रस्त हो रहा था। इन्द्रियसुख-की आकांक्षामें वह सहसा प्रज्वलित हो रहा था। दशानन ज्ञान और

मक्कण-परवसु पुरउ ण जाणइ । जिह सयाउ करेसइ आणइ ॥७॥
मच्छइ मयण-सरेँहिँ जज्जरियउ । खर-दूसण-भाउ मि वीसरियउ ॥८॥

घत्ता

चिन्तइ दहवयणु 'जणु जण्णु सुवण्णु समत्थउ ।
रज्जु वि जीविउ वि विणु सीयएँ सव्वु णिरत्थउ' ॥९॥

[४]

तहिँ अवसरेँ आइय मन्दोयरि । सीयहेँ पासु व सीह-किसोयरि ॥१॥
वर-गणियारि व लीला-गामिणि । पियमाहवि व महुरालाविणि ॥२॥
सारङ्गि व विप्फारिय-णयणी । सुरचाविसंजोयण-वयणी ॥३॥
कप्पद्दुमि व थिर-सम्पय-गमणी । छण्णिव व थिय-कमेँ चूडामणी ॥४॥
अह पोमाभिँ अणुहरमाणी । जिह सा तिह पइ वि पउराणी ॥५॥
जिह सा तिह पइ वि बहु-जाणी । जिह सा तिह पइ वि बहु-माणी ॥६॥
जिह सा तिह पइ वि सुमणोहर । जिह सा तिह पइ वि पिय-सुन्दर ॥७॥
जिह सा तिह पइ वि जिय-सासणेँ । जिह सा तिह पइ वि णउ-सासणेँ ॥८॥

घत्ता

किं बहु जम्पिएँ ण उवमिज्जइ कवेँ किसोयरि ।
जिय-पडिछन्दएँ ण थिय साइँ णं जाइँ मन्दोयरि ॥९॥

[५]

तहिँ पइट्ठेँ चवेँवि रज्जेसरि । पभणिय मङ्गुर परमेसरि ॥१॥
'अहोँ दहमुह दहवयण दसाणण । अहोँ दससिर दसास सिय-माणण ॥२॥
अहोँ तइलोक्क-चक्क-चूडामणि । वइरि महीहर वर-वज्जासणि ॥३॥
वीसपाणि तिखण्ड-परमेसरि । सुर णिय-वारण दसण-मसि-करि ॥४॥
पर वलवद पायार-पलोट्टण । दुद्दम दाणव बल दलवट्टण ॥५॥
अइरावणु भिण्डिय रणझप्पे दुम्मदेँ । चाउ कुम्भ-त्थलउ सज्जय-चिन्तहेँ ॥६॥
तहिँ वि कालेँ पइँ दुक्खु ण आयउ । जिह खर-दूसण-मरणेँ आयउ' ॥७॥

चारित्रका विरोधी इहलोक और परलोकमें दुःखजनक और कामके अधीन वह यह नहीं जान पा रहा था कि जानकी उसका कितना विनाश करेगी। कामके बाणोंसे इतना जर्जर हो बैठा था कि स्वर और दूषणका नाम तक भूल गया। रावण सोचता,—"धन धान्य, सोना, सामर्थ्य, राज्य और यहाँ तक जीवन भी, सीताके बिना सब कुछ व्यर्थ है" ॥१-६॥

[४] इसी अवसरपर उसके पास मन्दोदरी आई मानो सिंह के निकट सिंहनी आई हो। वह वन-हथिनीकी तरह लीला-पूर्वक चलनेवाली थी, प्रिय कोयलकी तरह मधुर आलाप करनेवाली थी, हिरनोंकी तरह विस्फारित नेत्र थी। चन्द्रकी तरह मुखवाली थी कलहंसिनीकी तरह मन्थर गतिवाली अपने शीलरूपसे लक्ष्मीकी तरह सतानेवाली, इन्द्राणीकी तरह अभिमानिनी और उसीकी तरह यह पटरानी थी। जैसे वह (इन्द्राणी) वैसे यह भी मधुपण्डिता थी। जैसे वह वैसे यह भी सुमनोहर थी। जैसे वह, वैसे ही यह भी अपने पतिकी बहुत प्रिय थी। जैसे वह वैसे ही यह जिन-शासनको मानती थी। जैसे वह, वैसे यह भी कुशासनमें नहीं रहती थी। अधिक कहनेसे क्या उस सुन्दरीकी उपमा किससे दी जाय अपने प्रतिरूपमान के समान वही स्वयं थी ॥१-६॥

[५] पग-पगपर पढ़कर उस परमेश्वरी राजेश्वरीने कहा— "अहो दशमुख, दशवदन दशानन दशशिर दशास्य, लक्ष्मीके मानी, अहो त्रिलोकचक्रचूडामणि, शत्रुरूपी कुलपर्वतोंके लिए वज्र, बीस हाथवाले निशाचरराज सिंह, सुरसमूहगज, शत्रुरूपी गजको नष्ट करनेवाले, शत्रुमनुष्योंकी प्राचीरको तोड़नेवाले, दुर्दम दानव सेनाको चूरनेवाले, जब तुम इन्द्रसे लड़े थे उस समय अपने कुल का कितना माथा ऊँचा हुआ था। परन्तु इस समय तुम्हें अपना

भणइ पलोवइ णिसियर-णाहो । 'सुन्दरि काइँ ण करइ अवराहो ॥८॥

घत्ता

तो हउँ अच्छमि तउ णउ वर-पुप्फ-सुमहउब्भारु ।
एत्थिउ ताहु पर ण मइँ महुएवि ण इच्छइ' ॥ ९ ॥

[६]

तं णिसुणेवि वयणु ससिवयणएँ । पुणु वि हसेवि वुत्तु मिगणयणएँ ॥१॥
अहोँ दहगीव जीव-संतावण । एउ अजुत्तु वुत्तु पइँ रावण ॥२॥
किं जगेँ अयस-पडहु अप्फालहि । उभय विसुद्ध वंस किं मइलहि ॥३॥
किं पारद्धएहिँ णरएँ ण पीडहि । पर-धणु पर-कलत्तु जं ईहहि ॥४॥
जिणवर-सासणेँ पञ्च विरुद्धइँ । दुग्गइ जाइ जेहिँ अविसुद्धइँ ॥५॥
पढिल्लउ वहु जीवहँ विणासणु । बीयउ अम्मइ मिच्छाभासणु ॥६॥
तइयउ जं पर-दव्वु लइज्जइ । चउथउ पर-कलत्तु सेविज्जइ ॥७॥
पञ्चमु णउ पमाणु घरवारहोँ । भायहिँ गम्मइ भव-संसारहोँ ॥८॥

घत्ता

पर-लोएँ वि ण सुहु इह-लोएँ वि अयस-पडाइय ।
सुन्दर होइ ण तिय पॅच्छ-वेसेँ जमणरि आइय' ॥९॥

[७]

पुणु पुणु णिठुर-वयण-णिसायरि । भणइ हियवएण मन्दोयरि ॥१॥
'जं सुहु कालकूड विसु खन्तहुँ । तं सुहु पज्जालणल पइसन्तहुँ ॥२॥
जं सुहु भव-संसारेँ भमन्तहुँ । तं सुहु णारइयहुँ णिवसन्तहुँ ॥३॥
जं सुहु जम-सासणु पावन्तहुँ । जं सुहु असि-पञ्जरेँ अच्छन्तहुँ ॥४॥
जं सुहु पज्जालिय-गुह-कन्दरेँ । जं सुहु पञ्चाणण दाढन्तरेँ ॥५॥
जं सुहु फणि-माणिक्कु लुणन्तहुँ । जं सुहु णइ वाहि भुञ्जन्तहुँ ॥६॥
जाणन्ता वि ता वि जइ मग्गहि । तो कज्जेण केण मइँ पुच्छहि ॥७॥

दुख नहीं हुआ था जितना खर और दूषणके वियोगमें अभी हुआ। तब निशाचरनाथने कहा—"हे सुन्दरी, यदि अपराध न माना जाय तो मैं तुमसे कहना चाहता हूँ कि मुझे खर-दूषणके मरणका कुछ भी दुख नहीं है, दुख केवल यही है कि सीता मुझे नहीं चाहती" ॥१-६॥

[६] यह वचन सुनकर शशिवदना मृगनयनी मन्दोदरीने हँसकर कहा—"अरे दशग्रीव जीवसंतापकारी रावण, यह तुमने अत्यन्त अनुपयुक्त कहा। क्यों दुनियामें अपने अयशका डंका पिटवाते हो, दोनों ही विशुद्ध कुलोंको क्यों कलंकित करते हो, नरकके नारकियोंसे क्या नहीं डरते, जो तुम परस्त्री और परधन की इच्छा करते हो। जिनवर शासनमें पाँच चीजें विरुद्ध हैं। ये दुर्गतिमें ले जानेवाली और नित्यरूपसे भयंकर हैं। पहले छह निकायों के जीवोंका वध, दूसरे मिथ्यात्ववाद लगाना, तीसरे पर-द्रव्यका अपहरण चौथे परस्त्री सेवन करना और पाँचवें अपने गृहद्वार (गृहस्थी) का परिमाण न करना। इनसे भव—संसारमें भटकना पड़ता है, परलोकमें तो अयश फैलता ही है। क्या सुन्दर नहीं होती इसके रूपमें मानो यमपुरी ही आई है" ॥१-८॥

[७] पृथुलनितम्बा कृशोदरी मन्दोदरी बार-बार हृदयसे यही कहती—"कालकूट विष खानेमें जो सुख है, जो सुख प्रलय की आगमें प्रवेश करनेमें है, जो सुख भव-सागरमें घूमनेमें है, जो सुख नारकियोंके बीच निवास करनेमें है, जो सुख यमका शासन वहनमें है, जो सुख तलवारकी धारपर बैठनेमें है, जो सुख मदान्ध सुख—गुहामें प्रवेश करनेमें है, जो सुख सिंहकी दाढ़ोंके नीचे आनेमें है, जो सुख शेषनागकी फणमणि तोड़नेमें है, वही सुख इस नारीका भोग करनेमें है, जानते हुए भी यदि तुम इसे

चाहते हो, तो फिर मुझसे क्यों पूछते हो, तुमसे अधिक बलवान् और कौन है। तुमने तो इन्द्रप्रभका पराभव कर दिया। जिसपर जा आ पड़ता है उससे उसका प्रेम नष्ट नहीं होता ? यद्यपि यह अशोभन है फिर भी आप जा करेंगे वह शोभा ही देगा।

[८] यह वचन सुनकर विशालनयन रावणने अपनी पत्नीसे कहा, "अब मैं जिनकी वन्दना-भक्तिके लिए मन्दराचल पर्वतपर गया हुआ था तो वहाँ अनन्तवीर्य नामक मुनिसे मेरी भेंट हुई थी उनसे मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि जो स्त्री मुझे नहीं चाहेगी उसका मैं बलपूर्वक भोग नहीं करूँगा। अथवा इससे क्या ? हे मन्दोदरी, यदि तुम इस लङ्का-नगरीमें आनन्द करना चाहती हो यदि धन-धान्य सुवर्णकी इच्छा करती हो यदि ऋद्धि और वृद्धिसे पूर्ण राज्यका भोग करना चाहती हो यदि तुरग और गजोंपर बैठना चाहती हो यदि बन्दीजनोंसे अपनी स्तुति करवाना चाहती हो यदि निष्कंटक राज्य चाहती हो, यदि मुझे भी जीवित रखना चाहती हो, और यदि यह भी चाहती हो कि समूचा अन्तःपुरका रोणा न आये तो जानकीके पास जाकर मेरा दौत्य-काय कर दो" ॥१-९॥

[९] यह वचन सुनकर, कामकी नगरीके समान मन्दोदरीने कहा, "हो हो सब लोक दुसर है, तुम्हें छोड़कर मुझे अन्य कुछ भी सुभग नहीं है, ऐरावत द्वारा अभिषिक्त, श्रीसे सेवित, इस महादेवीको आप जा भी आज्ञा देंगे वह मैं अवश्य करूँगी। क्योंकि पतिके स्वार्थके लिए अनुचित भी उचित होता है। इस प्रकारकी बातें होते-होते रातके चारों पहर बीत गये। सूर्योदय होते ही मन्दोदरी सीतादेवीके निकट दूती बनकर गई। अपने अन्तःपुरके साथ वह ऐसी ही विभूषित थी जैसे हथिनियोंसे

विभूषित हथिनी होती है। वह नन्दन वनमें पहुँची। वहाँ उसे रामकी पत्नी सीतादेवी दिखाई दी। उस अवसर पर राम और रावणकी सुन्दर पत्नियाँ ऐसी शोभित हो रही थीं मानो दक्षिण तथा उत्तरके दिग्गजोंकी हथिनियाँ ही हों ॥१-९॥

[१०] कृशोदरा रामकी पत्नी सीताको देखकर मन्दोदरी मन ही मन खूब प्रसन्न हुई, वह सोचने लगी, 'यह तो अद्भुत नारी-रत्न अवतीर्ण हुआ है। यह कहाँ उत्पन्न हुई, यह तो देवोंको भी काम उत्पन्न करनेवाली, मुनियोंका मन मोहित करनेवाली अत्यंत नयनप्रिय है। साधु, साधु, विधाता! तुम बहुत चतुर हो, तुम्हारी विज्ञानकलाको कौन पा सकता है। अथवा बहुत कहनेसे क्या, इसे देखकर तो साक्षात् काम भी कामासक्त हो सकता है। रावण द्वारा इसका ग्रहण कैसे हो। मन ही मन अनुरागसे इस तरह उसकी प्रशंसा कर, रावणकी पत्नी मन्दोदरीने हँसकर रामकी पत्नी सीतादेवीसे प्रिय वचनोंमें कहा "हे परमेश्वरी, बहुत कहनेसे क्या, एक तुम्हारा ही जीवन (दुनियामें) सफल है। तुम्हारा (अब) क्या नहीं है जो सुरवरोंको भय उत्पन्न करनेवाला, त्रिलोक चक्र-संतापक, रावण भी तुम्हारा आज्ञाकारी है ॥१-१०॥

[११] इन्द्रजीत, भानुकर्ण, घनवाहन, अक्षय मय, मारीच और विभीषण जिस किसीको अपने पैरोंसे ठुकरा देते हैं, वे ही सब रावणको अपने सिर-माथे लेते हैं। और भी यह समस्त, अलंकार, हार और नूपुरोंसे सहित अन्तःपुर है तथा उत्तम चूड़ियों और नित्य सजाये गये तिलकोंवाली अठारह हजार सुन्दर स्त्रियाँ हैं। भाग्यशील ये सब तुम्हारी हैं, तुम इनपर शासन करो (अथवा तुम्हीं बताओ) रावणको छोड़कर, अन्य कौन, शत्रुसेनाका संहारक, अपने कुलका आशापूरक है। रावणके

सिवाय, कौन ऐसा बलवान है जिसने सुरसमूहको सहसा परास्त कर दिया हो, तीनों लोकोंमें रावणको छोड़कर दूसरा वीर नहीं। रावणके अतिरिक्त और कौन सुभग है जिसे देखकर कामदेव भी विकल हो उठता है। तुम, कमलदलकी तरह विशालनयन अंकेश्वर उस रावणको समस्त धरतीका भोग करो" ॥१-११॥

[१२] रानी मन्दोदरीकी इन कड़वी बातोंको सुनकर भी सीताने रावणको तिनकेकी तरह तुच्छ समझा और अपने शीलके वेशसेवह जरा भी नहीं डरी। और क्रुद्ध होकर वह एकदम कठोर शब्दोंमें बोली—"हला-हला, तुमने क्या कहा एक भद्र महिलाके लिए यह उचित नहीं है, तुम रावणका दूतीपन क्या कर रही हो। इस तरह मेरी हँसी मत उड़ाओ, जान पड़ता है तुम्हारी किसी परपुरुषमें इच्छा है, इसीसे यह दुर्बुद्धि मुझे दे रही हो। तुम्हारे बापके माथ पर वज्र पड़े मैं तो अपने ही पतिमें दृढ़ भक्ति रखती हूँ।" सीताके वचन सुनकर मन्दोदरीका मन चंचल हो उठा। उसने कहा "यदि तुम महादेवीका पट्ट नहीं चाहती, यदि तुम लंका-नरेशको किसी भी तरह नहीं चाहती तो क्रन्दन करती हुई तुम्हें करपत्रसे छिन्न-छिन्न काटा जायगा और दूसरे ही क्षण, निशाचरोंको बाँट दी जाओगी ॥१-९॥

[१३] तब जनककी पुत्री सीताने बार-बार मन्दोदरीकी भर्त्सना करते हुए कहा "बार-बार कितना बकती हो जो तुम्हारे मनमें हो वह कर डालो, यदि तुम आज ही करपत्रसे काट दो, यदि तुम आज हो पकड़कर शूलपर चढ़ा दो यदि जलती हुई आगमें डाल दो यदि गजराजके दाँतोंके आगे ठेल दो, तो आज ही इस दुष्टके पापकर्म और परपुरुषसे इस जन्ममें ही छूट जाऊँगी। मुझे यही एक, अपना पति पर्याप्त है जिसे त्रिभुवनरमा कभी

नहीं चाहती जो सुर और असुरोंके मनको प्रिय है, और जो तुम जैसी खोटी स्त्रियोंके लिए दुर्लभ है। वह मनुष्योंमें सिंह है जो धनुषकी पूँछसे अपनी क्रीड़ा दिखाता है, बाणरूपी नखोंसे सहित धनुषकी चपल जीभवाला रामरूपी सिंह रावणरूपी मत्त गजका अवश्य विनाश करेगा'॥१-६॥

[१४] राम तथा रावणकी पत्नियाँ (सीता और मन्दोदरी) में इस तरह बातें हो रही थीं कि इतनेमें दशानन ऐसा आ धमका मानो गंगा नदीके तटपर हाथी आ गया हो या जानकीके मुखरूपी कमलका लम्पट गन्धलुब्ध भ्रमर ही व्याकुल हो उठा हो। हाथ बजाता, ध्वनि करता और कुछ गुनगुनाता और क्रीड़ा करके पुकारता हुआ वह बोला—"देवी, परमेश्वरी! मुझपर कृपा करो, मैं किससे बातमें हीन हूँ क्या? सौभाग्य या भागमें हीन हूँ क्या? या अर्थ हीन हूँ? क्या सौन्दर्य या रूपमें कम हूँ, क्या सम्मान दान युद्ध की दृष्टिसे हीन हूँ क्यों किस कारणसे तुम मुझे नहीं चाहती? और जिससे तुम महादेवीके पदकी भी इच्छा नहीं करती।" तब राघवकी गृहिणी सीताने रावणकी भर्त्सना करते हुए कहा— "रावण मेरे सामनेसे हट, तू मुझे पिताके बराबर है" ॥१-६॥

[१५] जानकर भी तुम मुझपर मोहित हो रहे हो परस्त्री ग्रहण करके कैसे शुद्ध होओगे, इसलिए जब तक तुम्हारी अपकीर्तिका डंका नहीं पिटता जब तक लक्ष्मण नहीं व्यस्त होते जब तक लक्ष्मण रूपी सिंह क्रुद्ध नहीं होता जब तक रामरूपी कृतान्त क्रुद्ध नहीं जान पाते जब तक वह तीरोंकी धाराका संधान नहीं करते जब तक दोनों तरकस नहीं बाँधते जब तक तुम्हारा विकट उरस्थल नहीं भेदते जब तक तुम्हारा बाहुदण्ड छिन्न-भिन्न नहीं करते जब तक सरोवरमें हंसकी तरह रमण नहीं करते जब

जाम ण मिड-पन्ति विप्फइइ । जाम ण विसिघर-सस्सु आवइइ ॥७॥
जाम ण दरिसावइ घय-चिन्धइँ । जाम ण रवँ वज्जन्ति कलम्बइँ ॥८॥

घत्ता

जाम ण आइयमें कप्पिजहि वर-धाराहिँ ।
ताम सराहिवइ पइ राइयचन्दहों पासहिँ ॥९॥

[१९]

तं णिसुणेंवि वासर्द्धु दसासहु । जं वर्णे गयमायें पयासहु ॥१॥
कोवाणल-पलित्तु कइकेसरु । चिन्तइ विज्जाहर-परमेसरु ॥२॥
'किं जम-सासण-पन्थें लावमि । किं उवसमु किं पि दरिसावमि ॥३॥
अवसें मन-वसेण इच्छेसइ । मइ मयणम्मि समुज्जालेसइ' ॥४॥
तहिँ अवसरें स-तुरङ्गु स-रहवरु । गउ भलवयहो ताम दिवायरु ॥५॥
थाय रत्ति आलाविह-सद्दें हिँ । अइदुम मेहकन्तेंहिँ सूरेंहिँ ॥६॥
बर-थालडक्क- विराल-सिवालें हिँ । बहु-वामुण्ड चण्ड वेयालें हिँ ॥७॥
एक्कास-सीह-वग्ग-गय गज्जें हिँ । मेस-महिस-बर-तुरय-भिसर्वें हिँ ॥८॥
तं उवसग्गु णिएवि पयासहु । तो वि ण सीयहें सरणु दसासहु ॥९॥
घोर रउद्दु पयद्दु संचूरें वि । थिय सयें कम-व्याणु धारें वि ॥१०॥

घत्ता

'जाव ण बीसरिय उवसग्ग-सयहों गम्भीरहों ।
ताव णिवित्ति महु चडविह-आहार-सरीरहों ॥११॥

[१०]

पहय पओस पयासेंवि विमाय । इम्पि इव दम्म सूर-पइरावय ॥१॥
णिसियरि क्व गय कोलाहलिय । सम्म-मइ-कव्वर साम-कवलिय ॥२॥
सूर-गुवण काइँ एसु मेरुकेंवि । पइसइ अपय कमाइँ पेक्कें वि ॥३॥

तक तुम्हारा दस मुखरूपी कमल नहीं तोड़ते, जब तक गीधोंकी पाँत नहीं झपटती जब तक निशाचर-सेना नहीं भग्न जाती, जब तक उनके ध्वजचिह्न नहीं टोला पकड़ते जब तक युद्ध-स्थलमें कबन्ध नहीं नाचते, जब तक तुम युद्धमें प्राणोंसे नहीं काट जाते तब तक, हे राजन्! तुम रामके पैरोंमें पड़ जाओ।" ॥१-६॥

[१६] यह सुनकर रावण कुपित हो उठा, वैसे ही जैसे मेघ गरजने पर सिंह गरज उठता है। कोपकी ज्वालासे प्रदीप्त होकर, विद्याधरोंका राजा और लंकाधिपति रावण सोचने लगा—"क्या इसे यमके शासन पथपर भेज दूँ, या किसी घोर उपसर्गका प्रदर्शन करूँ अवश्य ही यह उस समय मुझे चाहने लगेगी और मेरी कामज्वालाका शमन करेगी।" ठीक उसी समय रथ और अश्वोंके साथ, सूर्यका अस्त हो गया। नाना रूपोंसे रात आ पहुँची, भूत अट्टहास करने लगा, खर (गधा) श्वानकुल, शृगाल, चामुण्ड, रुण्ड, बेताल, राक्षस सिंह, गज मेंढा, मेघ, महिष बैल, तुरग और सिसुण्डोंसे उपसर्ग होने लगा। उस भयङ्कर उपसर्गको देखकर भी रावणको सीतासे शरण नहीं मिली। चार रौद्र ध्यानको दूरकर, वह धर्मध्यानको अपनाकर अपने मनमें लीन होकर बैठ गई। और उसने यह नियम ले लिया कि जब तक मैं गम्भीर उपसर्ग-भयसे मुक्त नहीं होती तब तक चार प्रकारके आहारसे मेरी निवृत्ति है ॥१-११॥

[१७] रातका प्रहर नष्ट होकर वैसे ही चला गया जैसे शूरवीरके प्रहारसे आहत होकर गजघटा चली जाती है, रात मन्त्रोंसे वाहित भग्न अहङ्कार और मान कर्मक्षुब्ध करनेवाली निशाचरीकी तरह चला गई। सूरके भयसे मानो यह रण छोड़कर किवाड़ोंका पक्ष देकर नगरमें प्रवेश कर रही थी। शयन-स्थानमें

को दीप सच रहे थे माना रात उनके बहाने अपने नेत्रोंको फाड़कर देख रही थी अरविन्दोंका आनन्द देनेवाला रवि उदित हो गया। यह माना धरतीरूपी कामिनीका दर्पण था, या माना संध्याका तिलक था, या माना कवि यशःपुञ्ज चमक रहा था, या माना रामकी पत्नी सीतादेवीको अभय देता हुआ रातके पीछे दौड़ा हो। या विश्व-भुवन दीपक जला दिया गया हो। और बार-बार यही छींट आ रहा हो। त्रिभुवनरूपी निशाचरकी विराट-वपूके मुख-कन्दराको फाड़कर और ऊपर आकर माना सूर्य सीता देवीको खो रहा था ॥१-९॥

[१८] रातके अन्धकार-पटलकी धूल भग्न होनेपर राजा आग रावणकी सेवामें उपस्थित हुए। उनमें मय, मारीच, विभीषण तथा और भी दूसरे प्रधान राजा थे। खर और दूषणके शोकमें उनके मुख ऐसे म्लान थे जैसे बिना मयाङ्कके सिंह हों। सभी अपने अपने आसनपर अविचल भावसे बैठ थे माना मग्नदन्त गज हों। मन्त्रियों और सभ्यजनोंने इसी समय परदेके भीतर रोती हुई सीता देवीकी आवाज सुनी। तब विभीषणने कहा—"यह कौन रो रही है? कौन यह बार-बार अपनोंका स्मरण कर रही है। कहीं यह कोई वियोगिनी स्त्री न हो?" फिर उसने रावणके मुखको लक्ष्य करके कहा, "शायद यह तुम्हारा काम तो नहीं है। क्योंकि दुनियामें तुम्हें छोड़कर और किसका चित्त विपरीत हो सकता है।" यह सुनकर सीता देवी आश्वस्त हो उठी और उन्होंने अपने कोकिल की तरह मधुर स्वरमें कहा—"अरे दुर्जनोंके बीचमें यह सज्जन कौन है ऐसे ही जैसे नीमके वनमें चन्दनका पेड़? घोर संकटमें यह कौन मेरा साधर्मी जन है कि जो इस प्रकार मुझे धीरज बँधा रहा है। किसका इतना प्रबल बाहुबल है?" ॥१-११॥

●

सैंतालीसवीं सन्धि

बार-बार विभीषणने रावणकी खोटे शब्दोंमें निन्दा की। उसने पटकी ओटमें बैठी हुई सीतादेवीसे पूछा।

[१] "हे सुन्दरी! तुम अपनी बात निर्भ्रान्त होकर कहो। रावण हरकर तुम्हें यह (दशानन) किस प्रकार से लाया। तुम किसकी कन्या हो, और तुम्हारा पति कौन है?" चिन्तित होकर, विभीषणने पुन: कहा,"तुम्हारा ससुर कौन है, और कौन तुम्हारा देवर है? तुम्हारा सुप्रसिद्ध भाई कौन है तुम्हारे कोई कुटुम्बीजन हैं, या तुम अकेली हो? बताओ इस वनमें तुम भूल कैसे पड़ी? किस कारणसे तुम्हें वनवासके लिए आना पड़ा। धराधिपति रावणने तुम्हें किस प्रकार दग्ध किया? तुम मनुष्यनी हो या खेचरपुत्री कुलीना हो या शीलकी पात्र हो? तुम्हारा वृत्तान्त कौन-सा है? अपनी कहानी जरा विस्तारसे कहो।" विभीषणके इन वचनोंको सुनकर सीतादेवीने उत्तरमें कहा "(और विभीषण शान्तिसे सुनता रहा) बहुत कहनेसे क्या मैं भामण्डलकी बहन सीता देवी हूँ। जनककी पुत्री, और रामकी पत्नी ॥१-६॥

[२] भरतेश्वर भरतको राज्यपट्ट सौंपकर हम दोनों वनवासके लिए निकले पड़े थे। सिंहोदरका मान नष्ट कर, दशपुर नामके नगरको अनुरंजन कर कल्याणमालाको अभयदान देकर रुद्रभूतिको छोड़कर हम आगाने—विन्ध्याटवीमें प्रवेश किया। वहाँपर रुद्रभूतिको अपने पैरोंमें झुकाकर बालिखिल्यको उसके अपने नगरमें पुन: प्रतिष्ठित किया। रामपुरीमें चार माह रहकर राजा धरणीधरकी कन्यासे पाणिग्रहण कर अतिवीर्यको बाँधकर मनिदरकर वह क्षेमांजलि नगरमें पहुँचे। वहाँ भी पाँच शक्तियोंको

पराजितकर, अरिदमन राजाका मुख काला कर, उसकी कन्याका पाणिग्रहण किया। फिर वहाँसे (चलकर) उन्होंने दो मुनियोंका उपसर्ग दूर किया। उसके बाद राम, लक्ष्मण और सीता देवी, वहाँ इस साज से आये मानो मदगजने ही दण्डकारण्यमें प्रवेश किया हो ॥१-६॥

[३] वहाँ उस समय संयम, नियम और धमसे युक्त मुनिवर गुप्त और सुगुप्तको वनमें इमन आहार दिया। जिससे सुरवरोंने रत्नोंकी वर्षा की। पक्षिराज जटायुके पक्ष सोनेके हो गये। फिर लक्ष्मणने वीर शम्बुक कुमारको मारा। इस प्रकार जब हम वनमें क्रीड़ा कर रहे थे। तभी लीलापूर्वक एक कुमारी वहाँ आई। वह राम लक्ष्मणके पास उसी प्रकार पहुँची जिस प्रकार हथिनी हाथीके पास पहुँचती है। निलज्ज वह बोली कि मुझसे विवाह कर लो। फिर राम-लक्ष्मणसे तिरस्कृत होकर वह थोड़ी दूर पर जाकर अत्यन्त विद्रूप हो उठी। क्रन्दन करती हुई वह खर दूषणके पास पहुँची। वे भी राम-लक्ष्मणसे युद्ध करने आये थे। युद्धमें बाद लक्ष्मणने सिंहनाद किया हो या नहीं, किन्तु उस शब्दको सुनकर राम तत्काल दौड़े ॥१-८॥

[४] जब तक वह लक्ष्मणकी खोज-खबरके लिए गये कि इसनमें निशाचर रावणने मेरा अपहरण कर लिया। आज भी मेरा प्रेम उनके मन और नयनोंका आनन्द इस बाल रामचन्द्रके प्रति है। इस प्रकार जब सीता दर्शीन दशरथ पुत्र राम, लक्ष्मण और भामण्डलका नाम लिया तो राजा विभीषणका चित्त जल उठा। उसने कहा "रावण तुमने सुना है क्या ? जो शुद्ध इसने कहा। अरे मैं तो उन दोनों (दशरथ और जनक) को मारकर आया था। मुझे बड़ा भारी भ्रान्ति है। क्या वे दोनों जीवित हैं। तो

फिर मुनिवरका कहा सच होना चाहता है। अब तुम्हारा राम-लक्ष्मण-से विनाश होगा। अब भी तुम मेरा कहना मानो। उत्तम पुरुषके लिए यह उचित नहीं है। एक तो विनाश और दूसरे लोक-लाज। फिर दुनिया थू थू करेगी। हे राजन्, तीनों लोकोंमें व्याप्त समुद्रके स्वरसे स्वच्छित अपनी कीर्तिको नष्ट मत करो। उसकी रक्षा करो ॥१-४॥

[५] रावण, जो परस्त्री-रमण करते हैं वे अपार दुख प्राप्त करते हैं। आग-सहित हस-हस करते हुए जो सात भयङ्कर नरक हैं उनमें उपद्रव और हूहू शब्द होते रहते हैं। सिम-सिमाती कृमि और कीचड़से वे सराबोर हैं। उनके नाम हैं। रत्न शर्करा, बालुका, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा तमप्रभा और तमतमप्रभ। उनमें तुम अनन्त काल तक रहोगे। पहले नरकमें एक सागरप्रमाण तक, उसके बाद फिर तीन सात दस, ग्यारह, सत्तरह और बाईस सागरप्रमाण समय दूसरे-दूसरे नरकोंमें रहना पड़ेगा। उसके अनन्तर तैंतीस सागरप्रमाण काल तक वहाँ रहोगे जहाँ सुमेरु पर्वत बराबर बड़े-बड़े दुख हैं। फिर निगोद सुना जाता है उसमें भी तुम तब तक सड़ते रहोगे कि जब तक यह मरती है। इसलिए पर-स्त्रीका रमण करना ठीक नहीं। ऐसा काम करो जिससे देवगति प्राप्त हो। यह सुनकर रावणने क्रुद्ध हो कहा—"क्या परस्त्रीमें यह कृत्य है? अरे, तीनों लोकोंमें किसी भीने इन्द्रियोंको पराजित किया ॥१-१०॥

[६] तब विभीषणकी उपेक्षा करके रावण अपने त्रिजग-भूषण हाथीपर चढ़ गया और सीता देवीको पुष्पक विमानमें बैठा कर नगरमें बाजारकी शोभा दिखानेके लिए ले गया। मञ्जरी पटह और तूर्यके निर्घोषसे अपने मनमें सन्तुष्ट होकर वह निकला। उसने सीता देवीसे कहा—"देवी! मेरा नगर देखो, यह वरुण और कुबेर जैसोंके मुखमें मिलानेवाला है। सुन्दरी, देखो-देखो ये चार

द्वार हैं। जो विकार-पूर्ण कामिनियोंके मुखोंके समान लगते हैं। सुन्दरी, देखो-देखो ये ध्वज और छत्र हैं। मानो कमल ही खिल उठे हों। सुन्दरी! देखो-देखो, हारोंसे गम्भीर और मणियोंके खम्भा से सुन्दर यह मेरा राजकुल है। सुन्दरी तुम मेरा कहना मान कर लो। और जो यह चूड़ामणि कण्ठा और कटक-सूत्र। सुन्दर चीनी वस्त्र साड़, मद्य और हरिचन्दन लेकर मुझपर प्रसाद करो। मुझे जीवन दो। मीठे शब्द बोलो। इस महागजपर आरूढ़ होकर महादेवीका प्रसाधन अङ्गीकार करो ॥१-१०॥

[७] इसपर राघवकी पत्नी आदरणीया सीतादेवीने भर्त्सना करते हुए रावणको उत्तर दिया—"अरे मुझे कितना अपना ऋद्धि दिखाता है, अपने लोगोंको ही दिखा। यह जो तुम्हारा राज्य है वह मेरे लिए तिनकेकी तरह तुच्छ है चन्द्रमाकी तरह सुन्दर जो यह नगर है वह मेरे लिए मानो यमशासनकी तरह है। नयन-प्रभङ्कर तुम्हारा यह राजकुल, मेरे लिए भयङ्कर श्मशानकी तरह है। और जो तुम बार-बार अपने यौवनका प्रदर्शन कर रहे हो, वह मेरे लिए विष-भोजनकी तरह है। और जो यह मेखला-सहित कण्ठा और कटक हैं, शीलविभूषिताके लिए केवल मल हैं। सैकड़ों रथवर तुरग और गज भी जो हैं उन्हें मैं कुछ भी नहीं गिनती। उस स्वर्णसे भी क्या जहाँ चारित्र्यका खण्डन हो, यदि मैं शीलसे विभूषित हूँ तो मुझे और क्या चाहिए" ॥१-६॥

[८] जैसे-जैसे अचिन्तित आशा पूरी नहीं होती वैसे-वैसे रावण मनमें दुखी होने लगा। विधाता उतना ही देता है जितना भाग्यमें होता है जो ललाटमें लिखा है, उसमें क्या घटती होती है मैं किस कर्मके उदयसे इतना पतित बना जो जानते हुए भी इसपर मोहित हुआ। मुझे धिक्कार है कि जो मैंने विषम हिरनाकी

तरह दीन मुखवाली विलाप करनेवाली कुमारीकी अभिलाषा की। इसके पास जो सुन्दर रूप है, मेरे पर तो उससे भी सुन्दर मनका रूप है? इस प्रकार अपने विचित्र-चित्तको सहारा देकर और बड़े कष्टसे मनके प्रसारको रोककर सीताके साथ क्रीड़ाका त्यागकर उसे उसने नन्दन वनमें छोड़ दिया। और श्रेष्ठ पुरुषोंसे घिरा हुआ वह अपनी नगरीकी ओर चला। मार्गमें उसे जनोंके मन और नेत्रोंको सुहावना लगनेवाला त्रिकूट नामक पहाड़ ऐसा दीख पड़ा, मानो सूर्यरूपी बालकके लिए धरतीरूपी कुलवधूने अपना स्तन दे दिया हो ॥१–६॥

[६] या मानो धराका गर्भ (अन्तर) ही निकल आया हो। वह सात उपवनोंसे घिरा हुआ था। उसमेंसे पहले 'पइण्ण वन सज्जनके हृदयकी तरह विस्तीर्ण जन-मन-नयनप्रिय दूसरा उपवन जिनके बिम्बकी तरह चन्दन (पंक और चन्दन) से सहित था सुहावना तीसरा सुखसेत ? वन जिनवर शासनकी तरह, सावय (श्रावक और वृक्षविशेष) से सहित। चौथा समुच्चय नामका वन बलाका कारण्ड और क्रौंच पक्षियोंसे भरा हुआ था। पाँचवाँ सुन्दर चारण वन था छठा निबोधित नामक वन सुन्दर और भौंरोंसे गुञ्जित था और सातवाँ प्रसिद्ध प्रमद वन था जो सुन्दर छाया सहित और शीतल था। गिरिवरकी पीठपर लंका नगरी ऐसी शोभित हो रही थी मानो महागजकी पीठपर नई दुलहिन ही खूब सज-धजकर बैठी हो ॥१–६॥

[१] वहीं पर उसे अशोकमालिनी नामकी सुन्दर वापिका दिखाई दी जो कामिनी की तरह, सुनहरे रङ्गकी, पयोधर (स्तन

और जल) से सहित थी। चार द्वार, चार गोपुर और तोरणोंसे रमणीय थी। चम्पक, तिलक, मौलश्री, नारंगी और लवंगसे आच्छन्न उस प्रदेशमें सीताको छोड़कर रावण चला गया। विरहसे क्षीण और अस्त-व्यस्त विमन दुर्मन, कामबाणोंसे जर्जर द्वार पालकी तरह बूढ़ा वह रावण वृक्षीकुलकी तरह बार-बार आता और लौट जाता। कठोर और मधुर वचनोंसे उसका मुख सूख रहा था? लोभसे जुआरी की तरह गिरता पड़ता वह कभी अपना सिर धुनने लगता, कभी हाथ मरोड़ता, कभी अंग-अंग मुकाकर काँप उठता। कभी अधर पकड़कर चिंतामग्न हो जाता। कभी कामके स्वरमें बोल पड़ता। गाता बजाता हुआ, कभी-कभी दप और विषादकी दीप्तिसे उद्वेलित हो उठता। बार-बार मूर्छित होकर वह मरणदशाको पहुँच गया। चंदनके (जल) सिंचन और दसाके प्रेमसे तथा चामरोंसे हवा करनेसे वह मन ही मन छीज रहा था। क्या रावण अकेला ही पीड़ित हुआ? जिनको छोड़कर कौन ऐसा है जो गर्वसे गरजता नहीं और कामसे पराभूत नहीं हुआ ॥१-६॥

[११] इस प्रकार रावणके विरहव्याकुल होने पर रावणके मंत्री-मण्डलमें चिंता व्याप्त हो गई। वे विचार करने लगे कि लक्ष्मणके क्रुद्ध होने पर यहाँ कौन-सा वीर है। जिसे तत्काल सूर्यहास खड्ग सिद्ध हो गया। जिसने खरदूषण और कुमार शम्बूक की हत्या की वह कोई साधारण मनुष्य नहीं है। इसपर सहस्र-मति नामके मंत्रीने कहा कि एक रामको पकड़नेकी क्या बात है। सेना, रथ तुरंग, गज और वाहनों सहित लक्ष्मणको पकड़ने में भी क्या रखा है। रावणकी सेना दुस्तर लहरोंसे भयंकर

समुद्रसे भी प्रबल है। उसका एक-एक योधा असाध्य है। शम्बूकके पाससे क्या? एक बूँद पानी सूख जानेसे समुद्रका क्या बिगड़ता है। यह सुनकर पञ्चमुखने हँसकर उत्तर दिया 'अरे, एक क्या कहते हो अकेले ही मैं हजारोंका काम तमाम कर दूँगा" ॥१-६॥

[१२] तब उसने और भी निवेदन किया, "दूसरोंके मुखसे मैंने यह सुना है कि जाम्बवंत नल सुभाव, अंग और अगद प्रभृति जो कपिध्वज हैं, निस्सन्देह वे सब राजा विराधितके साथ, वनवासमें ही राम और लक्ष्मणसे जा मिले हैं" । यह सुनकर रावणके अनुचर मारीचने पंचमुखसे कहा "इन्हें रावणके सिवा किसी दूसरेसे नहीं मिलना था। उसने अपनी कन्या अनंगकुसुम हनुमानको दी थी। क्या वह भी उसकी भलाईके रास्तेको भूल गया जो इस प्रकार डरकर प्रतिपक्षीसे जा मिला है"। तब बीचमें ही टोककर विभीषणने कहा—"खाली विचार करनेसे क्या लाभ कोई उपाय सोचना चाहिए। जिससे लंकानरेश रावणको बचाया जा सके।" यह कहकर उसने आशाली विद्याको बुलाया और नगरके चारों ओर उसकी परिक्रमा दिलवा दी। इस प्रकार इसी द्वारा अलंघ्य दृढ़ माया प्राचीर बनवाकर निशाचरराज वह निश्शंक होकर राज्य करने लगा ॥१-११॥

अयोध्याकाण्ड समाप्त

आदित्य देवीकी प्रतिमासे उपमित स्वयंभू कविकी पत्नी आदित्य देवी द्वारा लिखित यह दूसरा अयोध्याकाण्ड समाप्त हुआ।

●

ज्योतिष

२२	भारतीय ज्योतिष	श्री नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	६)
२३	करलक्खण [सामुद्रिकशास्त्र]प्रा	प्रफुल्लकुमार मोदी	॥)

कहानियाँ

२४	संघर्षके बाद	श्री विष्णु प्रभाकर	३)
२५	गहरे पानी पैठ	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२॥)
२६	आकाशके तारे : धरतीके फूल	श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर	२)
२७	पहला कहानीकार	श्री रावी	२॥)
२८	खेल-खिलौने	श्री राजेन्द्र यादव	२)
२९	अतीतके कम्पन	श्री आनन्दप्रकाश जैन	३)
३	जिन खोजा तिन पाइयाँ	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२॥)
३१	नये बादल	श्री मोहन राकेश	२॥)
३२	कुछ मोती कुछ सीप	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२॥)
३३	काळके पंख	श्री आनन्दप्रकाश जैन	३)
३४	नये चित्र	श्री सत्येन्द्र शरत्	३)
३५	धम-दाम	श्री मदीय	३)

उपन्यास

३६	मुक्तिदूत	श्री वीरेन्द्रकुमार एम ए	५)
३७	तीसरा नेत्र	श्री आनन्दप्रकाश जैन	२॥)
३८	रक्त-राग	श्री देवेशदास	३)
३९	संस्कारोंकी राह	राधाकृष्ण प्रसाद	२॥)

संस्मरण, रेखाचित्र

४	हमारे आराध्य	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
४१	संस्मरण	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
४२	रेखाचित्र	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	४)
४३	जैन जागरणके अग्रदूत	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५)

सूक्तियाँ

४४ ज्ञानगंगा [सूक्तियाँ] — श्री नारायणप्रसाद जैन — ६)
४५. शरत्की सूक्तियाँ — श्री रामप्रकाश जैन — २)

राजनीति

४६ एशियाकी राजनीति — श्री परदेशी साहित्यरत्न — ६)

निबन्ध, आलोचना

४७ जिन्दगी मुसकराई — श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ४)
४८. संस्कृत साहित्यमें आयुर्वेद — श्री अत्रिदेव 'विद्यालंकार' — ३)
४९. शरत्के नारी-पात्र — श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी — ४॥)
५ क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ? — श्री रावी — २॥)
५१ बाजे पायलियाके घुँघरू — श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर' ४)
५२ माटी हो गई सोना — श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' २)

दार्शनिक, आध्यात्मिक

५३ भारतीय विचारधारा — श्री मधुकर एम ए — २)
५४ अध्यात्म-पदावली — श्री राजकुमार जैन — ४॥)
५५. वैदिक साहित्य — श्री रामगोविन्द त्रिवेदी — ६)

भाषाशास्त्र

५६ संस्कृतका भाषाशास्त्रीय अध्ययन — श्री भोलाशंकर व्यास — ५)

विविध

५७ द्विवेदी-पत्रावली — श्री बैजनाथ सिंह 'विनोद' — २॥)
५८ ध्वनि और संगीत — श्री ललितकिशोर सिंह — ४)
५९. हिन्दू विवाहमें कन्यादानका स्थान — श्री सम्पूर्णानन्द — १)

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी